मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-१४

प्रथम संस्करण १००००

प्रकाशकका निवेदन

गांधीजी आरंभसे ही इस बात पर बड़ा जोर देते रहे थे कि भारतके गांवोंमें ग्राम-पंचायतोंको पुनर्जीवन प्रदान करके हमारे देशमें ग्राम-स्वराज्यकी स्थापना की जाय। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक भारतके लाखों गांव स्वतंत्र, शक्तिशाली और स्वावलंबी बनकर उसके संपूर्ण जीवनमें पूरा भाग नहीं लेते, तब तक भारतका भावी उज्ज्वल नहीं हो सकता। यह अत्यन्त हर्षकी बात है कि अब देशके विभिन्न राज्योंमें गांधीजीकी ग्राम-स्वराज्यकी कल्पनाको मूर्तरूप देनेके लिए पंचायत-राजका शुभ आरंभ हो चुका है। लोकतंत्रमें राज्यसत्ताके विकेन्द्रीकरणकी प्रतीक ये ग्राम-पंचायतें ही गांवोंमें सच्चे ग्राम-स्वराज्यका सूत्रपात करेंगी।

ऐसे समय ग्राम-स्वराज्यके विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालनेवाले गांधीजीके विचारोंका संग्रह पंचायतोंके लिए उपयोगी और प्रेरणादायी सिद्ध होगा, इसी विचारसे 'ग्राम-स्वराज्य' का यह हिन्दी संस्करण हम प्रकाशित कर रहे हैं। इसके अंग्रेजी और गुजराती संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका देशमें ग्राम-पंचायतों और सामुदायिक विकास योजना केन्द्रोंमें हार्दिक स्वागत हुआ है।

आशा है, इस हिन्दी संस्करणका भी वैसा ही स्वागत होगा।

१५-८-'६३

प्राक्कथन

यह सचमुच बड़े हर्षकी बात है कि नवजीवन ट्रस्ट महात्मा गांधीके 'ग्राम-स्वराज्य' विषयक विचारोंका संग्रह पुस्तकके रूपमें प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तकमें खेती-वाड़ी, ग्रामोद्योग, पशु-पालन, यातायात, बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई जैसे ग्राम-जीवनके विविध और विभिन्न पहलुओं पर गांधीजीके विचारोंका समावेश किया गया है। आज हम राजनीतिक और आर्थिक सत्ताके विकेन्द्रीकरणके आधार पर भारतमें पंचायत-राजकी स्थापनाका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे समय यह पुस्तक इस क्षेत्रमें कार्य करनेवाले सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंके लिए अवश्य ही बड़ी मूल्यवान सिद्ध होगी। आज हमारे देशमें सामूहिक विकासका जो आन्दोलन चल रहा है उसे ऐसा कार्यक्रम मानना गलत होगा, जो अधिकांशमें पश्चिमके देशोंमें प्रचलित लोकतंत्रोंसे भारतमें लाया गया है। हमारे राष्ट्रके सामूहिक विकासका आधार आवश्यक रूपमें भारतकी परिस्थितियों पर और भारतकी परम्पराओं पर ही होना चाहिये। इसलिए यह बड़े महत्त्वकी बात है कि जिन कार्यकर्ताओंको इस आन्दोलन और कार्यक्रममें भाग लेनेकी तालीम दी जाती है, उन सबको ग्राम-सुधारके विभिन्न पहलुओं पर गांधीजीके विचारोंका पूरा परिचय हो। अगर हम भारतीय आयोजनसे सम्बन्धित गांधीजीके अनुभवों और आदर्शोंकी उपेक्षा करें और उनकी ओर ध्यान न दें, तो हम पक्की बुनियाद पर होनेवाले अपने लोकतंत्रके विकासको बहुत बड़ी हानि पहुंचाकर ही ऐसा करेंगे।

यह सोचना गलत है कि गांधीजी आजके उद्योगीकरणके बारेमें बहुत पुराने विचार रखते थे। सच पूछा जाय तो वे उद्योगोंके यंत्रीकरणके विरुद्ध नहीं थे; वे कड़ा विरोध उस पागलपनका करते थे, जो आज यंत्रोंके लिए बताया जाता है। गांवोंके लाखों कारीगरोंको काम दे सकनेवाले छोटे यंत्रोंमें जो भी सुधार किया जाय, उसका वे स्वागत करते थे। गांधीजी बड़े बड़े कारखानोंमें विपुल मात्रामें माल पैदा करनेके

बजाय देशके विशाल जन-समुदायों द्वारा अपने घरों और झोंपड़ोंमें मालका उत्पादन करनेकी हिमायत करते थे। वे भारतके प्रत्येक सबल व्यक्तिको पूरा काम देनेके बारेमें बहुत अधिक चिन्तित रहते थे; और वे मानते थे कि यह ध्येय तभी सिद्ध होगा जब गांवोंमें सुचारु रूपसे ग्रामोद्योगों तथा कुटीर-उद्योगोंका संगठन और संचालन किया जायगा। जो आर्थिक योजना ग्रामीण क्षेत्रोंमें बेकार पड़ी रहनेवाली मानव-शक्तिका पूरा पूरा उपयोग नहीं करती, वह पक्की नींव पर रची हुई अथवा बुद्धिमानीकी योजना नहीं कही जा सकती। गांधीजीने कहा था: "भूखों मरनेवाली और बेकार रहनेवाली जनताके सामने ईश्वर केवल एक ही स्वीकार्य रूपमें प्रकट होनेकी हिम्मत कर सकता है। वह रूप है — काम और मजदूरीके रूपमें भोजनका वचन।" (निर्मलकुमार बोस: सलेक्शन्स फ्रॉम गांधी, पृ० ४९) पश्चिमके अर्थशास्त्री आज पूरे काम या पूरी रोजीके इस आदर्शको योजनाबद्ध आर्थिक विकासकी आधार-शिला मानते हैं — विशेषतः ऐसे अर्ध-विकसित देशोंके आर्थिक विकासके लिए, जिनकी जनसंख्या बड़ी है और दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। प्रोफे० गेल्ब्रेइथ इस मतके हैं कि "बेकारीके साथ जुड़े हुए अधिक उत्पादनकी अपेक्षा सब लोगोंको पूरा काम देना अधिक वांछनीय है।" (दि एफ्लुएन्ट सोसाइटी, पृ० १५५)

महात्मा गांधी ग्राम-पंचायतोंके संगठन द्वारा आर्थिक और राजनीतिक सत्ताके विकेन्द्रीकरणका जोरदार समर्थन करते थे। उनका यह निश्चित मत था कि यदि वैज्ञानिक दृष्टिसे ग्राम-पंचायतोंका संगठन किया जाय, तो उससे केवल गांवोंकी सामाजिक और आर्थिक शक्ति ही नहीं बढ़ेगी, परन्तु वह विदेशी आक्रमणके खतरेसे राष्ट्रकी रक्षा करनेवाली शक्तियोंको भी मजबूत और बलवान बनायेगा। आचार्य विनोबा भावे भी इस आवश्यकता पर बहुत भार देते रहे हैं कि ग्रामदान द्वारा सहकारी समाजकी रचना करके भारतके गांवोंका सुदृढ़ संगठन खड़ा किया जाय। पंचायत-राज या विकेन्द्रित लोकतंत्रके इस आदर्शको मध्यकालीन कल्पनाओं पर गढ़ी भावना-प्रधान वस्तु नहीं समझना चाहिये। पश्चिमके अद्यतन आर्थिक और राजनीतिक विचारोंका अध्ययन करनेसे पता चलेगा कि वहां

प्राक्कथन

यह सचमुच बड़े हर्षकी बात है कि नवजीवन ट्रस्ट महात्मा गांधीके 'ग्राम-स्वराज्य' विषयक विचारोंका संग्रह पुस्तकके रूपमें प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तकमें खेती-बाड़ी, ग्रामोद्योग, पशु-पालन, यातायात, बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई जैसे ग्राम-जीवनके विविध और विभिन्न पहलुओं पर गांधीजीके विचारोंका समावेश किया गया है। आज हम राजनीतिक और आर्थिक सत्ताके विकेन्द्रीकरणके आधार पर भारतमें पंचायत-राजकी स्थापनाका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे समय यह पुस्तक इस क्षेत्रमें कार्य करनेवाले सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंके लिए अवश्य ही बड़ी मूल्यवान सिद्ध होगी। आज हमारे देशमें सामूहिक विकासका जो आन्दोलन चल रहा है उसे ऐसा कार्यक्रम मानना गलत होगा, जो अधिकांशमें पश्चिमके देशोंमें प्रचलित लोकतंत्रोंसे भारतमें लाया गया है। हमारे राष्ट्रके सामूहिक विकासका आधार आवश्यक रूपमें भारतकी परिस्थितियों पर और भारतकी परम्पराओं पर ही होना चाहिये। इसलिए यह बड़े महत्त्वकी बात है कि जिन कार्यकर्ताओंको इस आन्दोलन और कार्यक्रममें भाग लेनेकी तालीम दी जाती है, उन सबको ग्राम-सुधारके विभिन्न पहलुओं पर गांधीजीके विचारोंका पूरा परिचय हो। अगर हम भारतीय आयोजनसे सम्बन्धित गांधीजीके अनुभवों और आदर्शोंकी उपेक्षा करें और उनकी ओर ध्यान न दें, तो हम पक्की बुनियाद पर होनेवाले अपने लोकतंत्रके विकासको बहुत बड़ी हानि पहुंचाकर ही ऐसा करेंगे।

यह सोचना गलत है कि गांधीजी आजके उद्योगीकरणके बारेमें बहुत पुराने विचार रखते थे। सच पूछा जाय तो वे उद्योगोंके यंत्रीकरणके विरुद्ध नहीं थे; वे कड़ा विरोध उस पागलपनका करते थे, जो आज यंत्रोंके लिए बताया जाता है। गांवोंके लाखों कारीगरोंको काम दे सकनेवाले छोटे यंत्रोंमें जो भी सुधार किया जाय, उसका वे स्वागत करते थे। गांधीजी बड़े बड़े कारखानोंमें विपुल मात्रामें माल पैदा करनेके

बजाय देशके विशाल जन-समुदायों द्वारा अपने घरों और झोंपड़ोंमें मालका उत्पादन करनेकी हिमायत करते थे। वे भारतके प्रत्येक सबल व्यक्तिको पूरा काम देनेके बारेमें बहुत अधिक चिन्तित रहते थे; और वे मानते थे कि यह ध्येय तभी सिद्ध होगा जब गांवोंमें सुचारु रूपसे ग्रामोद्योगों तथा कुटीर-उद्योगोंका संगठन और सचालन किया जायगा। जो आर्थिक योजना गामीण क्षेत्रोंमें बेकार पड़ी रहनेवाली मानव-शक्तिका पूरा पूरा उपयोग नही करती, वह पक्की नींव पर रची हुई अथवा बुद्धिमानीकी योजना नही कही जा सकती। गाधीजीने कहा था "भूखों मरनेवाली और बेकार रहनेवाली जनताके सामने ईश्वर केवल एक ही स्वीकार्य रूपमें प्रकट होनेकी हिम्मत कर सकता है। वह रूप है—काम और मजदूरीके रूपमें भोजनका वचन।" (निर्मलकुमार बोस सलेक्शन्स फ्रॉम गाधी, पृ० ४९) पश्चिमके अर्थशास्त्री आज पूरे काम या पूरी रोजीके इस आदर्शको योजनाबद्ध आर्थिक विकासकी आधार-शिला मानते हैं— विशेषत ऐसे अर्ध-विकसित देशोंके आर्थिक विकासके लिए, जिनकी जनसंख्या बढी है और दिनोदिन बढ़ती जा रही है। प्रोफे० गैल्ब्रेइथ इस मतके हैं कि "बेकारीके साथ जुड़े हुए अधिक उत्पादनकी अपेक्षा सब लोगोंको पूरा काम देना अधिक वाछनीय है।" (दि एफ्लुएन्ट सोसाइटी, पृ० १५५)

महात्मा गाधी ग्राम-पचायतोंके संगठन द्वारा आर्थिक और राज-नीतिक सत्ताके विकेन्द्रीकरणका जोरदार समर्थन करते थे। उनका यह निश्चित मत था कि यदि वैज्ञानिक दृष्टिसे ग्राम-पचायतोंका सगठन किया जाय, तो उससे केवल गावोंकी सामाजिक और आर्थिक शक्ति ही नहीं बढ़ेगी, परन्तु यह विदेशी आक्रमणके खतरेसे राष्ट्रकी रक्षा करनेवाली शक्तियोंको भी मजबूत और बलवान बनायेगा। आचार्य विनोबा भावे भी इस आवश्यकता पर बहुत भार देते रहे हैं कि ग्रामदान द्वारा सहकारी समाजकी रचना करके भारतके गावोंका सुदृढ सगठन खड़ा किया जाय। पचायत-राज या विकेन्द्रित लोकतत्रके इस आदर्शको मध्यकालीन कल्पनाओं पर खड़ी भावना-प्रधान वस्तु नहीं समझना चाहिये। पश्चिमके अद्यतन आर्थिक और राजनीतिक विचारोंका अध्ययन करनेसे पता चलेगा कि वहां

आज विकेन्द्रित संस्थाओंको मजबूत नींव पर लोकतंत्रकी स्थापना करनेके लिए बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रोफे० जोड कहते हैं: "यदि सामाजिक कार्यमें मानवकी श्रद्धाको पुनर्जीवित करना हो, तो राज्यको काटकर छोटे छोटे क्षेत्रोंमें बांट देना चाहिये और उसके कार्योंको विकेन्द्रित कर डालना चाहिये।" (मॉडर्न पोलिटिकल थियरी, पृ० १२०–२१) अपनी 'फैबियन सोशलिज्म' नामक पुस्तकमें प्रोफे० कोलने यह मत प्रकट किया है कि यदि सामान्य पुरुषों और स्त्रियोंमें सामूहिक कार्यकी क्षमताका व्यापक प्रसार करना हो, तो "हमें छोटे छोटे लोकतंत्रोंके आधार पर अपने समाजकी रचना करने लग जाना चाहिये।" इस दृष्टिकोणसे, भारतके गांवोंमें उत्साह और उमंगके साथ पंचायत-राजका जो प्रयोग आरंभ हुआ है, वह गांधीजीकी कल्पनाके 'ग्राम-स्वराज्य'का ध्येय सिद्ध करनेकी दिशामें उठाया गया सही कदम कहा जायगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमें स्पष्ट रूपसे यह समझ लेना चाहिये कि गांधीजी ऐसी सामाजिक और आर्थिक रचनाके हिमायती नहीं थे, जो केवल भौतिक मूल्योंकी बुनियाद पर खड़ी हो। वे सदा सरल और सादा जीवन तथा उच्च विचारके आदर्शका प्रतिपादन करते थे; और उन्होंने केवल रहन-सहनके स्तरको अधिक ऊंचा उठानेके लिए ही काम नहीं किया, परन्तु समग्र जीवनके स्तरको अधिक ऊंचा उठानेके लिए कार्य किया। गांधीजी कहते हैं: "सच्चे अर्थमें सभ्यता जीवनकी आवश्यकताओंको बढ़ानेमें नहीं, परन्तु जान-बूझकर और स्वेच्छासे उनकी मर्यादा बांधनेमें है।"

दुर्भाग्यसे आर्थिक जीवनके इस नैतिक और आध्यात्मिक पहलूकी हमेशा उपेक्षा की गई है, जिसके फलस्वरूप सच्चे मानव-कल्याणको बड़ी हानि पहुंची है। आधुनिक अर्थशास्त्री अब इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पर जोर देने लगे हैं कि यदि हमें विशाल पैमाने पर शीघ्र गतिसे आर्थिक विकास साधना हो, तो हमें 'वस्तुओंकी गुणवत्ता' बढ़ानेके साथ 'मनुष्यकी गुणवत्ता' भी बढ़ानी चाहिये। प्रोफे० शुम्पिटरका यह कथन यथार्थ है कि आर्थिक और राजनीतिक लोकतंत्रको सफल बनाना

हो, तो "उसमें काफी संख्यामें ऐसे व्यक्ति होने चाहिये, जिनमें पूरी योग्यता हो और जिनका नैतिक चरित्र काफी ऊंचा हो।" (कैपिटलिज्म, सोशलिज्म एण्ड डेमोक्रेसी) इसी विचारको श्री क्रॉसलैण्डने प्रभावशाली शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है: "हम विपुलताके युगमें केवल यह जाननेके लिए ही प्रवेश नहीं करना चाहते कि ऐसा करनेमें हमने जीवनके उन मूल्योंको खो दिया है, जो हमें इस विपुलताका उपभोग करनेका सच्चा मार्ग बता सकते हैं।" (फ्यूचर ऑफ सोशलिज्म, पृ० ५२९) इसलिए जो कार्यकर्ता, चाहे वे सरकारी हों या गैर-सरकारी, गांधीजीके सपनोंके नये भारतका निर्माण करनेके भगीरथ कार्यमें लगे हुए हैं, उन सबको हमारे राष्ट्रीय आयोजनके इस मानवतापूर्ण और नैतिक पहलूको निरन्तर ध्यानमें रखना चाहिये।

श्रीमन्नारायण

नई दिल्ली,
१३-११-'६२

भूमिका

मानव-जातिकी एकताका आदर्श आज जितनी तीव्रतासे दुनियाके राजनीतिज्ञों और वैज्ञानिकों तथा साहित्यिकों और सामान्य लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, उतनी तीव्रतासे इतिहासमें पहले कभी उसने इन सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं किया था। श्री अरविन्दके शब्दोंमें, "आज मानव-एकताका आदर्श अस्पष्ट रूपमें हमारी चेतनाके सामने खड़ा हो रहा है। हमारे युगकी बौद्धिक और भौतिक परिस्थितियोंने हमारी चेतनाको इस आदर्शके लिए तैयार कर दिया है; और विशेषत: आजकी वैज्ञानिक शोधोंने — जिन्होंने हमारी पृथ्वीको इतना छोटा बना दिया है कि उसके बड़ेसे बड़े राज्य भी आज हमें किसी एक देशके प्रान्तोंसे अधिक बड़े नहीं मालूम होते — इस आदर्शको हमारी चेतना पर लगभग लाद-सा दिया है।"[1] अर्नाल्ड टॉयनबीके ये उद्‌गार बिलकुल उचित हैं: "पश्चिमकी यंत्र-विज्ञानकी शक्तिने, जैसा कि हम काव्यमय भाषामें कहते हैं, 'अन्तरका सर्वथा अंत कर दिया है'; साथ ही इस शक्तिने मानव-इतिहासमें पहली बार मानवके हाथोंको ऐसे शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज कर दिया है, जो मानव-जातिका सर्वनाश कर सकते हैं। . . . आज हमें मानव-एकताकी इतनी अधिक आवश्यकता क्यों है, इसके कारणका पता लगायें तो वह रोमांचक है और साधारण भी है। उसे संक्षेपमें इस सूत्रमें रख दिया गया है: 'एक विश्व अथवा कुछ नहीं।' आज दुनियामें राजनीतिक दृष्टिसे जाग्रत प्रत्येक पुरुष और स्त्रीके सामने यह बात स्पष्ट है कि इस अणुयुगमें यदि हम युद्धका अन्त नहीं करेंगे, तो युद्ध हमारा अन्त कर देगा।"[2] पिटिरिम सोरोकिनने दुनियाके सामने खड़ी इस समस्याको अपनी अनोखी भाषामें इस प्रकार

---

१. दि आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी।

२. वन वर्ल्ड एण्ड इंडिया — टॉयनबीके सब उद्धरण इसी पुस्तकसे लिये गये हैं।

रखा है: "आज मानव-जाति, जिसके शरीर पर पड़े हुए युद्धके घावोंसे रक्तकी धारा बह रही है और जो सर्वनाशके आणविक भस्मासुरसे अत्यन्त त्रस्त और भयभीत है, निराश होकर मृत्युके पंजेसे बाहर निकलनेका उपाय खोज रही है। वह अशोभनीय मृत्युके बदले जीवनकी उत्कट कामना कर रही है। युद्धके स्थान पर वह शांति चाहती है। घृणाके बदलेमें वह प्रेमकी भूखी है। अव्यवस्थाके स्थान पर वह व्यवस्थाकी स्थापना करनेकी आकांक्षा रखती है। वह उच्चतर मानवताके, अधिक बुद्धिमानीके तथा अपने शरीरके लिए यान्त्रिक सभ्यताके रक्तरंजित चिथड़ोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर सांस्कृतिक परिधानके स्वप्न देखती है। अपनी ही मूर्खतासे मृत्युके शिकंजेमें फंस जाने तथा 'जीवन-मरण' की कठोर समस्याका सामना करनेके कारण मानव-जाति पहलेसे अधिक हताश बनकर जीवन और अमरताकी शाश्वत शोध करनेके लिए विवश हो गई है।"[३]

यदि मानव-जाति, जिसे आज संहारक शस्त्रास्त्रोंने भयंकर चुनौती दे दी है, सही दिशामें काम करनेसे चूकती है, तो उसके सामने सर्वनाशका ही एकमात्र विकल्प रह जायगा। विश्व-सरकारकी स्थापना ही इस सर्वनाशसे मनुष्य-जातिकी रक्षा कर सकती है। युद्धका अन्त करनेकी आवश्यकताने विश्व-सरकारकी स्थापनाको अनिवार्य कर दिया है। सच्चे विश्व-राज्यकी स्थापनाके साथ आवश्यक रूपमें वर्तमान राज्योंकी सार्वभौम राष्ट्रीय सत्ताके अन्तका प्रश्न जुड़ा हुआ है।

विश्व-सरकारकी स्थापना कैसे होगी, यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है, क्योंकि राष्ट्रकी सार्वभौम सत्ताका त्याग करना बहुत आसान नहीं होगा। दुनियामें ऐसे इने-गिने ही राजपुरुष होंगे जो गांधीजीकी तरह कहेंगे: "राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी अपेक्षा सार्वभौम परस्परावलम्बनके लिए अपनी तत्परता प्रकट करनेमें न तो मुझे कोई भव्यता दिखाई देती और न ऐसा करना असंभव मालूम होता।... आत्मत्यागका स्वाभाविक क्रम यह होता है कि व्यक्ति समाजके लिए त्याग करता है, समाज जिलेके लिए त्याग करता है, जिला प्रान्तके लिए त्याग करता है, प्रान्त

३. रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ ह्युमेनिटी।

राष्ट्रके लिए त्याग करता है और राष्ट्र सारे जगतके लिए त्याग करता है।" अर्नाल्ड टॉयनबी कहते हैं: "आजके अणुयुगमें हमारे राजनीतिज्ञोंमें सम्राट् अशोककी भावना (अर्थात् अहिंसा) उत्पन्न होनी चाहिये। हमारा काम एकताके बिना चल ही नहीं सकता। लेकिन साथ ही साथ हम बल-प्रयोग अथवा दबावकी पद्धतियोंसे भी इस अनिवार्य उद्देश्यको सिद्ध नहीं कर सकते; ऐसा करनेसे हमारे उद्देश्यको हानि पहुंचेगी। आजके युगमें हम मानव-जातिकी एकता सिद्ध करनेके लिए बल-प्रयोगका नहीं परन्तु हृदय-परिवर्तनका ही उपाय काममें ले सकते हैं। अणुयुगमें बल-प्रयोगका परिणाम मानव-जातिकी एकतामें नहीं परन्तु आत्मनाशके रूपमें ही आयेगा। वर्तमान युगमें हमारा भय और हमारी अन्तरात्मा दोनों हमसे ऐसी नीति अपनानेका तकाजा करते हैं, जिसका अनुसरण करनेकी प्रेरणा सम्राट् अशोकको अपने समयमें केवल अन्तरात्मासे प्राप्त हुई थी।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंसाका मार्ग मानव-जातिके सामने सदाके लिए बन्द हो गया है। श्री भारतन् कुमारप्पाकी अंग्रेजी पुस्तक 'विलेजिज़्म'की प्रस्तावनामें महात्मा गांधीने लिखा था: "हमारी पीढ़ीके पिछले दो महायुद्धोंने आजकी आर्थिक व्यवस्थाओंका पूरा पूरा दिवालियापन सिद्ध कर दिया है। संयोगवश, इन दो महायुद्धोंने मेरी दृष्टिसे युद्धका भी दिवालियापन सिद्ध कर दिखाया है।" क्या हम कह सकते हैं कि अब अहिंसाका युग आरंभ हो गया है? अब संसारके सामने अहिंसाके इस असीम और अनन्त भंडारका, जिसे आज तक संसारके व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञोंने घृणाकी नजरसे देखा है, उपयोग किये सिवा दूसरा कोई विकल्प नहीं रहेगा। गांधीजीका विश्वास था कि भारतको एक निश्चित 'मिशन' सिद्ध करना है। वे कहते हैं: "जाग्रत और स्वतंत्र भारतके पास हिंसासे कराहती दुनियाके लिए शांति और सद्भावनाका सन्देश है।" एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा है: "अपने हृदयकी गहराइयोंमें मैं यह अनुभव करता हूं कि . . . युद्धमें होनेवाले भयंकर मानव-संहारके कारण दुनिया आज मृत्युके किनारे खड़ी है। दुनिया इस स्थितिसे बाहर निकलनेका मार्ग खोज रही है और मैं

यह विश्वास करनेका साहस करता हूं कि शांतिकी भूखी दुनियाको इस विकट परिस्थितिसे बाहर निकलनेका मार्ग बताना शायद भारतकी इस प्राचीन भूमिका विशेष अधिकार होगा।" अर्नाल्ड टॉयनबीके मतमें "भारतकी उदारता और विशाल व्यापक दृष्टि मानव-एकताकी सिद्धिमें उसकी विशेष देन होगी। . . . और मेरा विश्वास है कि विश्वकी भावी पीढ़ियां संयुक्त मानव-जातिके लिए इसे भारतकी एक विशिष्ट भेंटके रूपमें स्वीकार करेंगी।"

आपसके झगड़ों और विवादोंको मिटानेका अंतिम पृष्ठबल जब तक सैनिक शक्ति रहेगी, तब तक विश्व-राज्यके द्वारा विश्वशांति स्थापित करनेकी अभिलाषा दिवास्वप्न जैसी बनी रहेगी। यदि हम चिरस्थायी शांति चाहते हों, तो बलके प्रयोगका हमें सर्वथा अन्त करना होगा। केवल नैतिक पृष्ठबलवाली विश्व-सरकार ही स्थायी शांतिको निश्चित बना सकती है। छोटे या बड़े समस्त घटकोंकी समानता तथा भ्रातृभावकी बुनियाद पर खड़ा विश्व-संघ विश्वशांतिकी स्थापनामें बहुत हद तक सहायक सिद्ध होगा। विश्व-सरकारकी रचना अपने-आपमें शांतिकी गारंटी नहीं हो सकती। क्योंकि युद्धकी जड़ें राष्ट्रोंकी संघर्षको जन्म देनेवाली सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओंमें होती हैं। जब तक इन व्यवस्थाओंमें जड़से परिवर्तन नहीं होता, तब तक विश्वशांतिकी आशा आकाश-कुसुमके समान बनी रहेगी। इसलिए विश्व संगठनको चाहिये कि वह सच्चे लोकतन्त्रके संचालनको निश्चित बनाये और हर प्रकारके शोषणका अन्त कर दे। और, केवल छोटे छोटे घटक ही सच्चे लोकतंत्रकी व्यवस्थामें सहायक होते हैं तथा व्यक्तियोंके पूर्ण विकासका अवसर प्रदान करते हैं। घटक जितने बड़े होंगे उतना ही वैयक्तिक उपक्रम और स्वतंत्रताके लिए कम अवकाश मिलेगा। विशाल संगठन व्यक्तियों तथा छोटे समूहोंको दबा देते हैं क्योंकि वे एकरूपता सिद्ध करने और सबको एक सांचेमें ढालनेका प्रयत्न करते हैं। ये दोनों अन्तमें समाजकी गतिको रोक देते हैं और इसके ह्रासके कारण बनते हैं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि स्थायी विश्वशांतिका हेतु सिद्ध करनेके लिए वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओंमें सुधार करके छोटे छोटे विकेन्द्रित

घटकोंकी रचना की जाय। इसके अभावमें विश्वशांतिका आदर्श छिन्न-भिन्न हो जायगा और विश्व-सरकार ऐसी विशाल अजेय समस्याओंको जन्म देगी, जिनसे उसका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ जायगा। अतः विकेन्द्रित राजनीतिक और आर्थिक घटकोंकी रचना करना अब अनिवार्य हो गया है।

मनुष्य-जातिका अनुभव इस बातको प्रमाणित करता है कि सामूहिक जीवन उस अवस्थामें अधिक विविध, सफल और आनन्दपूर्ण होता है, जब उसकी रचना छोटे घटकों तथा अधिक सादे संगठनोंके आधार पर की जाती है। केवल छोटे घटकों या समाजोंमें ही जीवन पूर्ण रूपमें विकसित और समृद्ध होता आया है। विशाल क्षेत्रोंमें फैले हुए सामूहिक जीवनमें एकता और सम्बद्धता तथा उत्पादक-शक्तिका अभाव पाया जाता है।

ग्रीसके प्राचीन नगर-राज्य तथा भारतके ग्राम-प्रजातंत्र समृद्ध और शक्तिशाली जीवनके सर्वांगीण विकासके सुन्दर उदाहरण थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरूने लिखा है:

"ग्राम-स्वराज्यकी यह पद्धति आर्योंकी शासन-व्यवस्थाकी बुनियाद थी। इसी पद्धतिने उसे बल प्रदान किया। ग्रामसभायें अपनी स्वतंत्रताओंकी इतनी जागरूकतासे रक्षा करती थीं कि राज्य द्वारा यह नियम ही बना दिया गया था कि राजाकी अनुमतिके बिना कोई सैनिक गांवमें प्रवेश न करे। 'नीतिसार' कहता है कि जब प्रजाजन किसी अधिकारीकी शिकायत करें तब राजाको 'अधिकारियोंका पक्ष न लेकर अपने प्रजाजनोंका पक्ष लेना चाहिये'; और यदि बहुत लोगोंकी शिकायत हो तो अधिकारीको अपने पदसे हटा दिया जाना चाहिये। 'क्योंकि पदके अभिमानकी मदिरा पीकर कौन मनुष्य मदोन्मत्त नहीं बन जाता?' (नीतिसार) आज इस देशमें जो सरकारी अधिकारी हम पर बुरा शासन करते हैं और हमारे साथ बुरा व्यवहार करते हैं, उन पर विशेष रूपसे ये बोधप्रद शब्द लागू होते हैं!"

*

"सन् १८३० में भारतके एक ब्रिटिश गवर्नर सर चार्ल्स मेटकाफने ग्राम-समाजोंका नीचेके शब्दोंमें वर्णन किया था :

'ये ग्राम-समाज छोटे छोटे प्रजातंत्र हैं, जिन्हें अपनी आवश्यकताकी लगभग हर वस्तु अपने भीतर ही मिल जाती है और जो विदेशी सम्बन्धोंसे लगभग स्वतंत्र होते हैं। वे ऐसी परिस्थितियोंमें भी टिके रहते हैं, जिनमें दूसरी हर वस्तुका अस्तित्व मिट जाता है। ग्राम-समाजोंका यह संघ — जिनमें से प्रत्येक समाज अपने-आपमें एक छोटासा स्वतंत्र राज्य होता है — उनके सुखका बहुत बड़ी हद तक साधन बनता है और उसके अन्तर्गत वे बड़ी मात्रामें स्वतंत्रता और स्वाधीनताका उपभोग करते हैं।'

"इस वर्णनमें भारतकी प्राचीन ग्राम-व्यवस्थाकी बड़ी प्रशंसा की गई है। इसमें लगभग ग्रामीण जीवनकी आदर्श अवस्थाका चित्र प्रस्तुत किया गया है। बेशक, इस व्यवस्थामें गांवोंको जो बहुत बड़ी स्थानीय स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राप्त थी वह बहुत अच्छी बात कही जायगी। इसके दूसरे अच्छे पहलू भी थे। . . . ग्राम-प्रजातंत्रोंके पुनर्जन्म और पुनर्निर्माणका कार्य अभी हमारे लिए करना बाकी है।"[४]

गांधीजीने जिस ग्राम-स्वराज्यकी कल्पना की है, उसमें पुरानी ग्राम-पंचायतोंको पुनर्जीवन देनेकी बात नहीं है; उसमें आधुनिक जगतको ध्यानमें रखते हुए स्वराज्यके स्वतंत्र ग्राम-घटकोंकी नई रचना करनेकी बात है। ग्राम-स्वराज्य राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रोंमें अहिंसाको मूर्तरूप प्रदान करता है।

गांधीजीकी रायमें आदर्श समाज एक राज्य-रहित लोकतंत्र है, प्रबुद्ध और ज्ञापन अराजकताकी अवस्था है, जिसमें सामाजिक जीवन इतनी पूर्णताको पहुंच जाता है कि वह स्वयं-शासित और स्वयं-नियंत्रित बन जाता है। "आदर्श अवस्थामें कोई राजनीतिक सत्ता नहीं

४. ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री।

होगी, क्योंकि किसी राज्यका अस्तित्व नहीं होगा।" गांधीजी मानते थे कि किसी आदर्शकी संपूर्ण सिद्धि असंभव है। परन्तु "आदर्श युक्लिडकी उस रेखाके समान है, जिसकी कोई चौड़ाई नहीं होती और जिस रेखाको आज तक न तो कोई खींच पाया है और न भविष्यमें कभी खींच पायेगा। परन्तु फिर भी उस आदर्श रेखाको अपने सामने रखकर ही हमने रेखागणितमें इतनी प्रगति की है।" राजनीतिक क्षेत्रमें गांधीजीने हमें ग्राम-स्वराज्यका विचार दिया है, जो उनके राज्य-रहित लोकतंत्रके आदर्शके समीप पहुंचता है। वे उस राज्यको उत्तम मानते हैं, जो कमसे कम शासन करता है। साम्यवादी दर्शनके अनुसार समाजका अंतिम रूप वह होगा, जिसमें 'राज्यका अन्त हो जायगा।' परन्तु रूसके सर्वसत्ताधारी राज्यमें राज्यके हाथमें सारी सत्ता केन्द्रित हो गई है। यह विश्वास करना कठिन है कि रूसमें किसी भी समय राज्यका अंत होगा। महात्मा गांधी व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वे राज्य-रहित लोकतंत्रके आदर्शकी व्यावहारिक उपयोगिताको समझते थे, इसलिए उन्होंने हमारे समक्ष ग्राम-स्वराज्यका विचार प्रस्तुत किया। ग्राम-स्वराज्यमें 'राज्यका अंत नहीं होता' परन्तु 'राज्यका विकेन्द्रीकरण होता है।' इस प्रकार ग्राम-स्वराज्य एक ऐसा आदर्श है, जिसे सिद्ध किया जा सकता है; वह 'राज्यके अंत' जैसा बहुत दूरका लक्ष्य नहीं है।

आधुनिक लोकतंत्रोंमें चुनावोंकी प्रधानता होती है, पार्टियोंका प्रभुत्व होता है, एकमात्र लक्ष्य सत्ताप्राप्तिका होता है और सारा शासन-तंत्र अत्यन्त अटपटी केन्द्रित पद्धतिसे चलाया जाता है। आजकी लगभग समूची राजनीतिक पद्धतियोंका — फिर वे पूंजीवादी हों, समाजवादी हों अथवा साम्यवादी हों — प्रधान लक्षण सत्ताका केन्द्रीकरण है; इन पद्धतियोंके मातहत चलनेवाले राज्यतंत्र ऐसे विशाल बन जाते हैं कि उनकी व्यवस्था कठिन हो जाती है और ऊपरसे वे भारी-भरकम बन जाते हैं। व्यक्तियोंका उनमें कोई महत्त्व नहीं होता, यद्यपि मतदाताओंके नाते उन्हें स्वामी कहा जाता है। समय समय पर जो चुनाव होते हैं उनमें अपना मत देनेके लिए व्यक्ति उपस्थित होते हैं और फिर अगले चुनाव तकके लिए लम्बी तानकर सो जाते हैं। एकमात्र यही ऐसा राजनीतिक कार्य है, जो आधु-

निक लोकतंत्रमें अमुक निर्धारित समयमें व्यक्ति एक बार करता है। यह कार्य व्यक्ति एक केन्द्रित पार्टी-पद्धतिके आदेशों तथा समाचार-पत्रोंके मार्गदर्शनके अनुसार मजबूर होकर करता है; और ये समाचार-पत्र मुख्यतः केन्द्रित आर्थिक सत्ताधारियोंके हाथके खिलौने होते हैं। व्यक्तिका सरकारकी नीतियोंके निर्माणमें बहुत थोड़ा या बिलकुल हाथ नहीं होता। किसी कल्याणकारी राज्य या सर्वसत्ताधारी राज्यमें व्यक्ति मानवका रूप रखते हुए भी एक सुपोषित, मूक तथा राज्य-संचालित पशु बन जाता है।

गांधीजी चाहते थे कि भारतमें सच्चे लोकतंत्रकी स्थापना हो। इसलिए उन्होंने कहा था: "सच्चा लोकतंत्र केन्द्रमें बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। उसे प्रत्येक गांवके लोगोंको नीचेसे चलाना होगा।" ग्राम-स्वराज्यमें गांव संपूर्ण सत्तायें भोगनेवाला एक विकेन्द्रित राजनीतिक घटक होगा, इसलिए प्रत्येक व्यक्तिका सरकार अथवा शासनमें सीधा हाथ होगा। व्यक्ति अपनी सरकारका निर्माता होगा। गांवका शासन चलानेके लिए प्रतिवर्ष गांवके पांच व्यक्तियोंकी एक पंचायत चुनी जायगी। इसके लिए एक अल्पतम निर्धारित योग्यतावाले गांवके वयस्क स्त्री-पुरुषोंको अपने पंच चुननेका अधिकार होगा। इस पंचायतको सब प्रकारकी आवश्यक सत्तायें और अधिकार प्राप्त होंगे। इस ग्राम-स्वराज्यमें दंडकी कोई प्रथा नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत धारासभा, न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा तीनोंका कार्य संयुक्त रूपमें करेगी।

ऐसी शासन-पद्धतिमें नागरिक सत्ता-नियंत्रित न होकर स्वयं-नियंत्रित होंगे; वे प्रत्येक कार्य अपनी सूझबूझसे करेंगे और जीवनकी सारी बातोंके लिए सरकारकी ओर ताकनेवाले न होकर नागरिक उत्तरदायित्वकी उच्च विकसित भावना रखनेवाले होंगे।

सच्चा लोकतंत्र अर्थात् स्वराज्य व्यक्तिकी पूर्ण स्वतंत्रता और विकासके लिए कार्य करता है; यह व्यक्ति ही किसी सच्ची राजनीतिक पद्धतिका अंतिम प्रेरक बल होता है।

इस प्रकार गांधीजीकी कल्पनाका ग्राम-स्वराज्य एक सच्चा और शक्तिशाली लोकतंत्र है, जो आजकी शासन-पद्धतियोंके साथ जुड़ी हुई अनेक

राजनीतिक बुराइयोंका रामबाण इलाज है। ऐसा सच्चा विकेन्द्रित लोकतंत्र संपूर्ण मानव-जातिके लिए आशाका उदात्त सन्देश देनेवाला होगा।

गांधीजीकी दृष्टिमें राजनीतिक सत्ता अपने-आपमें कोई साध्य नहीं थी, परन्तु लोगोंके लिए जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अपनी स्थिति सुधारनेकी क्षमता प्राप्त करनेका एक साधनमात्र थी। इसलिए अपने प्रसिद्ध 'आखिरी वसीयतनामे' में गांधीजीने कहा था कि भारतने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है, लेकिन उसे "अभी शहरों और कस्बोंसे भिन्न अपने सात लाख गांवोंके लिए सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है।" उस वसीयतनामेमें ग्राम-स्वराज्य अर्थात् पंचायत-राजका चित्र और कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है, जो दूसरे शब्दोंमें संपूर्ण राजनीतिक सत्ता भोगनेवाला एक अहिंसक, स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण आर्थिक घटक है। गांधीजीकी कल्पनाका ग्राम-स्वराज्य मानव केन्द्रित है, जब कि पश्चिमी अर्थ-व्यवस्था धन-केन्द्रित है। पहली अर्थ-व्यवस्था जीवनकी अर्थ-व्यवस्था है और दूसरी मृत्युकी अर्थ-व्यवस्था है।

गांधीजीकी कल्पनाके ग्राम-स्वराज्यकी योजनामें ग्रामसेवकका स्वभावतः केन्द्रीय स्थान होगा। उसके कर्तव्योंके विषयमें गांधीजी कहते हैं कि ग्रामसेवक गांवोंका इस प्रकारसे संगठन करेगा कि वे खेती और ग्रामोद्योगोंके द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी बन जायें; वह ग्रामवासियोंको स्वास्थ्य और सफाईकी तालीम देगा तथा इस बातकी हर तरहसे सावधानी रखेगा कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ने न पाये और उन पर रोगोंका आक्रमण न हो; साथ ही वह गांवके लोगोंको नई तालीमके आधार पर जन्मसे मृत्यु तककी शिक्षा देनेकी व्यवस्था करेगा।

विश्वशांतिकी आकांक्षा रखनेवाले संसारके राजनीतिज्ञ ऊपरसे नीचेकी ओर जानेवाली योजना बनानेकी बात सोचते हैं, जब कि गांधीजीकी सारी योजना नीचेसे ऊपरकी दिशामें काम करनेकी थी। इसलिए उन्होंने कहा है: "स्वतंत्रता नीचेसे आरंभ होनी चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक गांव एक प्रजातंत्र अथवा पंचायत होगा, जिसके हाथमें संपूर्ण सत्ता होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गांवको स्वाश्रयी और आत्म-निर्भर बनना होगा

तथा अपने सारे कामकाजकी व्यवस्था स्वयं करनेकी योग्यता प्राप्त करनी होगी। यहां तक कि सारी दुनियासे अपनी रक्षा करनेकी क्षमता भी उसे प्राप्त करनी होगी। प्रत्येक गांवको ऐसी तालीम देनी होगी और इस तरह तैयार करना होगा कि वह किसी भी बाहरी आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेके प्रयत्नमें अपने-आपको मिटा सके। इस प्रकार अंतमें व्यक्ति ही गांवका घटक यानी आधार होगा।" गांधीजीकी दृष्टिमें "स्वराज्यका अर्थ है सरकारके नियंत्रणसे स्वतंत्र रहनेका निरन्तर प्रयास, फिर वह विदेशी सरकार हो या राष्ट्रीय सरकार। यदि देशके लोग जीवनकी हर बातकी व्यवस्था और नियमनके लिए स्वराज्य-सरकारकी ओर ताकने लगें, तब तो उस सरकारका कोई अर्थ नहीं रह जायगा।" ग्राम-स्वराज्यमें अंतिम सत्ता व्यक्तिके हाथमें रहेगी। व्यक्ति यदि वास्तवमें 'ग्राम-स्वराज्य' का आदर्श सिद्ध हुआ देखना चाहता है, तो उसे सर्व-प्रथम 'स्व-राज्य' सिद्ध करना चाहिये। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। इस प्रकार 'ग्राम-स्वराज्य' 'स्व-राज्य' की उस भावनाका प्रतीक होगा, जिसे ग्राम-स्वराज्यके अभिन्न अंग बने हुए व्यक्ति अपने दैनिक जीवनमें प्रकट करेंगे। इसलिए ग्रामसेवकको सबसे पहले ग्रामवासियोंकी सच्ची शिक्षा पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। वह शिक्षा व्यक्तिके मस्तिष्क, हृदय और हाथका सामंजस्यपूर्ण विकास साधनेवाली होनी चाहिये। नई तालीम गांधीजीकी तपस्याका सुफल है। वे मस्तिष्क, हृदय और हाथके सामंजस्यपूर्ण विकासके मूर्तिमंत उदाहरण थे। नई तालीमकी संपूर्ण योजना अहिंसाकी भावनासे ओतप्रोत है। उसका उद्देश्य हस्त-उद्योग द्वारा बालकके शरीर, मन और आत्माका सर्वांगीण विकास साधना है। नई तालीमके सिद्धान्तोंके अनुसार सच्ची शिक्षा प्राप्त किया हुआ नाग-रिक ग्राम-स्वराज्यके निर्माणमें बहुत बड़ी सहायता करेगा।

ग्राम-स्वराज्य ऐसी सरल और सादी ग्राम-अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण-रहित है और विकेन्द्रित है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोगके आधार पर अपने हर नागरिकको पूरा काम देनेका प्रबन्ध करती है और जीवनकी अन्न-वस्त्रकी प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आव-श्यकताओंके विषयमें स्वावलम्बन सिद्ध करनेका प्रयत्न करती है।

आजकी सारी अर्थ-व्यवस्थाओंका मूल भोग-विलास, आवश्यकताओंकी वृद्धि और नीति-विहीन अर्थशास्त्रमें है, इसलिए वे विशाल पैमानेके यंत्र-प्रधान, केन्द्रित और अटपटे संगठनोंका रूप ग्रहण कर लेती हैं। वे वेकारी, अर्ध-वेकारी, गरीवी, कंगाली, शोषण, वाजार हथियानेकी उन्मत्त दौड़ तथा कच्चे मालके लिए दूसरे देशों पर अधिकार जमानेकी लालसा आदि दोषोंसे दूषित हो जाती हैं। ऐसी अर्थ-व्यवस्थायें जिन भयंकर प्रतिस्पर्धाओं, संघर्षों और वर्ग-विग्रहोंको जन्म देती हैं, वे समाजके शरीरको घुनकी तरह कुरेद कर खा जाते हैं। वे व्यक्तिको गुलाम वना देती हैं, मानवको यंत्रके लिए खुराक मुहैया करनेवाला एक साधन मानती हैं और इस तरह उसे यंत्रके साथ जुड़े हुए एक पुर्जेकी स्थितिमें डाल देती हैं। कारखानोंमें निरन्तर एक ही प्रकारका काम करते करते मनुष्यकी आत्मा मर जाती है और उसकी सूक्ष्म उदात्त भावनायें नष्ट हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप वह मनोरंजनके लिए नैतिक पतन करनेवाले सिनेमा-गृहों, शराबकी दुकानों और वेश्यालयोंकी शरण लेता है और इस प्रकार कारखानेके थकाने और ऊवानेवाले कामकी क्रूरतासे भागनेका मिथ्या प्रयत्न करता है। आजका समाज विशेष अधिकारोंसे युक्त और ऐसे अधिकारोंसे वंचित वर्गोंके बीच, धनी और निर्धनके वीच विभाजित हो गया है। आज समाजमें जो अभूतपूर्व आर्थिक असमानता दिखाई देती है, उसमें लखपति और करोड़पति तो वैभव-विलासकी गोदमें निरुद्देश्य और ध्येयहीन जीवन विताते हैं और कड़ा परिश्रम करनेवाले श्रमिकोंको भरपेट भोजन भी नसीव नहीं होता। यंत्रोद्योगोंकी दृष्टिसे वहुत आगे बढ़े हुए अमेरिका और इंग्लैंड जैसे समृद्ध माने जानेवाले देश भी अभी तक वेकारीकी समस्या हल नहीं कर पाये हैं। भारतके सामने तो यह समस्या अनन्त गुने अधिक भयंकर रूपमें मुंह वाये खड़ी है — जिसके अनादि कालसे मुख्यतः खेती पर निर्वाह करनेवाले करोड़ों लोग सात लाख गांवोंमें फैले हुए हैं।

ग्राम-स्वराज्य गांधीजीकी आजीवन शोधका परिणाम है, जो भारतके [illegible]ों भूखों मरनेवाले लोगोंके साथ एकरूप हो गये थे। उन्होंने भारतकी [illegible] रामवाण उपायके रूपमें ग्राम-स्वराज्यकी योजना हमारे

सामने रखी है — यह योजना सारे संसारके लिए भी उतनी ही परिणामकारी सिद्ध हो सकती है, जिसके आज तकके इतिहासमें किसानोंको सर्वत्र शोषण और भुखमरीका शिकार होना पड़ा है। अपने ता० ५-१०-'४५ के पत्रमें गांधीजीने पंडित नेहरूको (हिन्दीमें) लिखा था :

"मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दुस्तानको सच्ची आजादी पानी है और हिन्दुस्तानके मारफत दुनियाको भी, तब आज नहीं तो कल देहातोंमें ही रहना होगा; झोंपडियोंमें, महलोंमें नहीं। कई अरब आदमी शहरोंमें और महलोंमें सुखसे और शांतिसे कभी नहीं रह सकते। न एक दूसरेका खून करके यानी — हिंसासे, न झूठसे — यानी असत्यसे।

"सिवाय इस जोडीके (यानी सत्य और अहिंसा) मनुष्य-जातिका नाश ही है, इसमें मुझे जरा-सा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसाका दर्शन हम देहातोंकी सादगीमें ही कर सकते हैं। वह सादगी चरखामें और चरखामें जो चीज भरी हैं उसी पर निर्भर है। मुझे कोई डर नहीं है कि दुनिया उल्टी ओर ही जा रही दिखती है। यो तो पतंगा जब अपने नाशकी ओर जाता है, तब सबसे ज्यादा चक्कर खाता है और चक्कर खाते खाते जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दुस्तान इस पतंगेके चक्करमें से न बच सके। मेरा फर्ज है कि आखिर दम तक उसमें से उसे (हिन्दुस्तानको) और उसके मारफत जगतको बचानेकी कोशिश करूं।

"मेरे कहनेका निचोड़ यह है कि मनुष्य-जीवनके लिए जितनी जरूरतकी चीज है, उस पर निजी काबू रहना ही चाहिये — अगर न रहे तो व्यक्ति बच ही नहीं सकता है। आखिर तो जगत व्यक्तियोंका ही बना है। बिन्दु नहीं है तो समुद्र नहीं है।"

इस तरह गांधीजी मानते थे कि मनुष्यको सरल और सादा जीवन जीना चाहिये और स्वेच्छासे गरीबीका व्रत लेना चाहिये। इस का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य जीवनकी सामान्य सुख-सुविधाओंका उपभोग न करे। गांधीजी कहते थे कि प्रत्येक मनुष्यको सतुलित आहार, आवश्यक

कपड़े और सुविधापूर्ण मकान मिलना ही चाहिये। उनका विश्वास था कि प्रत्येक प्राणीको भोजन पानेका अधिकार है। एक अवसर पर उन्होंने कहा था: "मेरी रायमें भारतकी और इसलिए सारे विश्वकी आर्थिक रचना ऐसी होनी चाहिये कि उसमें किसी मनुष्यको भोजन और वस्त्रके अभावका कष्ट न भोगना पड़े। दूसरे शब्दोंमें, उसमें प्रत्येक मानवको पूरा काम मिलना चाहिये, ताकि वह अपना निर्वाह भलीभांति कर सके। और यह ध्येय सर्वत्र तभी सिद्ध किया जा सकता है जब जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओंके उत्पादनके साधन जन-साधारणके हाथोंमें हों। ये साधन सब मनुष्योंके लिए उसी तरह बिना मूल्य सुलभ होने चाहिये, जिस तरह ईश्वरकी उत्पन्न की हुई हवा और पानी सबके लिए सुलभ हैं या होने चाहिये। दूसरोंका शोषण करनेके लिए इन साधनोंको व्यापारकी वस्तु नहीं बनाना चाहिये। उन पर किसी देश, राष्ट्र अथवा समूहका एकाधिकार अन्यायपूर्ण माना जाना चाहिये। इस सादे सिद्धान्तकी उपेक्षा करनेसे ही वह गरीबी और कंगाली पैदा हुई है, जो आज हम न केवल अपने इस अभागे देशमें परन्तु संसारके अन्य भागोंमें भी देख रहे हैं।"

गांधीजीका कहना था कि देशके हर नागरिकको पूरा काम देनेवाली अर्थ-व्यवस्था खड़ी करनेके लिए हमें उद्योगवादका, केन्द्रित उद्योग-धन्धोंका और अनावश्यक यंत्रोंका त्याग करना होगा। शहरोंको वे गांवोंके शोषणका साधन मानते थे। उन्होंने शहरोंको राष्ट्रके समाज-शरीरको पीड़ा और कष्ट देनेवाले फोड़े भी कहा है। वे कहते थे कि भावी विश्व-व्यवस्थाकी उज्ज्वल आशा गांवों पर अर्थात् सहकारी समाजों पर निर्भर करती है, जहां किसी तरहकी मजबूरी नहीं है, किसी प्रकारका बल-प्रयोग नहीं है; बल्कि सारे काम ऐच्छिक सहयोगके आधार पर चलते हैं। ग्राम-स्वराज्यकी संपूर्ण रचनामें प्रेमका साम्राज्य होनेके कारण उसमें ऊंच-नीचका कोई भेद नहीं है। सब कोई समान हैं। ऐसे ग्राम-स्वराज्यमें न तो जातियां होंगी, न वर्ग होंगे; न अस्पृश्यता रहेगी, न हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े रहेंगे। उसमें सारे व्यक्तियोंको अपनी स्वाभाविक प्रतिष्ठा और स्वाभाविक सम्मान पुनः प्राप्त होगा।

जब ग्राम-स्वराज्यका आदर्श अपनी सोलहों कलाओंमें खिल उठेगा तब वह संसारके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण बन जायगा। तब वह संसारके लिए भारतका एक मंगल वरदान सिद्ध होगा। और उसके बाद संसारके स्वयं-शासित ग्राम-घटक अत्यन्त सुसंस्कृत, बुद्धिशाली तथा शक्ति-सम्पन्न स्त्री-पुरुषोंके जीवंत भ्रातृभावके सुन्दर प्रतीक बन जायंगे। ऐसे समाजमें रहकर मानव उदात्त शिक्षा प्राप्त करेगा और जीवनकी कृतार्थता अनुभव करेगा। ऐसे समाजके जीवनमें मनुष्यकी संपूर्ण शक्तियों और प्रतिभाओंकी अभिव्यक्तिका अवसर मिलेगा तथा परस्पर आदरभावके आदान-प्रदानका और एक-दूसरेकी सेवा द्वारा प्रकट होनेवाले प्रेमका पुण्य दर्शन होगा। ऐसे समाजमें संस्कृति, कला, काव्य और विज्ञानका विकास चरम सीमाको पहुंचेगा। वह इस धरती पर प्रभुका राज्य होगा।

ग्राम-स्वराज्यमें इतनी ऊंची संभावनायें और शक्तियां भरी हैं। उसे गतिशील और वास्तविक बनाना हम सबका काम है। राष्ट्र-पिताके उत्तराधिकारियोंके नाते, जिन्हें उनकी समृद्ध और अमर विरासत पानेका सौभाग्य मिला है, हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनके इस स्वप्नको पूरा करें। इसलिए हमारी राज्य-सरकारोंने विशाल सत्तायें धारण करनेवाली ग्राम-पंचायतोंको जन्म देनेके लिए जो कानून बनाये हैं, वे सर्वथा सही और उपयुक्त हैं। हम आशा करते हैं कि ये ग्राम-पंचायतें गांधीजीकी कल्पनाके ग्राम-स्वराज्यका चित्र अपने सामने हमेशा रखेंगी और उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर अपना काम करेंगी।

गांधीजीने जिस भावनासे ग्राम-स्वराज्यकी कल्पना की है, उसी भावनासे उस पर अमल भी किया जाना चाहिये। जिन लोगोंके हाथमें ग्राम-पंचायतोंके संचालनकी जिम्मेदारी होगी उनके भीतर यदि निःस्वार्थ सेवा और जाति, धर्म या वर्गकी मर्यादाओंसे परे रहनेवाले प्रेमकी भावना नहीं होगी, तो हमें ग्राम-स्वराज्यके वे मीठे फल चखनेको नहीं मिलेंगे जिनकी अपेक्षा गांधीजीने रखी थी।

ग्राम-व्यवस्थाओंके सम्बन्धमें पंडित नेहरूके ये शब्द हमें सदा याद रखने चाहिये: "कोई व्यक्ति या समूह जितना अधिक अपना ही विचार करेगा, उतना ही अधिक खतरा उस व्यक्तिके अथवा समूहके स्व-केन्द्रित,

स्वार्थी और संकुचित वन जानेका रहेगा।"[५] आज हमारे गांव सामाजिक फूट, जातिवाद और संकुचित दृष्टिके दोषोंसे कष्ट भोग रहे हैं। ग्राम-पंचायतोंको सफल बनानेका मार्ग गुलाबके फूलोंसे छाया हुआ नहीं है। इस कार्यमें ग्रामनेताओंसे सच्ची सेवा-भावनाकी अपेक्षा रखी जाती है। भगवान करे हमारी प्राचीन भूमि अपने समक्ष आये हुए इस अवसरको पहचान कर भारतके 'मिशन' को सफल बनाये और इस प्रकार सारे विश्वके कल्याणके लिए कार्य करनेका सच्चा सुयश प्राप्त करे!

इस संग्रहमें महात्मा गांधीकी पुस्तकों, लेखों और भाषणोंसे ऐसे उद्धरण एकत्र करनेका नम्र प्रयत्न किया गया है, जिनका सम्बन्ध ग्राम-स्वराज्यके विषयके साथ है। उद्धरणोंको ऐसे क्रममें रखनेका यथासंभव प्रयास किया गया है, जिससे विचारोंकी श्रृंखला टूटने न पाये।

श्री श्रीमन्नारायणजीने इस संग्रहके लिए जो प्राक्कथन लिख दिया है, उसके लिए मैं हृदयसे उनका आभारी हूं।

१५–७–'६३ हरिप्रसाद व्यास

अनुक्रमणिका

ग्राम-स्वराज्य

पाठकोंसे

मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोंको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूं। उमरमें भले ही मैं बूढ़ा हो गया हूं, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो तो वह एक ही विषय पर लिखे हुए दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०–४–'३३ — गांधीजी

१

स्वराज्यका अर्थ

स्वराज्य एक पवित्र शब्द है; वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म-शासन और आत्म-संयम है। अंग्रेजी शब्द 'इन्डिपेन्डेन्स' अकसर सब प्रकारकी मर्यादाओंसे मुक्त निरंकुश आजादीका या स्वच्छन्दताका अर्थ देता है; वह अर्थ स्वराज्य शब्दमें नहीं है। १

जिस प्रकार हर देश खाने-पीने और सांस लेनेके लायक है, उसी प्रकार हर राष्ट्रको अपना कारबार चलानेका पूरा अधिकार है, फिर वह कितनी ही बुरी तरह क्यों न चलावे। २

स्वराज्यसे मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मतिके अनुसार होनेवाला भारतवर्षका शासन। लोक-सम्मतिका निश्चय देशके बालिग लोगोंकी बड़ीसे बड़ी तादादके मतके द्वारा हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देशके हों या इस देशमें आकर बस गये हों। ये लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रमके द्वारा राज्यकी कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओंकी सूचीमें अपना नाम लिखवा लिया हो। . . सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगोंके द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेनेसे नहीं, बल्कि जब सत्ताका दुरुपयोग होता हो तब सब लोगोंके द्वारा उसका प्रतिकार करनेकी क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें, स्वराज्य जनतामें इस बातका ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर अधिकार करने और उसका नियमन करनेकी क्षमता उसमें है। ३

राजनीतिक स्वतंत्रतासे मेरा यह मतलब नहीं कि हम ब्रिटेनकी लोकसभाकी, या रूसके सोवियट शासनकी, या इटलीके फासिस्ट शासनकी अथवा जर्मनीके नाजी शासनकी नकल करें। उन देशोंकी शासन-पद्धतियां उनकी अपनी प्रकृतिके अनुरूप हैं। हमारी शासन-पद्धति हमारी प्रजाकी प्रकृतिके अनुरूप होनी चाहिये। वह पद्धति क्या हो सकती

है, यह कहना मेरे लिए कठिन है। मैंने उसे रामराज्य कहा है। राम-राज्यका अर्थ है शुद्ध नैतिक सत्ताके आधार पर स्थापित जनताकी सार्व-भौम सत्ता। ४

आखिर स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आन्तरिक शक्ति पर, बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंसे जूझनेकी हमारी ताकत पर। सच पूछो तो वह स्वराज्य, जिसे पानेके लिए अनवरत प्रयत्न और सुरक्षित रखनेके लिए सतत जागृति नहीं चाहिये, स्वराज्य कहलानेके लायक ही नहीं है। जैसा कि आपको मालूम है, मैंने वचन और कार्यसे यह दिखलानेकी कोशिश की है कि स्त्री-पुरुषोंके विशाल समूहका राजनीतिक स्वराज्य एक एक शख्सके अलग-अलग स्वराज्यसे कोई ज्यादा अच्छी चीज नहीं है और इसलिए उसे पानेका तरीका वही है जो एक एक आदमीके आत्म-स्वराज्य या आत्म-संयमका है। ५

स्वराज्यका अर्थ है सरकारी नियंत्रणसे मुक्त होनेके लिए लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकारका हो या स्वदेशी सरकारका। यदि स्वराज्य हो जाने पर लोग अपने जीवनकी हर छोटी बातके नियमनके लिए सरकारका मुंह ताकना शुरू कर दें, तो वह स्वराज्य-सरकार किसी कामकी नहीं होगी। ६

मेरा स्वराज्य तो हमारी सभ्यताकी आत्माको अक्षुण्ण रखना है। मैं बहुतसी नई चीजें लिखना चाहता हूं, पर वे तमाम हिन्दुस्तानकी स्लेट पर लिखी जानी चाहिये। हां, मैं पश्चिमसे भी खुशीसे उधार लूंगा, पर तभी जब कि मैं उसे अच्छे सूदके साथ वापस कर सकूं। ७

स्वराज्यकी रक्षा केवल वहीं हो सकती है, जहां देशवासियोंकी ज्यादा बड़ी सख्या ऐसे देशभक्तोंकी हो, जिनके लिए दूसरी सब चीजोंसे — अपने निजी लाभसे भी — देशकी भलाईका ज्यादा महत्त्व हो। स्वराज्यका अर्थ है देशकी बहुसंख्यक जनताका शासन। जाहिर है कि जहां बहुसंख्यक जनता नीतिभ्रष्ट हो या स्वार्थी हो, वहां उसकी सरकार अराजकताकी ही स्थिति पैदा कर सकती है, दूसरा कुछ नहीं। ८

मेरे . . . हमारे . . . सपनोंके स्वराज्यमें जाति (रेस) या धर्मके भेदोंको कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानोंका

एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए — सबके कल्याणके लिए होगा। सबकी गिनतीमें किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लंगड़े, अंधे और भूखसे मरनेवाले लाखों-करोड़ो मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं। ९

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि भारतीय स्वराज्य तो ज्यादा संख्या-वाले समाजका यानी हिन्दुओंका ही राज्य होगा। इस मान्यतासे ज्यादा बडी कोई दूसरी गलती नही हो सकती। अगर यह सही सिद्ध हो तो अपने लिए मैं ऐसा कह सकता हूं कि मैं उसे स्वराज्य माननेमे इनकार कर दूंगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर उसका विरोध करूंगा। मेरे लिए हिन्द स्वराज्यका अर्थ सब लोगोंका राज्य, न्यायका राज्य है। १०

अगर स्वराज्यका अर्थ हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यताको अधिक शुद्ध तथा मजबूत बनाना न हो, तो वह किसी कीमतका नही होगा। हमारी सभ्यताका मूल तत्त्व ही यह है कि हम अपने सब कामोंमें, वे निजी हो या सार्वजनिक, नीतिके पालनको सर्वोच्च स्थान देते हैं। ११

पूर्ण स्वराज्य — 'पूर्ण' कहनेमें आशय यह है कि वह जितना किसी राजाके लिए होगा उतना ही किसानके लिए, जितना किसी धन-वान जमींदारके लिए होगा उतना ही भूमिहीन खेतिहरके लिए, जितना हिन्दुओंके लिए होगा उतना ही मुसलमानोंके लिए, जितना जैन, यहूदी और सिख लोगोंके लिए होगा उतना ही पारसियो और ईसाइयोंके लिए। उसमें जाति-पांति, धर्म या दरजेके भेदभावके लिए कोई स्थान नहीं होगा। १२

स्वराज्य शब्दका अर्थ स्वयं और उसकी प्राप्तिके साधन अर्थात् सत्य और अहिंसा — जिनका पालन करनेके लिए हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं — ऐसी किसी संभावनाको असमव सिद्ध करते है कि हमारा स्वराज्य किसीके लिए तो अधिक होगा और किसीके लिए कम, किसीके लिए लाभकारी होगा और किसीके लिए हानिकारी या कम लाभकारी। १३

मेरे सपनोंका स्वराज्य तो गरीबोंका स्वराज्य होगा। जीवनकी जिन आवश्यकताओंका उपभोग राजा और अमीर लोग करते है, वही

आपको भी सुलभ होनी चाहिये; इसमें किसी फर्कके लिए स्थान नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिये। सुखी जीवनके लिए महलोंकी कोई आवश्यकता नहीं। हमें महलोंमें रख दिया जाये तो हम घबड़ा जायें। लेकिन आपको जीवनकी वे सामान्य सुविधायें अवश्य मिलनी चाहिये, जिनका उपभोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बातमें बिलकुल सन्देह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक वह आपको ये सारी सुविधायें देनेकी पूरी व्यवस्था नहीं कर देता। १४

पूर्ण स्वराज्यका अर्थ है भारतके नर-कंकालोंका उद्धार। पूर्ण स्वराज्य ऐसी स्थितिका द्योतक है, जिसमें गूंगे बोलने लगते हैं और लंगड़े चलने लगते हैं। १५

सत्य और अहिंसाके जरिये सम्पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्तिका मतलब है जात-पांत, वर्ण या धर्मके भेदसे रहित राष्ट्रके प्रत्येक घटककी और उसमें भी उसके गरीबसे गरीब व्यक्तिकी स्वतन्त्रताकी सिद्धि। इस स्वतन्त्रतासे किसीको भी दूर या अलग नहीं रखा जा सकता। इसलिए अपने राष्ट्रसे बाहरके दूसरे राष्ट्रोंके साथ और राष्ट्रकी जनताके भीतर उसके अलग अलग वर्गोंके परस्परावम्बनके साथ इस स्वतन्त्रताका पूरा पूरा मेल रहेगा। अलबत्ता, जिस तरह हमारी खींची हुई कोई भी लकीर युक्लिडकी शास्त्रीय व्याख्याकी लकीरकी तुलनामें अधूरी रहेगी, उसी तरह तात्त्विक सिद्धान्तकी अपेक्षा उसका व्यावहारिक अमल अधूरा रहता है। इसलिए जिस हद तक हम सत्य और अहिंसाका अपने दैनिक जीवनमें अमल करेंगे, उसी हद तक हमारी प्राप्त की हुई सम्पूर्ण स्वतन्त्रता भी पूर्ण होगी। १६

यह सब इस बात पर निर्भर है कि पूर्ण स्वराज्यसे हमारा आशय क्या है और उसके द्वारा हम पाना क्या चाहते हैं। अगर हमारा आशय यह है कि जनतामें जागृति होनी चाहिये, उन्हें अपने सच्चे हितका ज्ञान होना चाहिये और सारी दुनियाके विरोधका सामना करके भी उस

हितकी सिद्धिके लिए कोशिश करनेकी योग्यता होनी चाहिये; और यदि पूर्ण स्वराज्यके द्वारा हम सुमेल, भीतरी या बाहरी आक्रमणसे रक्षा और जनताकी आर्थिक स्थितिमें उत्तरोत्तर सुधार चाहते हों, तो हम अपना उद्देश्य राजनीतिक सत्ताके बिना ही, सत्ता जिनके हाथमें हो उन पर अपना सीधा प्रभाव डालकर, सिद्ध कर सकते हैं। १७

स्वराज्यकी मेरी कल्पनाके विषयमें किसीको कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिये। उसका अर्थ विदेशी नियंत्रणसे पूरी मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता है। उसके दो दूसरे उद्देश्य भी हैं। एक छोर पर है नैतिक और सामाजिक उद्देश्य और दूसरे छोर पर इसी कक्षाका दूसरा उद्देश्य है धर्म। यहां धर्म शब्दका सर्वोच्च अर्थ अभीष्ट है। उसमें हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म आदि सबका समावेश होता है, लेकिन वह इन सबसे ऊंचा है। . . . इसे हम स्वराज्यका सम-चतुर्भुज कह सकते हैं; यदि उसका एक भी कोण विषम हुआ, तो उसका रूप विकृत हो जायेगा। १८

मेरी कल्पनाका स्वराज्य तभी आयगा जब हमारे मनमें यह बात अच्छी तरह जम जाय कि हमें अपना स्वराज्य सत्य और अहिंसाके शुद्ध साधनों द्वारा ही प्राप्त करना है, उन्हींके द्वारा हमें उसका संचालन करना है और उन्हींके द्वारा हमें उसे कायम रखना है। सच्ची लोक-सत्ता या जनताका स्वराज्य कभी भी असत्यमय और हिंसक साधनोंसे नहीं आ सकता। कारण स्पष्ट और सीधा है: यदि असत्यमय और हिंसक उपायोंका प्रयोग किया गया, तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सारा विरोध या तो विरोधियोंको दबाकर या उनका नाश करके खतम कर दिया जायगा। ऐसी स्थितिमें वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं हो सकती। वैयक्तिक स्वतंत्रताको प्रगट होनेका पूरा अवकाश केवल विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासनमें ही मिल सकता है। १९

अहिंसा पर आधारित स्वराज्यमें लोगोंको अपने अधिकारोंका ज्ञान न हो तो कोई बात नहीं, लेकिन उन्हें अपने कर्तव्योंका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। हरएक कर्तव्यके साथ उसकी तौलका अधिकार जुड़ा हुआ होता ही है, और सच्चे अधिकार तो वे ही हैं जो अपने

कर्तव्योंका योग्य पालन करके प्राप्त किये गये हों। इसलिए नागरिकताके अधिकार सिर्फ उन्हींको मिल सकते हैं जो जिस राज्यमें रहते हों उसकी सेवा करते हों। और सिर्फ वे ही इन अधिकारोंके साथ पूरा न्याय कर सकते हैं। हरएक आदमीको झूठ बोलने और गुंडागिरी करनेका अधिकार है, किन्तु इस अधिकारका प्रयोग उस आदमी और समाज, दोनोंके लिए हानिकर है। लेकिन जो व्यक्ति सत्य और अहिंसाका पालन करता है, उसे प्रतिष्ठा मिलती है और इस प्रतिष्ठाके फलस्वरूप उसे अधिकार मिल जाते हैं। और जिन लोगोंको अधिकार अपने कर्तव्योंके पालनके फलस्वरूप मिलते हैं, वे उनका उपयोग समाजकी सेवाके लिए ही करते हैं, अपने लिए कभी नहीं। किसी राष्ट्रीय समाजके स्वराज्यका अर्थ उस समाजके विभिन्न व्यक्तियोंके स्वराज्य (अर्थात् आत्म-शासन) का योग ही है। और ऐसा स्वराज्य व्यक्तियों द्वारा नागरिकोंके रूपमें अपने कर्तव्यके पालनसे ही आता है। उसमें कोई अपने अधिकारोंकी बात नहीं सोचता। जब उनकी आवश्यकता होती है तब वे उन्हें अपने-आप मिल जाते हैं और इसलिए मिलते हैं कि वे अपने कर्तव्यका सम्पादन ज्यादा अच्छी तरह कर सकें। २०

अहिंसा पर आधारित स्वराज्यमें कोई किसीका शत्रु नहीं होता, सारी जनताकी भलाईका सामान्य उद्देश्य सिद्ध करनेमें हरएक अपना अभीष्ट योग देता है, सब लिख-पढ़ सकते हैं और उनका ज्ञान दिन-दिन बढ़ता रहता है। बीमारी और रोग कमसे कम हो जायं ऐसी व्यवस्था की जाती है। कोई कंगाल नहीं होता और मजदूरी करना चाहनेवालेको काम अवश्य मिल जाता है। ऐसी शासन-व्यवस्थामें जुआ, शराबखोरी और दुराचारको या वर्ग-विद्वेषको कोई स्थान नहीं होता। अमीर लोग अपने धनका उपयोग बुद्धिपूर्वक उपयोगी कामोंमें करेंगे; अपनी शान-शौकत बढ़ानेमें या शारीरिक सुखोंकी वृद्धिमें उसका अपव्यय नहीं करेंगे। उनमें ऐसा नहीं हो सकता, होना नहीं चाहिये, कि चंद अमीर तो रत्न-जटित महलोंमें रहें और लाखों-करोड़ों ऐसी मनहूस झोंपड़ियोंमें, जिनमें हवा और प्रकाशका प्रवेश न हो। अहिंसक स्वराज्यमें न्यायपूर्ण अधिकारोंका किसीके भी द्वारा कोई अतिक्रमण नहीं

हो सकता और इसी तरह किसीको कोई अन्यायपूर्ण अधिकार नही हो सकते। सुसंघटित राज्यमें किसीके न्याय्य अधिकारका किसी दूसरेके द्वारा अन्यायपूर्वक छीना जाना असम्भव होना चाहिये और कभी ऐसा हो जाय तो अपहर्ताको अपदस्थ करनेके लिए हिंसाका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। २१

२

आदर्श समाजका चित्र

[एक बार भंगीबस्ती, नई दिल्ली, की एक सायकालीन प्रार्थनामें एक भजन गाया गया था। उसमें गांधीजीको अपने स्वतंत्र भारतकी मूलभूत बातोंका चित्र उपस्थित होता दिखाई दिया, इस कारण वह भजन उन्हे बहुत पसन्द आया था। उसका अंग्रेजी अनुवाद स्वयं करके उन्होंने लॉर्ड पैथिक लॉरेन्सको भेजा था। उस भजनका आशय इस प्रकार है:]

हम ऐसे देशके निवासी हैं, जहा न तो शोक है और न कष्ट है, जहा न मोह है, न संताप है; न भ्रम है, न चाह है। जहा प्रेमकी गगा बहती है और सारी सृष्टि आनंदित रहती है। जहा सब लोगोके मन एक दिशामें काम करते हैं। जहां न दिन है, न रात है; न मन् है, न माह है। जहां सब लोगोंकी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं। जहा सारा सौदा न्यायपूर्ण होता है। जहा सब कोई एक ही साचेमें ढले हुए हैं। जहा न तो कोई अभाव है, न किसी तरहकी चिन्ता है। जहा किसी प्रकारका स्वार्थ नही है। न ऊच-नीचके भेद हैं और न मालिक-गुलामके भेद हैं। जहा सर्वत्र प्रकाश फैला रहता है, परन्तु वह किसीको जलाता नहीं। यह देश तेरे अन्तरमें है — वही स्वराज्य है, वही स्वदेशी है। जो उसकी चाह रखता है, वही उसका साक्षात्कार करता है। उस देशकी जय हो, जय हो, जय हो! १

[भजनके उपर्युक्त विचार गांधीजीके सपनोंके भारतका चित्र प्रस्तुत करते हैं।]

यह उस जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाजका चित्र है, जिसमें न कोई ऊंचा है और न कोई नीचा है; सारे काम एकसे हैं और सारे कामोंकी मजदूरी भी एकसी है; जिन लोगोंके पास अधिक है वे अपने लाभका उपयोग खुदके लिए नहीं करते, परन्तु उसे पवित्र धरोहर मानकर ऐसे लोगोंकी सेवामें उसका उपयोग करते हैं जिनके पास कम है। ऐसे समाजमें धन्धोंके चुनावमें प्रेरक बल व्यक्तिगत उन्नति नहीं होती, बल्कि समाजकी सेवा करके आत्माभिव्यक्ति और आत्म-साक्षात्कार करना ही उसका प्रेरक हेतु होता है।

चूंकि ऐसे समाजमें सब तरहके कामोंका समान आदर होता है और उनके लिए एकसा वेतन मिलता है, इसलिए वंश-परम्परागत कुशलतायें एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें सुरक्षित रहती हैं और व्यक्तिगत लाभके प्रलो-भनके लिए उनकी कुरबानी नहीं की जाती। समाज-सेवाका सिद्धान्त अनियंत्रित, आत्मीयता-रहित प्रतिस्पर्धाका स्थान लेता है। ऐसे समाजमें हरएक व्यक्ति कड़ा परिश्रम करता है, जिसे काफी फुरसत रहती है, उन्नतिका अवसर मिलता है और शिक्षा तथा संस्कृतिके विकासके लिए आवश्यक सुविधायें मिलती हैं। वह कुटीर-उद्योगोंकी तथा छोटे पैमाने पर चलनेवाली सघन सहकारी खेतीकी आकर्षक दुनिया होती है— ऐसी दुनिया जिसमें साम्प्रदायिकता अथवा जातिवादके लिए कोई स्थान नहीं होता। अन्तमें, वह स्वदेशीकी दुनिया है, जिसमें आर्थिक स्वा-श्रयकी सीमायें तो अधिक निकट आ जाती हैं, परन्तु व्यक्तिगत सा-मर्थ्यकी सीमायें अधिकसे अधिक विस्तृत हो जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने तात्कालिक वातावरणके लिए जिम्मेदार होता है और सारे व्यक्ति समाजके लिए जिम्मेदार होते हैं। उसमें अधिकारों और कर्तव्योंका निश्चय परस्परावलम्बनके सिद्धान्तसे तथा परस्परके आदान-प्रदानसे होता है। ऐसे समाजमें उसके अंगभूत व्यक्तियों तथा संपूर्ण समाजके बीच कोई संघर्ष नहीं होता; और न तो राष्ट्रवादके संकुचित, स्वार्थी

या आक्रामक बननेका खतरा रहता, न आन्तर-राष्ट्रीयतावादके निरा आदर्श बन जानेका खतरा रहता। २

ऐसे आदर्श समाजमें न कोई गरीब होगा, न भिखारी; न कोई ऊंचा होगा, न नीचा। न कोई करोडपति मालिक होगा, न आधा भूखा नौकर। न शराब होगी, न कोई दूसरी नशीली चीज़। सब अपने-आप खुशीसे और गर्वसे अपनी रोटी कमानेके लिए मेहनत करेंगे। वहां स्त्रियोंकी भी वही इज्जत होगी जो पुरुषोंकी, और स्त्रियों तथा पुरुषोंके शील और पवित्रताकी रक्षा की जायगी। अपनी पत्नीके सिवा हरएक स्त्रीको उसकी उम्रके अनुसार हर धर्मके पुरुष मा, बहन और बेटी समझेंगे। वहां अस्पृश्यता नहीं होगी और सब धर्मोंके प्रति समान आदर रखा जायगा। मैं आशा करता हूं कि जो यह सब सुनेंगे या पढ़ेंगे, वे मुझे क्षमा करेंगे कि जीवन देनेवाले सूर्य देवताकी धूपमें पड़े पड़े मैं इस काल्पनिक आनन्दकी लहरमें बह गया। ३

३
आशाका एकमात्र मार्ग

उद्योगवाद

मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव-जातिके लिए अभिशाप बन जानेवाला है। उद्योगवाद सर्वथा इस बात पर निर्भर है कि आपमें शोषण करनेकी कितनी शक्ति है, विदेशी मंडियां आपके लिए कहां तक खुली है और प्रतिस्पर्धियोंका कितना अभाव है। इग्लैंडके लिए ये बातें दिनोंदिन कम हो रही है, इसीलिए वहा बेकारोंकी सख्या रोज बढ़ रही है। भारतीय बहिष्कार तो केवल मामूली-सी बात है। और जब इंग्लैंडकी यह हालत है तब भारत जैसे विशाल देशको तो उद्योगीकरणसे लाभ होनेकी आशा ही नही की जा सकती। सच तो यह है कि भारत जब दूसरे राष्ट्रोंका शोषण करने लगेगा — और भारतमें उद्योगीकरण हो गया तो वह जरूर शोषण करेगा — तब वह अन्य राष्ट्रोंके लिए शाप

और संसारके लिए एक खतरा बन जायगा। तब दूसरे राष्ट्रोंका शोषण करनेके लिए भारतमें कल-कारखाने बढ़ानेका मैं क्यों विचार करूं? क्या आप यह करुण स्थिति नहीं देख रहे कि हम अपने ३० करोड़ बेकारोंके लिए काम जुटा सकते हैं, परन्तु इंग्लैंड अपने ३० लाखके लिए कोई काम नहीं जुटा सकता; और उसके सामने ऐसी समस्या खड़ी है जिसके आगे इंग्लैंडके बड़ेसे बड़े बुद्धिमान चक्कर खा रहे हैं? उद्योगवादका भविष्य अंधकारमय है। अमेरिका, जापान, फ्रांस और जर्मनी इंग्लैंडके सफल प्रतिस्पर्धी हैं। भारतकी मुट्ठीभर मिलें भी उसकी प्रतिद्वंद्वी हैं। और जैसे भारतमें जागृति हो गई है वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामें भी जागृति होगी। और वहां तो प्राकृतिक, खनिज और मानवीय साधन भी कहीं अधिक विपुल मात्रामें हैं। अफ्रीकाकी बलवान जातियोंके सामने कद्दावर अंग्रेज बिलकुल पिद्दी जैसे दिखाई देते हैं। आप कहेंगे कि अन्तमें तो अफ्रीकाके लोग भले जंगली ही हैं। वे भले जरूर हैं, परन्तु जंगली नहीं; और शायद कुछ ही सालमें पश्चिमी राष्ट्रोंको अफ्रीकामें अपने मालका सस्ता बाजार मिलना बन्द हो सकता है। और यदि उद्योगवादका भविष्य पश्चिमके लिए अंधकारमय है, तो क्या भारतके लिए वह और भी अंधकारमय नहीं होगा? १

'आजकी इस अराजकता और अंधाधुन्धीका क्या कारण है?' मैं कहूंगा कि बलवान राष्ट्रों द्वारा निर्बल राष्ट्रोंका शोषण नहीं, परन्तु एक ही परिवारके राष्ट्रों द्वारा आपसमें एक-दूसरेका शोषण इस अराजकता और अन्धाधुन्धीका कारण है। और यंत्रोंके मेरे बुनियादी विरोधका आधार यह सत्य है कि यंत्रोंने ही इन राष्ट्रोंको दूसरे राष्ट्रोंका शोषण करनेकी शक्ति दी है। यंत्र अपने-आपमें एक जड़ चीज है और उसका अच्छा या बुरा दोनों प्रकारका उपयोग हो सकता है। लेकिन हम जानते हैं कि उसका बुरा उपयोग आसानीसे कर लिया जाता है। २

निस्सन्देह पश्चिमी देशोंमें उद्योगवाद और दूसरी प्रजाओंके शोषणकी हद हो चुकी है। हकीकत यह है कि यह औद्योगिक सभ्यता इसलिए एक रोग है कि उसमें निरी बुराई ही बुराई है। मनोहर नारों और शब्दोंसे हमें भ्रममें न पड़ जाना चाहिये। मेरा तार या जहाजसे कोई

विरोध नहीं है। वे उद्योगवाद तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले समस्त कारखानों और धन्धोंके सहारेके बिना अगर टिक सकें तो भले रहें। वे स्वयं अपने-आपमें लक्ष्य नहीं हैं। वे मानव-जातिके स्थायी कल्याणके लिए किसी भी प्रकारसे अनिवार्य नहीं हैं। चूंकि हम भाप और बिजलीका उपयोग जानते हैं, इसलिए उचित अवसर आने पर तथा उद्योगवादसे बचना सीख जाने पर हमें उनका उपयोग करने योग्य बन जाना चाहिये। इसलिए हमारी चेष्टा किसी भी कीमत पर उद्योगवादको नष्ट करनेकी होनी चाहिये। ३

दुनियामें ऐसे विवेकी पुरुषोंकी संख्या लगातार बढ़ रही है, जो इस सभ्यताको — जिसके एक छोर पर तो भौतिक समृद्धिकी कभी तृप्त न होनेवाली आकांक्षा है और दूसरे छोर पर उसके फलस्वरूप पैदा होनेवाला युद्ध है — अविश्वासकी निगाहसे देखते हैं। लेकिन यह सभ्यता अच्छी हो या बुरी, भारतका पश्चिम जैसा उद्योगीकरण करनेकी कोई जरूरत नहीं है। पश्चिमी सभ्यता शहरी सभ्यता है। इंग्लैण्ड और इटली जैसे छोटे देश अपनी व्यवस्थाओंका शहरीकरण कर सकते हैं। अमेरिका बड़ा देश है, किन्तु उसकी आबादी बहुत कम है। इसलिए उसे भी शायद वैसा ही करना पड़ेगा। लेकिन कोई भी आदमी सोचेगा तो यह मानेगा कि भारत जैसे बड़े देशको, जिसकी आबादी बहुत ज्यादा बड़ी है और ग्राम-जीवनकी ऐसी पुरानी परम्परामें पोषित हुई है जो उसकी आवश्यकताओंको बराबर पूरा करती आई है, उद्योगोंके पश्चिमी नमूनेकी नकल करनेकी कोई जरूरत नहीं है और न उसे ऐसी नकल करनी चाहिये। विशेष परिस्थितियोंवाले किसी एक देशके लिए जो बात अच्छी है, वह भिन्न परिस्थितियोंवाले किसी दूसरे देशके लिए भी अच्छी हो यह जरूरी नहीं है। जो चीज किसी एक आदमीके लिए पोषक आहारका काम देती है, वही दूसरेके लिए जहर जैसी सिद्ध होती है। किसी देशकी संस्कृतिको निर्धारित करनेमें उसके प्राकृतिक भूगोलका प्रमुख हिस्सा होता है। ध्रुव-प्रदेशके निवासीके लिए ऊनी कोट जरूरी हो सकता है, लेकिन भूमध्य-रेखावर्ती प्रदेशोंके निवासियोंका तो उससे दम ही घुट जायगा। ४

हमारा वर्तमान दुःख बेशक असह्य है। दरिद्रता तो किसी भी हालतमें जानी ही चाहिये। लेकिन उसका इलाज उद्योगवाद नहीं है। बुराई बैलगाड़ीके उपयोगमें नहीं है। बुराई हमारे स्वार्थमें है और अपने पड़ोसीके प्रति उदारताके अभावमें है। यदि हममें पड़ोसियोंके प्रति प्रेम नहीं है, तो किसी भी प्रकारका परिवर्तन — वह कैसा भी क्रांतिकारी क्यों न हो — हमें लाभ नहीं पहुंचा सकता। ५

अगर मुझमें शक्ति होती तो इस पद्धतिको मैं आज ही नष्ट कर देता। अगर मुझे विश्वास होता कि अत्यन्त संहारक अस्त्रोंसे इसका नाश सम्भव है, तो मैं उन अस्त्रोंका प्रयोग करता। उन अस्त्रोंका व्यवहार मैं यह सोचकर ही नहीं करता कि वे इस पद्धतिको कायम रखेंगे, भले आजके शासकोंका नाश वे कर दें। जो लोग पद्धतियोंके बदले उनके नियामकोंका नाश करना चाहते हैं, वे खुद उनके पंजेमें पड़कर उन लोगोंसे बुरे बन जाते हैं, जिनका वे इस गलत विश्वासके कारण नाश करते हैं कि आदमियोंके साथ उनकी नीति भी मर जाती है। वे पापके मूलको नहीं पहचानते। ६

बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण करनेका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों प्रतिस्पर्धा और बाजारकी समस्यायें खड़ी होंगी, त्यों-त्यों गांवोंका प्रगट या अप्रगट शोषण होगा। इसलिए हमें अपनी शक्ति इसी प्रयत्न पर केन्द्रित करनी चाहिये कि गांव स्वयंपूर्ण बनें और वस्तुओंका निर्माण और उत्पादन अपने उपयोगके लिए करें। यदि उत्पादनकी यह पद्धति स्वीकार कर ली जाय तो फिर गांववाले ऐसे आधुनिक यंत्रों और औजारोंका उपयोग खुशीसे करें, जिन्हें वे बना सकते हों और जिनका उपयोग उन्हें आर्थिक दृष्टिसे पुसा सकता हो। उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। अलबत्ता, उनका उपयोग दूसरोंका शोषण करनेके लिए नहीं होना चाहिये। ७

मैं नहीं मानता कि उद्योगीकरण हर हालतमें किसी भी देशके लिए जरूरी है। भारतके लिए तो वह और भी कम जरूरी है। मेरा विश्वास है कि आजाद भारत दुःखसे कराहती हुई दुनियाके प्रति अपना कर्तव्य अपने गांवोंका विकास करके और दुनियाके प्रति

मिश्रताका व्यवहार करके सादा परन्तु उदात्त जीवन अपनाकर ही पूरा कर सकता है। धनकी पूजानें हमारे ऊपर भौतिक समृद्धिके जिस जटिल और शीघ्रगामी जीवनको लाद दिया है, उसके साथ 'उच्च चिन्तन' का मेल नहीं बैठता। जीवनका सम्पूर्ण सौन्दर्य तभी खिल सकता है, जब हम उच्च कोटिका जीवन जीना सीखें।

किसी अलग-थलग रहनेवाले देशके लिए, भले वह भूविस्तार और जनसंख्याकी दृष्टिसे कितना भी बड़ा क्यों न हो, ऐसी दुनियामें जो शस्त्रास्त्रोंसे सिरसे पांव तक लदी है और जिसमें सर्वत्र वैभव-विलासका ही वातावरण नजर आता है, ऐसा सादा जीवन जीना सम्भव है या नहीं — यह ऐसा सवाल है जो संशयशील आदमीके मनमें अवश्य उठ सकता है। लेकिन इसका उत्तर सीधा है। यदि सादा जीवन जीने योग्य है तो यह प्रयत्न भी करने योग्य है, चाहे वह प्रयत्न किसी एक ही व्यक्ति या किसी एक ही समुदाय द्वारा क्यों न किया जाय। ८

बेशक, यूरोपीय सभ्यता यूरोपवालोंके लिए अच्छी है, लेकिन अगर हम उसकी नकल करेंगे तो वह भारतको बरबाद कर देगी। मेरा यह मतलब नहीं कि उस सभ्यतामें जो कुछ अच्छा हो और हमारे पचाने लायक हो, उसे अपना कर हम न पचायें; न मेरे कहनेका यह मतलब है कि यूरोपकी सभ्यतामें जो कुछ बुराई पैठ गई है उसका यूरोपके लोगोंको त्याग नहीं करना पड़ेगा। भौतिक सुख-सुविधाओंकी निरन्तर खोज और उनकी वृद्धि यूरोपीय सभ्यतामें घुसी हुई ऐसी एक बुराई है; और मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि यूरोपके लोग जिन सुख-सुविधाओंके गुलाम बनते जा रहे हैं उनके बोझके नीचे दबकर यदि उन्हें नष्ट नहीं होना है, तो उनको अपने आजके दृष्टिकोणमें सुधार करना होगा। संभव है मेरी यह राय गलत हो, परन्तु मैं जानता हूं कि भारतके लिए इस सुनहली मायाके पीछे दौड़ना निश्चित मृत्युको निमंत्रण देना होगा। हम एक पश्चिमी दार्शनिकके इस जीवन-सूत्रको अपने हृदय पर अंकित कर लें: 'सरल जीवन और उच्च विचार।' आज इतना निश्चित है कि भारतके करोड़ों लोग ऊंचे रहन-सहनवाला जीवन नहीं जी सकते और हम मुट्ठीभर लोग, जो आम जनताके लिए सोचने-विचारनेका दावा

करते हैं, उच्च स्तरके जीवनकी मिथ्या शोधमें उच्च विचारको भी भूलनेके खतरेमें पड़ जायंगे। ९

मैंने अपने कई देशबन्धुओंको यह कहते सुना है कि हम अमेरिकाका धन तो प्राप्त करेंगे, परन्तु उसकी पद्धतियोंको नहीं अपनायेंगे। मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूं कि अगर ऐसा प्रयत्न किया गया, तो वह जरूर असफल होगा। हम एक ही क्षणमें बुद्धिमान, शांत और क्रोधी नहीं हो सकते। . . . ऐसी भूमिमें देवोंके निवासकी कल्पना नहीं की जा सकती, जो मिलों और कारखानोंके धुएं और शोरगुलसे घृणाके लायक बना दी गई है और जिसके मार्गों पर मुसाफिरोंकी भीड़से भरी बेशुमार मोटर-गाड़ियोंको खींचनेवाले इंजन हमेशा तेजीसे दौड़ते रहते हैं। ये मुसाफिर ऐसे होते हैं जो अधिकतर यह नहीं जानते कि उन्हें जीवनमें क्या करना है, जो हमेशा असावधान रहते हैं और जिनके स्वभावमें इसलिए कोई सुधार नहीं होता कि उन्हें सन्दूकोंमें भरी हुई मछलियोंकी तरह मोटर-गाड़ियोंमें बुरी तरह ठूंस दिया जाता है; और ये ऐसे अजनबी लोगोंके बीच अपनेको पाते हैं, जो बस चले तो इन्हें गाड़ीसे बाहर निकाल देंगे और जिन्हें ये भी बदलेमें इसी तरह बाहर निकाल देंगे। मैं इन बातोंका जिक्र इसलिए करता हूं कि ये सब चीजें भौतिक प्रगतिकी निशानियां मानी जाती हैं। लेकिन वास्तवमें ये हमारे सुखको रत्तीभर भी नहीं बढ़ातीं। १०

पंडित नेहरू उद्योगीकरण इसलिए चाहते हैं कि उनके खयालसे अगर वह समाजवादी ढंगका हो जाय, तो वह पूंजीवादकी बुराइयोंसे मुक्त रहेगा। मेरी खुदकी दृष्टि यह है कि उद्योगवादमें ये बुराइयां जन्मजात हैं और उद्योगों पर समाजके स्वामित्वका कितना ही विस्तार क्यों न किया जाय, तो भी ये बुराइयां दूर नहीं की जा सकतीं। ११

रूसकी ओर जब मैं दृष्टिपात करता हूं तो वहांका जीवन मुझे आकर्षक नहीं लगता। बाइबलके शब्दोंमें कहूं तो 'मनुष्य सारी दुनियाको जीत ले, परन्तु यदि अपनी आत्माको खो दे, तो उससे उसका क्या कल्याण हो सकता है?' आधुनिक भाषामें कहें तो मनुष्य अपना व्यक्तित्व खो दे और यंत्रकी एक जड़ कीलकी भांति बन जाये, तो उसके

मानवीय गौरवके लिए यह चीज कलंकरूप होगी। मैं चाहता हूं कि हरएक व्यक्ति समाजका पूर्ण मददगार, पूर्ण विकसित सदस्य बन जाये। गावोंको स्वावलम्बी और स्वयंपूर्ण बनना ही चाहिये। यदि अहिंसाके मार्गसे काम लेना है, तो कोई दूसरा हल मैं देखता ही नहीं। मेरे मनमें तो इस विषयमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं। १२

ईश्वर हिन्दुस्तानको पश्चिमके तरीकेसे यंत्रयुगमें प्रवेश करने और यंत्रमय बननेसे बचाये! आज एक छोटेसे द्वीप (इंग्लैंड) के आर्थिक साम्राज्यवादने सारे संसारको गुलामीकी जंजीरोंमें बांध रखा है। यदि ३३ करोड़ लोगोंका समुदाय भी इस आर्थिक शोषणका मार्ग अपना ले, तो वह संसारको पूरी तरह तबाह कर देगा। १३

भारतवर्षका भविष्य पश्चिमके उस रक्तरंजित मार्ग पर आधार नहीं रखता, जिस पर चलते चलते आज वह थका हुआ-सा मालूम होता है; किन्तु शान्तिके उस अहिंसक मार्ग पर आधार रखता है, जिसकी प्राप्ति केवल सादगी और धार्मिक जीवनसे होती है। भारतवर्षके सामने इस समय उसकी आत्माके नाशका खतरा मुंह बाये खड़ा है। आत्माको खोकर वह जीवित नहीं रह सकता। इसलिए आलसीके समान निरुपाय होकर वह ऐसा नहीं कह सकता कि 'पश्चिमकी इस बाढ़से मैं बच नहीं सकता।' अपनी और संसारकी भलाईके लिए उस बाढ़को रोकने योग्य शक्तिशाली उसे बनना ही होगा। १४

यंत्र

'आदर्शके रूपमें क्या आप यंत्रोंका सर्वथा त्याग करना न चाहेंगे?'

आदर्शके रूपमें तो मैं स्वीकार करता हूं कि यंत्रका सर्वथा त्याग होना चाहिये, जिस तरह आदर्शके रूपमें शरीरका भी सर्वथा त्याग आवश्यक है। क्योंकि शरीर भी यदि मोक्षके लिए बाधक सिद्ध हो, तो वह त्याज्य ही है। इस दृष्टिसे तो अत्यन्त सादे यंत्रका भी — हल या सुई जैसेका भी — मैं त्याग करूंगा। परन्तु ये यंत्र तो रहेंगे, क्योंकि शरीरकी तरह वे भी अनिवार्य हैं। जैसा कि मैंने आपसे कहा, शरीर स्वयं एक अत्यन्त शुद्ध यंत्र है; परन्तु यदि यह आत्माकी ऊंचीसे ऊंची उड़ानमें बाधक बन जाय, तो उसका भी त्याग करना होगा। १५

करते हैं, उच्च स्तरके जीवनकी मिथ्या शोधमें उच्च विचारको भी भूलनेके खतरेमें पड़ जायंगे। ९

मैंने अपने कई देशबन्धुओंको यह कहते सुना है कि हम अमेरिकाका धन तो प्राप्त करेंगे, परन्तु उसकी पद्धतियोंको नहीं अपनायेंगे। मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूं कि अगर ऐसा प्रयत्न किया गया, तो वह जरूर असफल होगा। हम एक ही क्षणमें बुद्धिमान, शांत और क्रोधी नहीं हो सकते। . . . ऐसी भूमिमें देवोंके निवासकी कल्पना नहीं की जा सकती, जो मिलों और कारखानोंके धुएं और शोरगुलसे घृणाके लायक बना दी गई है और जिसके मार्गों पर मुसाफिरोंकी भीड़से भरी बेशुमार मोटर-गाड़ियोंको खींचनेवाले इंजन हमेशा तेजीसे दौड़ते रहते हैं। ये मुसाफिर ऐसे होते हैं जो अधिकतर यह नहीं जानते कि उन्हें जीवनमें क्या करना है, जो हमेशा असावधान रहते हैं और जिनके स्वभावमें इसलिए कोई सुधार नहीं होता कि उन्हें सन्दूकोंमें भरी हुई मछलियोंकी तरह मोटर-गाड़ियोंमें बुरी तरह ठूंस दिया जाता है; और ये ऐसे अजनबी लोगोंके बीच अपनेको पाते हैं, जो बस चले तो इन्हें गाड़ीसे बाहर निकाल देंगे और जिन्हें ये भी बदलेमें इसी तरह बाहर निकाल देंगे। मैं इन बातोंका जिक्र इसलिए करता हूं कि ये सब चीजें प्रगतिकी निशानियां मानी जाती हैं। लेकिन वास्तवमें ये रत्तीभर भी नहीं बढ़ातीं। १०

पंडित नेहरू उद्योगीकरण इसलिए चाहते हैं कि अगर वह समाजवादी ढंगका हो जाय, तो वह पूं
मुक्त रहेगा। मेरी खुदकी दृष्टि यह है
जन्मजात हैं और उद्योगों पर समाजके
क्यों न किया जाय, तो भी ये बु

रूसकी ओर जब मैं दृष्टि
आकर्षक नहीं लगता।
जीत ले, परन्तु यदि
कल्याण हो सकता है?
व्यक्तित्व खो दे

बचाना चाहता हूं, मगर मानव-समाजके एक अंगके लिए नहीं बल्कि सबके लिए। मैं भी धन इकट्ठा करना चाहता हूं, मगर थोड़ेसे आदमियोंके हाथोंमें नहीं बल्कि सबके हाथोंमें। आज तो मशीनें मुट्ठीभर लोगोंको करोड़ोंकी पीठ पर सवार होनेमें ही मदद करती हैं। इस सबके पीछे प्रेरक शक्ति श्रम बचानेकी उदात्त भावना नहीं बल्कि लोभ है। मैं ऐसी रचनाके विरुद्ध ही अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ रहा हूं।

'तो आप यन्त्रोंके विरुद्ध नहीं लड़ रहे हैं; परन्तु उनकी जो बुराइयां आज इतनी अधिक प्रगट हो रही हैं उनके विरुद्ध लड़ रहे हैं?'

मैं निःसंकोच कहूंगा 'हां'; परन्तु मैं इतना और कहूंगा कि सबसे पहले वैज्ञानिक सत्यों और आविष्कारोंको निरे लोभके साधन नहीं रहना चाहिये। तब मजदूरोंको हदसे ज्यादा काम नहीं करना पड़ेगा और मशीनें बाधक बननेके बजाय सहायक होंगी। मेरा उद्देश्य यन्त्रोंका सर्वथा नाश नहीं, परन्तु उनकी सीमा बांधना है।

'क्या इस विषयके अन्त तक जाने पर यह न कहना पड़ेगा कि बिजलीसे चलनेवाले सारे पेचीदा यन्त्र खतम हो जाने चाहिये?'

यह संभव है। मगर मैं एक बात साफ कर देता हूं। मुख्य विचार मनुष्यके कल्याणका है। हमें यह देखना होगा कि मशीन मनुष्यको बिलकुल पंगु न बना दे। उदाहरणार्थ, मैं समझदारीके साथ कुछ अपवाद रखूंगा। सिंगरकी सीनेकी मशीनको ही लीजिये। जो थोड़ीसी उपयोगी चीजें आविष्कृत हुई हैं उनमें से एक यह भी है। और उसकी योजनाके बारेमें एक प्रेमकथा है। सिंगरने अपनी पत्नीको हाथोंसे सीने और बखिया लगानेकी नीरस क्रिया पर परिश्रम करते देखा और केवल उसके प्रति अपने प्रेमके कारण उसने सीनेकी मशीनका आविष्कार किया, ताकि पत्नी अनावश्यक परिश्रमसे बच जाय। परन्तु उसने न केवल उसकी पत्नीका परिश्रम बचाया, बल्कि ऐसे प्रत्येक व्यक्तिका परिश्रम बचा दिया, जो सीनेकी मशीन खरीद सकता है।

'परन्तु उस हालतमें इन सिंगर मशीनोंको बनानेके लिए कारखाना खड़ा करना होगा। और उसमें बिजलीसे चलनेवाली आजकी सामान्य मशीनें रखनी होंगी।'

मशीनोंका अपना स्थान है; उन्होंने अपनी जड़ें जमा ली हैं। परन्तु उन्हें जरूरी मानव-श्रमका स्थान नहीं लेने देना चाहिये। सुधरा हुआ हल अच्छी चीज है। परन्तु यदि संयोगसे कोई एक आदमी अपने किसी यांत्रिक आविष्कार द्वारा भारतकी सारी भूमि जोत सके और खेतीकी तमाम पैदावार पर नियंत्रण कर ले और यदि करोड़ों लोगोंके पास कोई और धंधा न हो, तो वे भूखों मरेंगे और निकम्मे हो जानेके कारण जड़ बन जायेंगे — जैसे कि आज भी अनेक लोग बन गये हैं। हर क्षण यह डर बना रहता है कि और भी अनेक लोगोंकी वैसी ही दुर्दशा हो जायगी।

मैं गृह-उद्योगोंकी मशीनोंमें हर प्रकारके सुधारका स्वागत करूंगा। परन्तु मैं जानता हूं कि विद्युत्-शक्तिसे चलनेवाले तकुए जारी करके हाथसे कातनेवाले लोगोंको हटा देना निर्दयता है, यदि इसके साथ करोड़ों किसानोंको उनके घरोंमें धंधा देनेकी हमारी तैयारी न हो। १६

यंत्रोंका वही उपयोग उचित है, जिससे सबका भला हो। १७

मैं अधिकसे अधिक विकसित यंत्रोंके उपयोगका भी समर्थन करूंगा, यदि उससे भारतकी दरिद्रता और उससे पैदा होनेवाला आलस्य मिट सके। मैंने सुझाया है कि हाथ-कताई ही दरिद्रताको भगानेका तथा काम और धनके अभावको असंभव बनानेका एकमात्र सुलभ उपाय है। चरखा स्वयं एक कीमती मशीन है और मैंने अपने नम्र ढंगसे भारतकी विशेष परि-स्थितिके अनुसार उसमें सुधार करनेका प्रयत्न किया है। १८

'क्या आप यंत्रमात्रके विरुद्ध हैं?'

मेरा दृढ़ उत्तर है — नहीं। परन्तु मैं उनकी विवेकहीन वृद्धिके खिलाफ हूं। मैं यंत्रोंकी बाहरी विजयसे प्रभावित होनेसे इनकार करता हूं। मैं तमाम नाशकारी यंत्रोंका कट्टर विरोधी हूं। परन्तु सीधे-सादे औजारों और ऐसे यंत्रोंका, जिनसे व्यक्तिका परिश्रम बचता हो और लाखों झोंपड़ियोंका भार हल्का होता हो, मैं स्वागत करूंगा। १९

मुझे आपत्ति स्वयं मशीनों पर नहीं, बल्कि उनके लिए पागल बनने पर है। यह पागलपन श्रम बचानेवाले यंत्रोंके लिए है। लोग 'श्रम बचानेमें' लगे रहते हैं, यहां तक कि हजारों लोगोंको बेकार करके भूखसे मरनेको खुली सड़कों पर छोड़ दिया जाता है। मैं भी समय और श्रम

बचाना चाहता हूं, मगर मानव-समाजके एक अंशके लिए नहीं बल्कि सबके लिए। मैं भी धन इकट्ठा करना चाहता हूं, मगर थोड़ेसे आदमियोंके हाथोंमें नहीं बल्कि सबके हाथोंमें। आज तो मशीनें मुट्ठीभर लोगोंको करोड़ोंकी पीठ पर सवार होनेमें ही मदद करती हैं। इस सबके पीछे प्रेरक शक्ति श्रम बचानेकी उदात्त भावना नहीं बल्कि लोभ है। मैं ऐसी रचनाके विरुद्ध ही अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ रहा हूं।

'तो आप यंत्रोंके विरुद्ध नहीं लड़ रहे हैं, परन्तु उनकी जो बुराइयां आज इतनी अधिक प्रगट हो रही हैं उनके विरुद्ध लड़ रहे हैं?'

मैं निःसंकोच कहूंगा 'हां'; परन्तु मैं इतना और कहूंगा कि सबसे पहले वैज्ञानिक सत्यों और आविष्कारोंको निरे लोभके साधन नहीं रहना चाहिये। तब मजदूरोंको हदसे ज्यादा काम नहीं करना पड़ेगा और मशीनें बाधक बननेके बजाय सहायक होंगी। मेरा उद्देश्य यंत्रोंका सर्वथा नाश नहीं, परन्तु उनकी सीमा बांधना है।

'क्या इस विषयके अन्त तक जाने पर यह न कहना पड़ेगा कि बिजलीसे चलनेवाले सारे पेचीदा यंत्र खतम हो जाने चाहिये?'

यह संभव है। मगर मैं एक बात साफ कर देता हूं। मुख्य विचार मनुष्यके कल्याणका है। हमें यह देखना होगा कि मशीन मनुष्यको बिलकुल पंगु न बना दे। उदाहरणार्थ, मैं समझदारीके साथ कुछ अपवाद रखूंगा। सिंगरकी सीनेकी मशीनको ही लीजिये। जो थोड़ीसी उपयोगी चीजें आविष्कृत हुई हैं उनमें से एक यह भी है। और उसकी योजनाके बारेमें एक प्रेमकथा है। सिंगरने अपनी पत्नीको हाथोंसे सीने और बखिया लगानेकी नीरस क्रिया पर परिश्रम करते देखा और केवल उसके प्रति अपने प्रेमके कारण उसने सीनेकी मशीनका आविष्कार किया, ताकि पत्नी अनावश्यक परिश्रमसे बच जाय। परन्तु उसने न केवल उसकी पत्नीका परिश्रम बचाया, बल्कि ऐसे प्रत्येक व्यक्तिका परिश्रम बचा दिया, जो सीनेकी मशीन खरीद सकता है।

'परन्तु उस हालतमें इन सिंगर मशीनोंको बनानेके लिए कारखाना खड़ा करना होगा। और उसमें बिजलीसे चलनेवाली आजकी सामान्य मशीनें रखनी होंगी।'

हां, परन्तु मैं यह कहने जितना समाजवादी जरूर हूं कि ऐसे कारखाने राष्ट्रकी संपत्ति या राज्यके नियंत्रणमें होने चाहिये। उनका काम अत्यन्त आकर्षक और आदर्श परिस्थितियोंमें होना चाहिये। वह मुनाफेके लिए नहीं परन्तु मानव-जातिके लाभके लिए होना चाहिये और उसका हेतु लोभके स्थान पर प्रेम होना चाहिये। मैं केवल मजदूरोंकी काम करनेकी हालतोंमें परिवर्तन चाहता हूं। धनके लिए चलनेवाली यह पागल दौड़धूप बन्द होनी चाहिये और मजदूरको न सिर्फ जीवन-वेतनका ही बल्कि ऐसे दैनिक कामका भी, जो केवल नीरस बेगार न हो, आश्वासन मिलना चाहिये। ऐसी परिस्थितिमें यंत्र उस पर काम करनेवाले मनुष्यके लिए उतना ही सहायक होगा, जितना वह राज्यके लिए और अपने मालिकके लिए होगा। वर्तमान छीनाझपटी बन्द हो जायगी और, जैसा मैंने कहा है, मजदूर आकर्षक और आदर्श स्थितियोंमें काम करेगा। मेरे ध्यानमें जो अपवाद हैं, उनमें से यह केवल एक है। सीनेकी मशीनके पीछे प्रेम था। व्यक्तिका खयाल सबसे ज्यादा रखा जाना चाहिये। व्यक्तिके परिश्रमकी बचत मशीनका लक्ष्य होना चाहिये और प्रामाणिक मानव-कल्याणका विचार, न कि लोभ, उसका हेतु होना चाहिये। लोभके स्थान पर प्रेमको बिठा दीजिये, फिर सब-कुछ ठीक हो जायगा। २०

'मैं समझा, आप इस यंत्रयुगके विरुद्ध हैं।'

यह कहना मेरे विचारोंको तोड़-मरोड़कर रखना है। मैं यंत्रमात्रके विरुद्ध नहीं हूं। परन्तु जो यंत्र हमारा स्वामी बन जाय उसका मैं सख्त विरोधी हूं।

'क्या आप भारतमें उद्योगीकरण नहीं करेंगे?'

मैं अपने अर्थमें जरूर करूंगा। ग्राम-समाजोंको पुनर्जीवित करना चाहिये। भारतके देहात भारतीय शहरों और कस्बोंको उनकी जरूरतकी तमाम चीजें पैदा करके देते थे। हमारे शहर जब विदेशी मंडियां बन गये और विदेशोंसे ला-लाकर सस्ता और भद्दा माल यहां भरकर देहातोंका धन चूसने लगे तब भारत निर्धन हो गया।

'तो क्या आप फिरसे प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहेंगे ?'

हां। नहीं तो मुझे वापस शहरमें ही चले जाना चाहिये। बड़े व्यापार या उद्योग-धंधोंका संचालन करनेकी मुझमें पूरी शक्ति है, लेकिन इस लालसाको मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया है। और उसे मैंने त्यागकी भावनासे नहीं छोड़ा है, बल्कि मेरे हृदयमें उसके खिलाफ जो विद्रोह उठा उसकी वजहसे छोड़ा है। क्योंकि दिन प्रतिदिन होनेवाली राष्ट्रकी लूटमें मुझसे भाग लिया ही नहीं जा सकता था। गावोंमें उद्योगका प्रसार मैं भी करना चाहता हू, लेकिन भिन्न प्रकारसे। २१

क्षणभरके लिए मान लीजिये कि यत्रोंसे मानव-जातिकी सारी जरूरतें पूरी हो सकती हैं, फिर भी उनके कारण विशेष प्रदेशोंमें उत्पादन केन्द्रित हो जायगा। और फिर आपको वितरणका नियमन करनेके लिए द्राविडी प्राणायाम करना होगा। इसके विपरीत, यदि उत्पादन और वितरण दोनों उन्हीं क्षेत्रोंमें हों जहां उन चीजोंकी जरूरत है, तो वितरणका नियमन अपने-आप हो जाता है, उसमें धोखेबाजीको कम मौका मिलता है और सट्टेको तो बिलकुल नहीं मिलता। . . जब उत्पादन और उपभोग दोनों स्थानीय बन जाते हैं, तब अनिश्चित मात्रामें और किसी भी मूल्य पर उत्पादनकी गति बढ़ाना बन्द हो जाता है। तब हमारी वर्तमान व्यवस्थासे उपस्थित होनेवाली तमाम असंख्य कठिनाइयां और समस्याएं खतम हो जायंगी। . . . मैं विपुल मात्रामें उत्पादनकी कल्पना जरूर करता हूं, परन्तु वैयक्तिक आधार पर लोगोंके अपने घरोंमें। यदि आप वैयक्तिक उत्पादनको लाखों गुना बढ़ा दें, तो क्या वह विशाल पैमाने पर विशाल मात्राका उत्पादन नहीं हो जायगा? . आपका 'विशाल मात्राका उत्पादन' कमसे कम मनुष्यों द्वारा पेचीदा यत्रोंकी सहायतासे किया जानेवाला उत्पादन है। . . मेरे यत्र अत्यत प्रारभिक ढगके ही होंगे, जो लाखोंके घरोंमें रखे जा सकेंगे। २२

मैं जानता हू कि मनुष्य उद्योग-धधेके बिना जी नहीं सकता। इसलिए मैं उद्योगीकरणका विरोध नहीं कर सकता। लेकिन यत्रोद्योग दाखिल करनेके बारेमें मैं बहुत चिन्तित हू। यत्र अत्यधिक तेज गतिसे माल उत्पन्न करता है और अपने साथ ऐसी अर्थ-व्यवस्था लाता है, जिसे

२. शरीर-श्रम

शरीर-श्रम न करनेवालेको खानेका क्या अधिकार हो सकता है? १०

हर स्त्री-पुरुष जिन्दा रहनेके लिए शरीर-श्रम करे। . . . इसका मतलब यह है कि हर स्वस्थ आदमीको अपनी रोटीके लिए शरीर-श्रम करना ही चाहिये। मनुष्यको अपनी बुद्धिकी शक्तिका उपयोग आजीविका या उससे भी ज्यादा प्राप्त करनेके लिए नहीं, वल्कि सेवाके लिए, परोपकारके लिए करना चाहिये। इस नियमका पालन सारी दुनिया करने लगे, तो सहज ही सब लोग बराबर हो जायं, कोई भूखों न मरे और जगत बहुतसे पापोंसे बच जाय। . . . इस नियमका पालन करनेवाले पर इसका चमत्कारी असर होता है; क्योंकि उसे परम शान्ति मिलती है, उसकी सेवाशक्ति बढ़ती है और उसकी तन्दुरुस्ती बढ़ती है। . . . गीताका अध्ययन करने पर मैं इसी नियमको गीताके तीसरे अध्यायमें यज्ञके रूपमें देखता हूं। . . . 'यज्ञसे बचा हुआ अन्न' (श्लोक १३) वही है, जो मेहनत करनेके बाद मिलता है। आजीविकाके लिए पर्याप्त श्रमको गीताने यज्ञ कहा है। . . .

यह मानना कि किताबोंसे ही, मेज-कुर्सी पर बैठनेसे ही ज्ञान मिलता है, बुद्धिका विकास होता है, घोर अज्ञान और भारी वहम हैं। हमें तो इसमें से निकल ही जाना चाहिये। जीवनमें वाचनके लिए स्थान जरूर है, मगर वह अपनी जगह पर ही शोभा देता है। शरीर-श्रमको हानि पहुंचाकर उसे बढ़ाया जाय, तो उसके खिलाफ विद्रोह करना कर्तव्य हो जाता है। शरीर-श्रमके लिए दिनका ज्यादा समय देना चाहिये और वाचन वगैराके लिए थोड़ा। आजकल इस देशमें, जहां अमीर लोग या ऊंचे वर्णके माने जानेवाले लोग शरीर-श्रमका अनादर करते हैं, शरीर-श्रमको ऊंचा दरजा देनेकी बड़ी जरूरत है। और बुद्धिशक्तिको सच्चा वेग देनेके लिए भी शरीर-श्रमकी यानी किसी भी उपयोगी शारीरिक धन्धेमें शरीरको लगानेकी जरूरत है। ११

लाखों भूखसे पीड़ित व्यक्ति केवल एक ही कविता चाहते हैं और वह है जीवन देनेवाला भोजन। यह भोजन उन्हें दिया नहीं जा

सकता। उन्हें स्वयं इसे पाना होगा। यह केवल कड़े श्रम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। १२

बौद्धिक कार्य शारीरिक कार्य जितना ही महत्त्वपूर्ण है और जीवनकी योजनामें उसका निश्चित स्थान है। परन्तु मेरा आग्रह शरीर-श्रमकी आवश्यकता पर है। मेरा दावा है कि किसी भी मनुष्यको इस दायित्वसे मुक्त नहीं होना चाहिये। १३

ईश्वरने मनुष्यका निर्माण श्रम द्वारा अपना भोजन प्राप्त करनेके लिए किया और कहा कि श्रम किये बिना जो खाते हैं वे चोर हैं। १४

३. समानता

हरएकको अपने विकासके और अपने जीवनको सफल बनानेके समान अवसर मिलते रहने चाहिये। यदि अवसर दिया जाय, तो हर आदमी समान रूपसे अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। १५

जिस तरह सच्चे नीतिधर्ममें और कल्याणकारी अर्थशास्त्रमें कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्मके ऊंचेसे ऊंचे आदर्शका विरोधी नहीं होता। जो अर्थशास्त्र धनकी पूजा करना सिखाता है और बलवानोंको निर्बलोंका शोषण करके धनका संग्रह करनेकी सुविधा देता है, उसे शास्त्रका नाम नहीं दिया जा सकता। वह तो एक झूठी चीज है, जिससे हमें कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अपनाकर हम मृत्युको न्योता देंगे। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्यायकी हिमायत करता है; वह समान भावसे सबकी भलाईका — जिनमें कमजोर भी शामिल हैं — प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवनके लिए अनिवार्य है। १६

मैं ऐसी स्थिति लाना चाहता हूं, जिसमें सबका सामाजिक दरजा समान माना जाय। १७

मेरा आदर्श तो समान वितरणका ही है, लेकिन जहां तक मैं देखता हूं वह पूरा होनेवाला नहीं है। इसीलिए मैं न्यायपूर्ण वितरणके लिए कार्य कर रहा हूं। १८

रचनात्मक कामका यह अंग अहिंसापूर्ण स्वराज्यकी मुख्य चाबी है। आर्थिक समानताके लिए काम करनेका मतलब है पूंजी और मज-

७. शरीर-श्रम

शरीर-श्रम न करनेवालेको खानेका क्या अधिकार हो सक-
ता है? १०

हर स्त्री-पुरुष जिन्दा रहनेके लिए शरीर-श्रम करे। ...इसका मत-
लब यह है कि हर स्वस्थ आदमीको अपनी रोटीके लिए शरीर-श्रम करना
ही चाहिये। मनुष्यको अपनी बुद्धिकी शक्तिका उपयोग आजीविका या
उससे भी ज्यादा प्राप्त करनेके लिए नहीं, बल्कि सेवाके लिए, परोपकारके
लिए करना चाहिये। इस नियमका पालन सारी दुनिया करने लगे, तो
सहज ही सब लोग बराबर हो जायं, कोई भूखों न मरे और जगत बहुतसे
पापोंसे बच जाय। . . . इस नियमका पालन करनेवाले पर इसका चम-
त्कारी असर होता है; क्योंकि उसे परम शान्ति मिलती है, उसकी सेवा-
शक्ति बढ़ती है और उसकी तन्दुरुस्ती बढ़ती है। . . . गीताका अध्ययन
करने पर मैं इसी नियमको गीताके तीसरे अध्यायमें यज्ञके रूपमें देखता
हूं। . . . 'यज्ञसे बचा हुआ अन्न' (श्लोक १३) वही है, जो मेहनत
करनेके बाद मिलता है। आजीविकाके लिए पर्याप्त श्रमको गीताने
यज्ञ कहा है। . . .

यह मानना कि किताबोंसे ही, मेज-कुर्सी पर बैठनेसे ही ज्ञान मिलता
है, बुद्धिका विकास होता है, घोर अज्ञान और भारी वहम है। हमें तो
इसमें से निकल ही जाना चाहिये। जीवनमें वाचनके लिए स्थान जरूर
है, मगर वह अपनी जगह पर ही शोभा देता है। शरीर-श्रमको हानि
पहुंचाकर उसे बढ़ाया जाय, तो उसके खिलाफ विद्रोह करना कर्तव्य
हो जाता है। शरीर-श्रमके लिए दिनका ज्यादा समय देना चाहिये
और वाचन वगैराके लिए थोड़ा। आजकल इस देशमें, जहां अमीर
लोग या ऊंचे वर्णके माने जानेवाले लोग शरीर-श्रमका अनादर करते हैं,
शरीर-श्रमको ऊंचा दरजा देनेकी बड़ी जरूरत है। और बुद्धिशक्तिको
सच्चा वेग देनेके लिए भी शरीर-श्रम . . . भी उपयोगी शारी-
रिक धन्धेमें शरीरको लगानेकी ज . . .

चाहते हैं

लाखों भूखसे

जा

और वह है जी

सकता । उन्हें स्वयं इसे पाना होगा । यह केवल कड़े श्रम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। १२

बौद्धिक कार्य शारीरिक कार्य जितना ही महत्त्वपूर्ण है और जीवनकी योजनामें उसका निश्चित स्थान है । परन्तु मेरा आग्रह शरीर-श्रमकी आवश्यकता पर है। मेरा दावा है कि किसी भी मनुष्यको इस दायित्वसे मुक्त नहीं होना चाहिये। १३

ईश्वरने मनुष्यका निर्माण श्रम द्वारा अपना भोजन प्राप्त करनेके लिए किया और कहा कि श्रम किये बिना जो खाते है वे चोर है। १४

३. समानता

हरएकको अपने विकासके और अपने जीवनको सफल बनानेके समान अवसर मिलते रहने चाहिये । यदि अवसर दिया जाय, तो हर आदमी समान रूपसे अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। १५

जिस तरह सच्चे नीतिधर्ममें और कल्याणकारी अर्थशास्त्रमें कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्मके ऊंचेसे ऊंचे आदर्शका विरोधी नहीं होता । जो अर्थशास्त्र धनकी पूजा करना सिखाता है और बलवानोंको निर्बलोंका शोषण करके धनका संग्रह करनेकी सुविधा देता है, उसे शास्त्रका नाम नहीं दिया जा सकता। वह तो एक झूठी चीज है, जिसमे हमें कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अपनाकर हम मृत्युको न्योता देंगे । सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्यायकी हिमायत करता है; वह समान भावसे सबकी भलाईका — जिनमें कमजोर भी शामिल हैं — प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवनके लिए अनिवार्य है। १६

मैं ऐसी स्थिति लाना चाहता हूं, जिसमें सबका सामाजिक दरजा समान माना जाय। १७

मेरा आदर्श तो समान वितरणका ही है, लेकिन जहां तक मैं देखता हूं वह पूरा होनेवाला नहीं है । इसीलिए मैं न्यायपूर्ण वितरणके लिए कार्य कर रहा हूं। १८

रचनात्मक कामका यह अंग अहिंसापूर्ण स्वराज्यकी मुख्य चाबी है । आर्थिक समानताके लिए काम करनेका मतलब है पूंजी और मज-

दूरीके बीचके झगड़ोंको हमेशाके लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओरसे जिन मुट्ठीभर पैसेवाले लोगोंके हाथमें राष्ट्रकी संपत्तिका बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है उनकी संपत्तिको कम करना और दूसरी ओरसे जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं उनकी संपत्तिमें वृद्धि करना। जब तक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहनेवालोंके बीच जमीन-आसमानका अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसाकी बुनियाद पर चलनेवाली राज्य-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आजाद हिन्दुस्तानमें देशके बड़े-से-बड़े धनवानोंके हाथमें हुकूमतका जितना हिस्सा रहेगा उतना ही गरीबोंके हाथमें भी होगा; और तब नई दिल्लीके महलों और उनकी बगलमें बसी हुई गरीब मजदूर-बस्तियोंके टूटे-फूटे झोंपड़ोंके बीच जो दर्दनाक फर्क आज नजर आता है वह एक दिनको भी नहीं टिकेगा। अगर धनवान लोग अपने धनको और उसके कारण मिलनेवाली सत्ताको खुद राजी-खुशीसे छोड़कर और सबके कल्याणके लिए सबके साथ मिलकर बरतनेको तैयार न होंगे, तो यह तय समझिये कि हमारे देशमें हिंसक और खूंख्वार क्रांति हुए बिना न रहेगी। ट्रस्टीशिपके मेरे सिद्धान्तका बहुत मजाक उड़ाया गया है, फिर भी मैं उस पर डटा हुआ हूं। यह सच है कि उस तक पहुंचने यानी उसका पूरा-पूरा अमल करनेका काम कठिन है। क्या अहिंसाकी भी यही हालत नहीं है? फिर भी १९२० में हमने यह सीधी चढ़ाई चढ़नेका निश्चय किया ही था। १९

४. संरक्षकता

आर्थिक समानताकी जड़में धनिकका ट्रस्टीपन निहित है। इस आदर्शके अनुसार धनिकको अपने पड़ोसीसे एक कौड़ी भी ज्यादा रखनेका अधिकार नहीं। तब उसके पास जो ज्यादा है वह क्या उससे छीन लिया जाये? ऐसा करनेके लिए हिंसाका आश्रय लेना पड़ेगा। और हिंसाके द्वारा ऐसा करना संभव हो, तो भी समाजको उससे कुछ फायदा होनेवाला नहीं है। क्योंकि द्रव्य इकट्ठा करनेकी शक्ति रखनेवाले एक आदमीकी शक्तिको समाज खो बैठेगा। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सकें उतनी आवश्यकतायें पूरी करनेके बाद जो पैसा

बाकी बचे उसका वह प्रजाकी ओरसे ट्रस्टी बन जाये। अगर वह प्रामाणिकतासे संरक्षक बनेगा, तो जो पैसा पैदा करेगा उसका सद्व्यय भी करेगा। जब मनुष्य अपने-आपको समाजका सेवक मानेगा, समाजके खातिर धन कमायेगा, समाजके कल्याणके लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाईमें शुद्धता आयेगी। उसके साहसमें भी अहिंसा होगी। इस प्रकारकी कार्य-प्रणालीका आयोजन किया जाये, तो समाजमें बगैर संघर्षके मूक क्रान्ति पैदा हो सकती है।

किन्तु महाप्रयत्न करने पर भी धनिक संरक्षक न बनें और भूखों मरते हुए करोडोंको अहिंसाके नामसे और अधिक कुचलते जाय, तब क्या किया जाय? इस प्रश्नका उत्तर ढूंढ़नेमें ही अहिंसक कानून-भंग प्राप्त हुआ। कोई धनवान गरीबोंके सहयोगके बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्यको अपनी हिंसक शक्तिका भान है, क्योंकि वह उसे लाखों वर्षोंसे विरासतमें मिली हुई है। जब उसे चार पैरकी जगह दो पैर और दो हाथवाले प्राणीका आकार मिला, तब उसमें अहिंसक शक्ति भी आई। अहिंसा-शक्तिका भान भी धीरे-धीरे, किन्तु अचूक रीतिसे रोज-रोज बढ़ने लगा। वह भान गरीबोंमें प्रसार पा जाये, तो वे बलवान बनें और आर्थिक असमानताको, जिसके वे शिकार बने हुए हैं, अहिंसक तरीकेसे दूर करना सीख लें। २०

५. विकेन्द्रीकरण

मेरी सूचना है कि यदि भारतको अपना विकास अहिंसाकी दिशामें करना है, तो उसे बहुतसी चीजोंका विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण किया जाय तो फिर उसे कायम रखनेके लिए और उसकी रक्षाके लिए हिंसाबल अनिवार्य है। जिनमें चोरी करने या लूटनेके लिए कुछ है ही नहीं ऐसे सादे घरोंकी रक्षाके लिए पुलिसकी जरूरत नहीं होती। लेकिन धनवानोंके महलोंके लिए अवश्य बलवान रक्षक होने चाहिये, जो डाकुओंसे उनकी रक्षा करें। यही बात बड़े-बड़े कारखानोंकी है। गांवोंको केन्द्रमें रखकर जिस भारतका निर्माण होगा उसे शहर-प्रधान भारतकी अपेक्षा — शहर-प्रधान भारत जल, थल और वायुसेनाओंसे सुसज्जित होगा तो भी — विदेशी आक्रमणका कम खतरा रहेगा। २१

आप कारखानोंकी सभ्यता पर अहिंसाका निर्माण नहीं कर सकते; लेकिन वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी ग्रामोंके आधार पर निर्माण की जा सकती है। मेरी कल्पनाकी ग्रामीण अर्थ-रचना शोषणका सर्वथा त्याग करती है; और शोषण हिंसाका सार है। २२

६. स्वदेशी

स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है। हर मनुष्यका पहला कर्तव्य अपने पड़ोसियोंके प्रति है। इसमें परदेशीके प्रति द्वेष नहीं है और स्वदेशीके लिए पक्षपात नहीं है। शरीरधारीकी सेवा करनेकी शक्तिकी मर्यादा होती है। वह अपने पड़ोसियोंके लिए भी मुश्किलसे अपना धर्म पूरा कर सकता है। अगर पड़ोसीके प्रति सब कोई अपना धर्म अच्छी तरह पाल सकें, तो दुनियामें मददके बिना कोई दुःख न भोगे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पड़ोसीकी सेवा करके दुनियाकी सेवा करता है। असलमें तो इस स्वदेशी-धर्ममें अपने-परायेका भेद ही नहीं है। पड़ोसीके प्रति धर्म-पालन करनेका अर्थ है जगतके प्रति धर्म-पालन। और किसी तरहसे दुनियाकी सेवा हो ही नहीं सकती। जिसकी दृष्टिमें सारा जगत ही कुटुम्ब है, उसमें अपनी जगह पर रहकर भी सबकी सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिये। वह तो पड़ोसीकी सेवाके द्वारा ही हो सकती है। टॉल्स्टॉय तो इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि अभी तो हम एक-दूसरेके कन्धे पर चढ़े बैठे हैं। दूसरोंके कन्धेसे हम उतर जायं तो बस है। यह कथन उसी बातको दूसरी तरह पेश करता है। अपनी सेवा किये बिना कोई दूसरोंकी सेवा करता ही नहीं। और दूसरेकी सेवा किये बिना जो अपनी ही सेवा करनेके इरादेसे कोई काम शुरू करता है, वह अपनी और संसारकी हानि करता है। कारण स्पष्ट है। हम सभी जीव एक-दूसरेके साथ इतने ज्यादा ओतप्रोत हैं कि जो कुछ एक आदमी करता है उसका अच्छा-बुरा असर सारे जगत पर पड़ता ही है। हमारी अति मर्यादित दृष्टिके कारण भले ही हम न देख सकें, भले ही एक व्यक्तिके कामका असर इस संसार-सागरमें नहीं-के बराबर हो, पर वह होता जरूर है। अपनी जिम्मेदारी समझनेके लिए इतना ज्ञान हमारे लिए काफी होना चाहिये।

इसलिए शुद्ध स्वदेशी-धर्म विदेशीके विरुद्ध नहीं है। फिर भी स्वदेशी सर्वदेशी नहीं है। नहीं इसलिए कि ऐसा होना असम्भव है। 'सबका' करने जाय तो वह होता नहीं और 'अपना' भी चला जाता है। 'अपना' करते रहनेमें 'सबका' होता ही रहता है। 'सबका' करनेका यह एक उपाय है। 'मेरे लिए सब बराबर हैं' यह कहनेका अधिकार उसीको है, जिसने पड़ोसीके प्रति अपना धर्म पाला हो। 'मेरे लिए सब बराबर हैं' यह कहकर जो पड़ोसीका तिरस्कार करता है और अपने शौक पूरे करता है, वह स्वेच्छाचारी है, स्वच्छन्द है। वह अपने ही लिए जीता है। २३

७. स्वावलम्बन

समाजका घटक एक गाव या लोगोंका ऐसा छोटा समूह होना चाहिये, जिसकी व्यवस्था हो सके, और जो आदर्शकी दृष्टिसे (जीवनकी मुख्य आवश्यकताओंके बारेमें) स्वसम्पूर्ण और आत्म-निर्भर हो। २४

हर गावका पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरतका सारा अनाज और कपड़ेके लिए कपास खुद पैदा कर ले। २५

खादीका मुख्य काम है हर गावको अनाज और कपड़ेके बारेमें आत्म-निर्भर बनाना। २६

खुद कत्तिनों द्वारा या लगभग हर गावमें कपास उगाये बिना स्वावलम्बी खादी कभी सफल नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि जहां तक स्वावलम्बी खादीका सम्बन्ध है कमसे कम वहा तक कपासकी खेतीको विकेन्द्रित किया जाय। २७

हरएक गावको अपने पांव पर खड़ा होना होगा — अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार स्वय चला सके। यहा तक कि वह सारी दुनियासे अपनी रक्षा स्वयं कर सके। २८

८. सहयोग

मनुष्योंको सहयोगसे रहना चाहिये और सबकी भलाईके लिए काम करना चाहिये। २९

जहां तक सम्भव होगा, गांवके सारे काम सहयोगके आधार पर किये जायेंगे। ३०

सहकारिताकी पद्धति . . . किसानोंके लिए ही ज्यादा जरूरी है। जमीन सरकारकी है। इसलिए जब उसे सहकारिताके आधार पर जोता जायगा, तो उससे किसानको ज्यादासे ज्यादा आमदनी होगी।

यह याद रखना चाहिये कि सहकारिताका आधार पूर्ण अहिंसा पर होगा। ३१

९. सत्याग्रह

सत्याग्रह और असहयोगके शस्त्रके साथ अहिंसाकी सत्ता ही ग्रामीण समाजका शासन-बल होगी। ३२

१०. सब धर्मोंकी समानता

सारे धर्म मूलमें एक ही हैं, यद्यपि वे पेड़के पत्तोंकी तरह ब्योरेमें और बाह्य रूपमें एक-दूसरेसे अलग अलग हैं। हर पत्तेका अपना अलग अस्तित्व होता है, लेकिन वे सब एक ही तनेसे फूटते हैं और उसीसे उनका सम्बन्ध होता है। इसके अलावा, कोई भी दो पत्ते एकसे नहीं होते। फिर भी, वे आपसमें कभी नहीं लड़ते। इसके बजाय वे उसी हवामें खुशीसे नाचते हैं और एकसाथ एकसा मीठा स्वर निकालते हैं। ३३

संसारमें जितने भी प्रचलित प्रख्यात धर्म हैं, वे सब सत्यको प्रकट करते हैं। लेकिन वे सब अपूर्ण मनुष्य द्वारा व्यक्त हुए हैं, इसलिए उन सबमें असत्यका भी मिश्रण हो गया है। इसका मतलब यह कि हममें जितना अपने धर्मके लिए मान हो, उतना ही मान दूसरोंके धर्मोंके लिए भी होना चाहिये। ३४

ग्राम-स्वराज्यमें हरएक धर्मकी अपनी पूरी और बराबरीकी जगह होगी। हम सब एक ही आलीशान पेड़के पत्ते हैं। इस पेड़की जड़ हिलाई नहीं जा सकती, क्योंकि वह पाताल तक पहुंची हुई है। जबरदस्तसे जबरदस्त आंधी भी उसे हिला नहीं सकती। ३५

११. पंचायत राज

गांवका शासन चलानेके लिए हर साल गांवके पांच आदमियोंकी एक पंचायत चुनी जायगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित

आज मालिक-मजदूरका भेद सर्व-व्यापक और स्थायी हो गया है और गरीब धनवानसे जलता है। अगर सब रोटीके लिए श्रम करे, तो ऊंच-नीचका भेद न रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा तो वह खुदको मालिक नहीं बल्कि उस धनका रक्षक या ट्रस्टी मानेगा और उसका ज्यादातर उपयोग सिर्फ लोगोंकी सेवाके लिए ही करेगा।

जिसे अहिंसाका पालन करना है, सत्यकी भक्ति करनी है, ब्रह्मचर्यको कुदरती बनाना है, उसके लिए तो शरीर-श्रम रामबाण-सा हो जाता है। यह श्रम सचमुच तो खेतीमें ही होता है। लेकिन सब लोग खेती नहीं कर सकते, ऐसी आज तो हालत है ही। इसलिए खेतीके आदर्शको खयालमें रखकर खेतीके बदलेमें आदमी भले दूसरा श्रम करे — जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी वगैरा वगैरा। सबको खुदके भंगी तो बनना ही चाहिये। जो खाना है वह टट्टी तो फिरेगा ही। जो टट्टी फिरता है वही अपनी टट्टी जमीनमें गाड़ दे, यह उत्तम रिवाज है। अगर यह नहीं ही हो सके तो प्रत्येक कुटुम्ब अपना यह कर्तव्य पाले।

जिस समाजमें भंगीका अलग धन्धा माना गया है वहां कोई बड़ा दोष पैठ गया है, ऐसा मुझे तो बरसोंसे लगता रहा है। इस जरूरी और तन्दुरस्ती बढ़ानेवाले कामको सबसे नीचा काम पहले-पहल किसने माना, इसका इतिहास हमारे पास नहीं है। जिसने माना उसने हम पर उपकार तो नहीं ही किया। हम सब भंगी हैं यह भावना हमारे मनमें बचपनसे ही जम जानी चाहिये; और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो लोग समझ गये हैं वे शरीर-श्रमका आरम्भ पाखाना-सफाईसे करें। जो मनुष्य समझ-बूझकर, ज्ञानपूर्वक यह करेगा, वह उसी क्षणसे धर्मको निराले ढंगसे और सही तरीकेसे समझने लगेगा। १

यदि सब लोग अपने ही परिश्रमकी कमाई खावें, तो दुनियामें अन्नकी कमी न रहे और सबको काफी अवकाश भी मिले। तब न किसीको जनसंख्याकी वृद्धिकी शिकायत रहे, न कोई बीमारी आवे और न किसी मनुष्यको कष्ट या क्लेश ही सतावे। वह श्रम ऊंचेसे ऊंचे प्रकारका यज्ञ होगा। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने शरीर या बुद्धिके द्वारा और भी अनेक काम करेंगे, पर उनका यह सब श्रम

उत्पादनके योग्य बनाकर करूंगा। इस प्रकार प्रत्येक स्कूल आत्म-निर्भर हो सकता है। शर्त सिर्फ यह है कि इन स्कूलोंकी बनी चीजें राज्य खरीद लिया करे। ३९

७

शरीर-श्रम

रोटीके लिए हरएक मनुष्यको श्रम करना चाहिये, शरीरको (कमरको) झुकाना चाहिये, यह ईश्वरका कानून है। यह मूल खोज टॉल्स्टॉयकी नहीं है, लेकिन उससे बहुत कम प्रसिद्ध रशियन लेखक टी० एम० बोन्दरेव्हकी है। टॉल्स्टॉयने उसका प्रचार और प्रसार किया और उसे अपनाया। इसकी झांकी मेरी आंखें भगवद्गीताके तीसरे अध्यायमें करती हैं। यज्ञ किये विना जो खाता है वह चोरीका अन्न खाता है, ऐसा कठिन शाप यज्ञ नहीं करनेवालेको गीतामें दिया गया है। यहां यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम या रोटी-मजदूरी ही उचित हो सकता है।

वुद्धि भी उस चीजकी ओर हमें ले जाती है। जो श्रम नहीं करता उसे खानेका क्या हक है? बाइवल कहती है: 'अपनी रोटी तू अपना पसीना वहाकर कमा और खा।' करोड़पति भी अगर अपने पलंग पर लोटता रहे और उसके मुंहमें कोई खाना डाले तभी खाये, तो वह ज्यादा समय तक खा नहीं सकेगा; इसमें उसको आनन्द भी नहीं आयेगा। इसलिए वह कसरत वगैरा करके भूख पैदा करता है और खाता तो है अपने ही हाथ-मुंह हिलाकर। अगर यों किसी न किसी रूपमें अंगोंकी कसरत राय-रंक सबको करनी ही पड़ती है, तो रोटी पैदा करनेकी कसरत ही सब क्यों न करें? यह सवाल कुदरती तौर पर उठता है। किसानको हवाखोरी या कसरत करनेके लिए कोई नहीं कहता है और दुनियाके ९० फीसदीसे भी ज्यादा लोगोंका निर्वाह खेती पर होता है। बाकीके दस फीसदी लोग अगर इनकी नकल करें, तो जगतमें कितना सुख, कितनी शांति और कितनी तन्दुरुस्ती फैल जाये!

आज मालिक-मजदूरका भेद सर्व-व्यापक और स्थायी हो गया है और गरीब धनवानसे जलता है। अगर सब रोटीके लिए श्रम करे, तो ऊंच-नीचका भेद न रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा तो वह खुदको मालिक नहीं बल्कि उस धनका रक्षक या ट्रस्टी मानेगा और उसका ज्यादातर उपयोग सिर्फ लोगोंकी सेवाके लिए ही करेगा।

जिसे अहिंसाका पालन करना है, सत्यकी भक्ति करनी है, ब्रह्मचर्यको कुदरती बनाना है, उसके लिए तो शरीर-श्रम रामबाण-सा हो जाता है। यह श्रम सचमुच तो खेतीमें ही होता है। लेकिन सब लोग खेती नहीं कर सकते, ऐसी आज तो हालत है ही। इसलिए खेतीके आदर्शको खयालमें रखकर खेतीके बदलेमें आदमी भले दूसरा श्रम करे — जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी वगैरा वगैरा। सबको खुदके भगी तो बनना ही चाहिये। जो खाता है वह टट्टी तो फिरेगा ही। जो टट्टी फिरता है वही अपनी टट्टी जमीनमें गाड दे, यह उत्तम रिवाज है। अगर यह नहीं ही हो सके तो प्रत्येक कुटुम्ब अपना यह कर्तव्य पाले।

जिस समाजमें भंगीका अलग धन्धा माना गया है वहां कोई बडा दोष पैठ गया है, ऐसा मुझे तो बरसोंसे लगता रहा है। इस जरूरी और तन्दुरुस्ती बढानेवाले कामको सबसे नीचा काम पहले-पहल किसने माना, इसका इतिहास हमारे पास नहीं है। जिसने माना उसने हम पर उपकार तो नहीं ही किया। हम सब भगी हैं यह भावना हमारे मनमें बचपनसे ही जम जानी चाहिये; और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो लोग समझ गये हैं वे शरीर-श्रमका आरम्भ पाखाना-सफाईसे करें। जो मनुष्य समझ-बूझकर, ज्ञानपूर्वक यह करेगा, वह उसी क्षणसे धर्मको निराले ढंगसे और सही तरीकेसे समझने लगेगा। १

यदि सब लोग अपने ही परिश्रमकी कमाई खायें, तो दुनियामें अन्नकी कमी न रहे और सबको काफी अवकाश भी मिले। तब न किसीको जनसंख्याकी वृद्धिकी शिकायत रहे, न कोई बीमारी आवे और न किसी मनुष्यको कष्ट या क्लेश ही सतावे। यह श्रम ऊंचेसे ऊंचे प्रकारका यज्ञ होगा। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने शरीर या बुद्धिके द्वारा और भी अनेक काम करेंगे, पर उनका यह सब श्रम

लोक-कल्याणके लिए किया जानेवाला प्रेमका श्रम होगा। उस अवस्थामें न कोई राव होगा न कोई रंक, न कोई ऊंच होगा न कोई नीच, न कोई स्पृश्य रहेगा न कोई अस्पृश्य।

भले ही यह एक अलभ्य आदर्श हो, पर इस कारण हमें अपना प्रयत्न बन्द कर देनेकी जरूरत नहीं। यज्ञके सम्पूर्ण नियमको अर्थात् अपने 'जीवनके नियम' को पूरा किये बिना भी अगर हम अपने नित्यके निर्वाहके लिए पर्याप्त शारीरिक श्रम करेंगे, तो उस आदर्शके बहुत कुछ निकट तो हम पहुंच ही जायंगे।

यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारी आवश्यकतायें बहुत कम हो जायंगी और हमारा भोजन भी सादा बन जायगा। तब हम जीनेके लिए खायेंगे, न कि खानेके लिए जीयेंगे। इस बातकी यथार्थतामें जिसे शंका हो वह अपने परिश्रमकी कमाई खानेका प्रयत्न करे। अपने पसीनेकी कमाई खानेमें उसे कुछ और ही स्वाद मिलेगा, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और उसे यह मालूम हो जायगा कि जो बहुतसी विलासकी चीजें उसने अपने ऊपर लाद रखी थीं वे सब बिलकुल ही अनावश्यक थीं। २

क्या मनुष्य अपने बौद्धिक श्रमसे अपनी आजीविका नहीं कमा सकते? नहीं। शरीरकी आवश्यकताएं शरीर द्वारा ही पूरी होनी चाहिये। केवल मानसिक और बौद्धिक श्रम आत्माके लिए और स्वयं अपने ही संतोषके लिए है। उसका पुरस्कार कभी नहीं मांगा जाना चाहिये। आदर्श राज्यमें डॉक्टर, वकील और ऐसे ही दूसरे लोग केवल समाजके लाभके लिए काम करेंगे; अपने लिए नहीं। शारीरिक श्रमके धर्मका पालन करनेसे समाजकी रचनामें एक शान्त क्रान्ति हो जायगी। मनुष्यकी विजय जीवन-संग्रामके स्थान पर परस्पर सेवाके संग्रामकी स्थापना कर देनेमें होगी। पशुधर्मके स्थान पर मानव-धर्म स्थापित हो जायगा। ३

मुझे गलत नहीं समझा जाये। मैं बौद्धिक श्रमके मूल्यकी अवगणना नहीं करता हूं; लेकिन बौद्धिक श्रम कितनी ही मात्रामें क्यों न किया जाय, उससे शरीर-श्रमकी थोड़ी भी क्षतिपूर्ति नहीं होती, जो कि हममें से हरएक सबकी भलाईके लिए करनेको पैदा हुआ है। बौद्धिक श्रम

शरीर-श्रमसे निश्चित रूपमें श्रेष्ठ हो सकता है, अकसर होता है, लेकिन वह शरीर-श्रमका स्थान कभी नहीं लेता और न कभी ले सकता है; जैसे बौद्धिक भोजन हम जो अन्न खाते हैं उसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा उत्तम है, परन्तु वह अन्नका स्थान कभी नहीं ले सकता। सचमुच, पृथ्वीकी उपजके अभावमें बुद्धिकी उपज होना असंभव है। ४

बुद्धिपूर्वक किया हुआ शरीर-श्रम समाज-सेवाका सर्वोत्कृष्ट रूप है। यहां शरीर-श्रम शब्दके साथ 'बुद्धिपूर्वक किया हुआ' विशेषण यह दिखानेके लिए जोड़ा गया है कि किये हुए शरीर-श्रमके पीछे समाज-सेवाका निश्चित उद्देश्य हो तभी उसे समाज-सेवाका दरजा मिल सकता है। ऐसा न हो तब तो कहा जायगा कि हरएक मजदूर समाज-सेवा करता ही है। वैसे, एक अर्थमें यह कथन सही भी है, लेकिन यहां उससे कुछ ज्यादा अभीष्ट है। जो आदमी सब लोगोंके सामान्य कल्याणके लिए परिश्रम करता है, वह जरूर समाजकी सेवा करता है और उसकी आवश्यकतायें पूरी होनी ही चाहियें। इसलिए ऐसा शरीर-श्रम समाज-सेवासे भिन्न नहीं है। ५

गांवोंमें लौट जानेका अर्थ यह है कि शरीर-श्रमके धर्मको उसके तमाम अंगोंके साथ हम निश्चित रूपमें स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करते हैं। परन्तु आलोचक कहते हैं 'भारतकी करोड़ों संतानें आज भी गांवोंमें रहती हैं, फिर भी उन्हें पेटभर भोजन नसीब नहीं होता।' अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि यह बिलकुल सच बात है। सौभाग्यसे हम जानते हैं कि उनका शरीर-श्रमके धर्मका पालन स्वेच्छापूर्ण नहीं है। उनका बस चले तो वे शरीर-श्रम कभी न करें और नजदीकके शहरमें कोई व्यवस्था हो जाय तो वहां दौड़ कर चले जायं। मजबूर होकर किसी मालिककी आज्ञा पालना गुलामीकी स्थिति है; स्वेच्छासे अपने पिताकी आज्ञा मानना पुत्रत्वका गौरव है। इसी प्रकार शरीर-श्रमके नियमका विवश होकर पालन करनेसे दरिद्रता, रोग और असंतोष उत्पन्न होते हैं। यह गुलामीकी दशा है। शरीर-श्रमके नियमका स्वेच्छा-पूर्वक पालन करनेसे संतोष और स्वास्थ्य मिलता है। और स्वास्थ्य ही सच्ची सम्पत्ति है, न कि सोने-चांदीके टुकड़े। ६

भीख मांगना

मेरी अहिंसा किसी ऐसे स्वस्थ आदमीको मुफ्त खाना देनेका विचार बरदाश्त नहीं करेगी, जिसने उसके लिए ईमानदारीसे कुछ न कुछ काम न किया हो; और मेरा वश चले तो जहां मुफ्त भोजन मिलता है वे सब सदाव्रत मैं बन्द कर दूं। इससे राष्ट्रका पतन हुआ है और आलस्य, बेकारी, दंभ और अपराधोंको प्रोत्साहन मिला है। इस प्रकारका अनुचित दान देशके भौतिक या आध्यात्मिक धनकी कुछ भी वृद्धि नहीं करता और दाताके मनमें पुण्यात्मा होनेका झूठा भाव पैदा करता है। क्या ही अच्छी और बुद्धिमानीकी बात हो, यदि दानी लोग ऐसी संस्थायें खोलें जहां उनके लिए काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको स्वास्थ्यप्रद और स्वच्छ वातावरणमें भोजन दिया जाय। मेरा खुदका तो यह विचार है कि चरखा या उससे सम्बन्धित क्रियाओंमें से कोई भी कार्य आदर्श होगा। परन्तु उन्हें यह स्वीकार न हो तो वे कोई भी दूसरा काम चुन सकते हैं। जो भी हो, नियम यह होना चाहिये कि 'मेहनत नहीं तो खाना भी नहीं।' ७

भीख मांगनेको प्रोत्साहन देना बेशक बुरा है, लेकिन मैं किसी भिखारीको काम और भोजन दिये बिना नहीं लौटाऊंगा। हां, वह काम करना मंजूर न करे तो मैं उसे भोजनके बिना ही चला जाने दूंगा। जो लोग शरीरसे लाचार हैं, जैसे लंगड़े या विकलांग, उनका पोषण राज्यको करना चाहिये। लेकिन बनावटी या सच्ची अंधताकी आड़में भी काफी धोखा-धड़ी चल रही है। कितने ही ऐसे अंधे हैं जिन्होंने अपनी अंधताका लाभ उठाकर काफी पैसा जमा कर लिया है। वे इस तरह अपनी अंधताका अनुचित लाभ उठायें, इसके बजाय यह ज्यादा अच्छा होगा कि उन्हें अपाहिजोंकी देखभाल करनेवाली किसी संस्थामें रख दिया जाय। ८

आपको अपने पसीनेकी रोटी कमाना पसन्द होना चाहिये और भीख मांगने या दान लेनेसे बिलकुल दूर रहना चाहिये। ९

८

समानता

समाजकी मेरी कल्पना यह है कि जहां हम सब समान पैदा हुए हैं — अर्थात् हमें समान अवसर प्राप्त करनेका अधिकार है, वहां सबकी योग्यता एकसी नहीं है। यह कुदरती तौर पर असंभव है। उदाहरणार्थ, सबकी ऊंचाई, रंग या बुद्धिकी मात्रा वगैरा एकसी नहीं हो सकती; इसलिए कुदरतकी रचना ही ऐसी है कि कुछ लोगोंमें अधिक कमानेकी और दूसरोंमें उनसे कम कमानेकी योग्यता होगी। बुद्धिशाली लोग अधिक कमायेंगे और वे इस कामके लिए अपनी बुद्धिका उपयोग करेंगे। यदि वे अपनी बुद्धिका उपयोग दयाभावसे करें, तो वे राज्यका ही काम करेंगे। ऐसे लोग संरक्षक बनकर जीते हैं, अन्य किसी तरह नहीं। मैं बुद्धिशाली मनुष्यको अधिक कमाने दूंगा और उसकी बुद्धिको कुंठित नहीं करूंगा। परन्तु जैसे पिताके सारे कमाऊ बेटोंकी कमाई परिवारके सम्मिलित कोषमें जाती है, ठीक वैसे ही बुद्धिशालीकी अधिकांश कमाई राज्यकी भलाईमें काम आनी चाहिये। १

आर्थिक समानताका सच्चा अर्थ है जगतके सब मनुष्योंके पास एक समान संपत्तिका होना, यानी सबके पास इतनी संपत्तिका होना जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकतायें पूरी कर सकें। कुदरतने ही एक आदमीका हाजमा अगर नाजुक बनाया हो और वह केवल पांच ही तोला अन्न खा सके और दूसरेको बीस तोला अन्न खानेकी आवश्यकता हो, तो दोनोंको अपनी-अपनी पाचन-शक्तिके अनुसार अन्न मिलना चाहिये। सारे समाजकी रचना इस आदर्शके आधार पर होनी चाहिये। अहिंसक समाजको दूसरा आदर्श नहीं रखना चाहिये। पूर्ण आदर्श तक हम शायद नहीं पहुंच सकते, मगर उसे नजरमें रखकर विधान बनायें और व्यवस्था करें। जिस हद तक इस आदर्शको हम पहुंच सकेंगे, उसी हद तक सुख और संतोष प्राप्त करेंगे और उसी हद तक सामाजिक अहिंसा सिद्ध हुई कही जा सकेगी। २

आयकी समानता

अपनी बुद्धिको रुपये-आने-पाईमें बदलनेके बदले आप उसे देशकी सेवामें लगाइये। यदि आप डॉक्टर हैं तो भारतमें इतनी बीमारियां हैं कि आपके सारे चिकित्सा-कौशलकी उसमें जरूरत है। अगर आप वकील हैं तो हिन्दुस्तानमें काफी मतभेद और झगड़े-टंटे हैं। अधिक झगड़े खड़े करनेके बजाय आप उन झगड़ोंको निपटाइये और मुकदमेबाजी बन्द कीजिये। यदि आप इंजीनियर हैं तो हमारे गरीब लोगोंकी हैसियत और जरूरतके अनुसार स्वास्थ्यप्रद और शुद्ध हवावाले नमूनेदार मकान बनाइये। आपकी सीखी हुई कोई चीज ऐसी नहीं है, जिसका उपयोग न किया जा सके। (जिस भाईने गांधीजीसे यह प्रश्न पूछा था, वह एक चार्टर्ड अकाउन्टेण्ट था। गांधीजीने आगे उससे कहा था:) सब जगह कांग्रेस और उससे संबंधित संस्थाओंके हिसाब जांचनेके लिए हिसाब-परीक्षकोंकी सख्त जरूरत है। आप भारतमें आ जाइये — मैं आपको काफी काम दूंगा और ४ आने रोज पारिश्रमिक भी दूंगा, जो भारतके लाखों लोगोंकी आमदनीसे अवश्य ही बहुत ज्यादा है। ३

वकालतका पेशा करनेका यह मतलब नहीं होना चाहिये कि एक देहाती बढ़ई या दूसरे कारीगरकी मजदूरीसे ज्यादा पैसा लिया जाय। ४

अगर भारतको स्वाधीनताका ऐसा आदर्श जीवन व्यतीत करना है जिससे संसार ईर्ष्या करे, तो तमाम भंगियों, डॉक्टरों, वकीलों, शिक्षकों, व्यापारियों और दूसरे लोगोंको दिनभरके प्रामाणिक कामका एकसा वेतन या एकसी मजदूरी मिलनी चाहिये। संभव है भारतीय समाज यह ध्येय कभी सिद्ध न कर सके। परन्तु यदि भारतवर्षको सुखी देश बनना है, तो प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है कि वह इस लक्ष्यकी ओर बढ़नेका प्रयत्न करे। ५

९

संरक्षकताका सिद्धान्त

मान लीजिये कि विरासतके या उद्योग-व्यवसायके द्वारा मुझे प्रचुर सम्पत्ति मिल गई। तब मुझे यह जानना चाहिये कि यह सब सम्पत्ति मेरी नहीं है, बल्कि मेरा तो उस पर इतना ही अधिकार है कि जिस तरह दूसरे लाखों आदमी गुजर करते हैं उसी तरह मैं भी इज्जतके साथ अपना गुजर भर करूं। मेरी शेष सम्पत्ति पर राष्ट्रका अधिकार है। और उसीके हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है। इस सिद्धान्तका प्रतिपादन मैंने तब किया था जब कि जमींदारों और राजाओंकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें समाजवादी सिद्धान्त देशके सामने आया था। समाजवादी इन सुविधा-प्राप्त वर्गोंको खतम कर देना चाहते हैं, जब कि मैं यह चाहता हू कि वे (जमींदार और राजा-महाराजा) अपने लोभ और स्वामित्वकी भावनाको छोड़ दें और उन लोगोंके समकक्ष बन जायं, जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं। मजदूरोंको भी यह महसूस करना होगा कि मजदूरका अपनी काम करनेकी शक्ति पर जितना अधिकार है, मालदार आदमीका अपनी सम्पत्ति पर उससे भी कम अधिकार है।

यह दूसरी बात है कि इस तरहके सच्चे ट्रस्टी कितने हो सकते हैं। अगर सिद्धान्त ठीक हैं तो यह बात गौण है कि उनका पालन अनेक लोग कर सकते हैं या केवल एक ही आदमी कर सकता है। यह प्रश्न अन्तरकी श्रद्धाका है। अगर आप अहिंसाके सिद्धान्तको स्वीकार करें, तो आपको उसके अनुसार आचरण करनेकी कोशिश करनी चाहिये, चाहे उसमें आपको सफलता मिले या असफलता। आप यह तो कह सकते हैं कि इस पर अमल करना कठिन है, लेकिन इस सिद्धान्तमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिए यह कहा जा सके कि वह बुद्धि-ग्राह्य नहीं है। १

आप कह सकते हैं कि ट्रस्टीशिप तो कानून-शास्त्रकी एक कल्पनामात्र है, व्यवहारमें उसका कहीं कोई अस्तित्व दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन यदि लोग उस पर सतत विचार करें और उसे आचरणमें उतारनेकी कोशिश भी करते रहें, तो मनुष्य-जातिके जीवनकी नियामक शक्तिके रूपमें प्रेम आज जितना प्रभावशाली दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक प्रभावशाली दिखाई पड़ेगा। बेशक, पूर्ण ट्रस्टीशिप तो युक्लिडकी बिन्दुकी व्याख्याकी तरह एक कल्पना ही है और उतनी ही अप्राप्य भी है। लेकिन यदि उसके लिए कोशिश की जाय, तो दुनियामें समानताकी स्थापनाकी दिशामें हम दूसरे किसी उपायसे जितनी दूर तक जा सकते हैं, उसके बजाय इस उपायसे अधिक दूर तक जा सकेंगे। . . . मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि राज्यने पूंजीवादको हिंसाके द्वारा दबानेकी कोशिश की, तो वह खुद ही हिंसाके जालमें फंस जायगा और फिर कभी वह अहिंसाका विकास नहीं कर सकेगा। राज्य हिंसाका एक केन्द्रित और संघटित रूप ही है। व्यक्तिमें आत्मा होती है; परन्तु चूंकि राज्य एक जड़ यंत्रमात्र है, इसलिए उसे हिंसासे कभी नहीं छुड़ाया जा सकता। क्योंकि हिंसासे ही तो उसका जन्म होता है। इसीलिए मैं ट्रस्टीशिपके सिद्धान्तको तरजीह देता हूं। यह डर हमेशा बना रहता है कि कहीं राज्य उन लोगोंके खिलाफ, जो उससे मतभेद रखते हैं, बहुत ज्यादा हिंसाका उपयोग न करे। लोग यदि स्वेच्छासे ट्रस्टियोंकी तरह व्यवहार करने लगें, तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी। लेकिन यदि वे ऐसा न करें तो मेरा खयाल है कि हमें राज्यके द्वारा भरसक कम हिंसाका आश्रय लेकर उनसे उनकी सम्पत्ति ले लेनी पड़ेगी। . . . (यही कारण है कि मैंने गोलमेज परिषदमें यह कहा था कि सभी निहित हितवालोंकी सम्पत्तिकी जांच होनी चाहिये और जहां आवश्यक मालूम हो वहां उनकी सम्पत्ति राज्यको . . . मुआवजा देकर या मुआवजा दिये बिना ही, जहां जैसा उचित हो, अपने हाथमें कर लेनी चाहिये।) व्यक्तिगत तौर पर तो मैं यह चाहूंगा कि राज्यके हाथोंमें शक्तिका ज्यादा केन्द्रीकरण न हो; उसके बजाय ट्रस्टीशिपकी भावनाका विस्तार हो। क्योंकि मेरी रायमें राज्यकी हिंसाकी तुलनामें वैयक्तिक मालिकीकी हिंसा कम हानिकर है। लेकिन यदि राज्यकी मालिकी अनिवार्य ही हो, तो मैं राज्यकी कमसे कम मालिकीकी सिफारिश करूंगा। २

आजकल यह कहना एक फैशन हो गया है कि समाजको अहिंसाके आधार पर न तो संघटित किया जा सकता है और न चलाया जा सकता है। मैं इस कथनका विरोध करता हूं। परिवारमें जब पिता अपने पुत्रको अपराध करने पर थप्पड़ मार देता है, तो पुत्र उसका बदला लेनेकी बात नहीं सोचता। वह अपने पिताकी आज्ञा इसलिए स्वीकार कर लेता है कि इस थप्पड़के पीछे वह अपने पिताके प्यारको आहत हुआ देखता है, इसलिए नहीं कि थप्पड़ उसे वैसा अपराध दुबारा करनेसे रोकता है। मेरी रायमें समाजकी व्यवस्था इस तरह होनी चाहिये; यह उसका एक छोटा रूप है। जो बात परिवारके लिए सही है, वही समाजके लिए भी सही है; क्योंकि समाज एक बड़ा परिवार ही है। ३

मेरी धारणा यह है कि अहिंसा केवल वैयक्तिक गुण नहीं है। वह एक सामाजिक गुण भी है और अन्य गुणोंकी तरह उसका भी विकास किया जाना चाहिये। यह तो मानना ही होगा कि समाजके पारस्परिक व्यवहारोंका नियमन बहुत हद तक अहिंसाके द्वारा होता है। मैं इतना ही चाहता हूं कि इस सिद्धान्तका विशाल, राष्ट्रीय और आन्तर-राष्ट्रीय क्षेत्रमें भी विस्तार किया जाय। ४

मेरा ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त कोई ऐसी चीज नहीं है, जो काम निकालनेके लिए आज गढ़ लिया गया हो। अपनी मंशाको छिपानेके लिए खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगिज नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्वज्ञान और धर्मके समर्थनका बल है। धनके मालिकोंने इस सिद्धान्तके अनुसार आचरण नहीं किया है, इस बातसे यह सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धान्त झूठा है; इससे धनके मालिकोंकी कमजोरी ही सिद्ध होती है। अहिंसाके साथ किसी दूसरे सिद्धान्तका मेल ही नहीं बैठता। अहिंसक मार्गकी खूबी यह है कि अन्यायी यदि अपना अन्याय दूर नहीं करता, तो वह अपना नाश खुद ही कर डालता है। क्योंकि अहिंसक असहयोगके कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारनेके लिए मजबूर हो जाता है या वह बिलकुल अकेला पड़ जाता है। ५

मैं इस मतके साथ नि:संकोच अपनी सम्मति प्रकट करता हूं कि आम तौर पर धनवान — केवल धनवान ही क्यों, वल्कि ज्यादातर लोग — इस वातका विशेष विचार नहीं करते कि वे पैसा किस तरह कमाते हैं। अहिंसक उपायका प्रयोग करते हुए हमारा यह विश्वास तो होना ही चाहिये कि कोई आदमी कितना ही पतित क्यों न हो, यदि उसका इलाज कुशलतापूर्वक और सहानुभूतिके साथ किया जाय तो उसे सुधारा जा सकता है। हमें मनुष्योंमें रहनेवाले दैवी अंशको प्रभावित करना चाहिये और अपेक्षा रखनी चाहिये कि उसका अनुकूल परिणाम निकलेगा। यदि समाजका हरएक सदस्य अपनी शक्तियोंका उपयोग वैयक्तिक स्वार्थ साधनेके लिए नहीं वल्कि सबके कल्याणके लिए करे, तो क्या इससे समाजकी सुख-समृद्धिमें वृद्धि नहीं होगी? हम ऐसी जड़ समानताका निर्माण नहीं करना चाहते, जिसमें कोई मनुष्य अपनी योग्यताओंका पूरा पूरा उपयोग कर ही न सके। ऐसा समाज अन्तमें नष्ट हुए विना नहीं रह सकता। इसलिए मेरी यह सलाह बिलकुल ठीक है कि धनवान लोग चाहे करोड़ों रुपये कमायें (वेशक, ईमानदारीसे), लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याणमें समर्पित कर देनेका होना चाहिये। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा:' मंत्रमें असाधारण ज्ञान भरा पड़ा है। मौजूदा जीवन-पद्धतिके स्थान पर, जिसमें हरएक आदमी पड़ोसीकी परवाह किये विना केवल अपने ही लिए जीता है, सर्व-कल्याणकारी नयी जीवन-पद्धतिका विकास करना हो, तो उसका सबसे निश्चित मार्ग यही है। ६

१०

स्वदेशीकी भावना

स्वदेशीकी भावनाका अर्थ है हमारी वह भावना, जो हमें दूरके क्षेत्रको छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेशका ही उपयोग और सेवा करना सिखाती है। उदाहरणके लिए, इस परिभाषाके अनुसार धर्मके सम्बन्धमें यह कहा जायगा कि मुझे अपने पूर्वजोंसे प्राप्त धर्मका ही पालन करना चाहिये। अपने समीपवर्ती धार्मिक वातावरणका उपयोग इसी तरह हो सकेगा। यदि मैं उसमें दोष पाऊं तो मुझे उन दोषोंको दूर करके उसकी सेवा करनी चाहिये। इसी तरह राजनीतिके क्षेत्रमें मुझे स्थानीय संस्थाओंका उपयोग करना चाहिये और उनके जाने-माने दोषोंको दूर करके उनकी सेवा करनी चाहिये। अर्थके क्षेत्रमें मुझे अपने पड़ोसियों द्वारा बनायी गई वस्तुओंका ही उपयोग करना चाहिये और उन उद्योगोंकी कमियां दूर करके, उन्हें ज्यादा सम्पूर्ण और सक्षम बनाकर, उनकी सेवा करनी चाहिये। मुझे लगता है कि यदि स्वदेशीकी ऐसी भावनाको व्यवहारमें उतारा जाय, तो मानवताके स्वर्णयुगकी अवतारणा की जा सकती है।

ऊपर स्वदेशीकी जिन तीन शाखाओंका उल्लेख हुआ है, उन पर अब हम थोड़ा विचार करें। हिन्दू धर्म उसकी बुनियादमें निहित इस स्वदेशीकी भावनाके कारण ही स्थितिशील और उसके फलस्वरूप अत्यंत शक्तिशाली बन गया। चूंकि वह दूसरे धर्मोंके अनुयायियोंको अपने दायरेमें खींचनेकी न तो इच्छा ही रखता है और न प्रयत्न ही करता है, इसलिए वह सबसे ज्यादा सहिष्णु है और आज भी अपना विस्तार करनेकी वैसी ही योग्यता रखता है जैसी कि वह भूतकालमें दिखा चुका है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि उसने बौद्ध धर्मको खदेड़कर भारतके बाहर निकाल दिया। यह धारणा गलत है। उलटे उसने बौद्ध धर्मको आत्मसात् कर लिया है। स्वदेशीकी भावनाके ही कारण हिन्दू अपने धर्मका परि-

वर्तन करनेसे इनकार करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह उसे सर्वश्रेष्ठ मानता है, लेकिन वह जानता है कि वह उसमें जरूरी सुधार कर सकता है और उसे सम्पूर्ण बना सकता है। और जो कुछ मैंने हिन्दू धर्मके बारेमें कहा है, वह सब मेरे विचारसे दुनियाके दूसरे बड़े धर्मोंके लिए भी सही है। अन्तर केवल यह है कि हिन्दू धर्मके लिए यह विशेष रूपसे सही है। यहां मुझे एक बात कहनी है। भारतमें काम करनेवाली मिशनरी संस्थाओंने भारतके लिए बहुत-कुछ किया है और अभी भी वे कर रही हैं और भारत इसके लिए उनका कृतज्ञ है। लेकिन मैंने जो कुछ कहा है उसमें यदि कोई सत्य है, तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि वे धर्म-परिवर्तनका कार्य छोड़ दें और केवल परोपकारकी ही प्रवृत्तियां जारी रखें? क्या इस तरह वे ईसाई धर्मके आन्तरिक तत्त्वकी अधिक सेवा नहीं करेंगी?

स्वदेशीकी भावनाकी खोज करते हुए जब मैं देशकी संस्थाओं पर नजर डालता हूं, तो मुझे ग्राम-पंचायतें बहुत ज्यादा आकर्षित करती हैं। भारत वस्तुतः प्रजातंत्रका उपासक देश है; और वह प्रजातंत्रका उपासक है इसीलिए वह उन सब चोटोंको सह सका है, जो आज तक उस पर की गई हैं। राजाओं और नवाबोंने, वे भारतीय रहे हों या विदेशी, प्रजासे सिर्फ कर वसूल किया है; उसके सिवा प्रजाके साथ उनका कोई सम्पर्क शायद ही रहा है। और प्रजाने राजाको उसका प्राप्य देकर अपना बाकी जीवन-व्यवहार अपनी इच्छाके अनुसार चलाया है। वर्ण और जातियोंका विशाल संघटन न केवल समाजकी धार्मिक आवश्यकतायें पूरी करता था, बल्कि उसकी राजनीतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति भी करता था। गांववाले अपना आंतरिक कामकाज जाति-संघटनके द्वारा चलाते थे और उसीके द्वारा वे राजकीय शक्तिके अत्याचारोंका भी मुकाबला करते थे। जाति-संघटनके द्वारा अपनी संघटन-शक्तिका ऐसा अच्छा परिचय जिस राष्ट्रने दिया है, उसकी संघटन-शक्तिकी क्षमतासे इनकार नहीं किया जा सकता। आप हरिद्वारके कुम्भ मेलेको देखें। . . . आपको पता चल जायगा कि जो संघटन लगभग अनायास ही लाखों तीर्थयात्रियोंकी व्यवस्था कर सकता है, वह कितना कौशलपूर्ण न होगा?

फिर भी यह कहनेकी फैशन हो गई है कि हम लोगोंमें संघटनकी योग्यता नहीं है। हां, यह बात उनके बारेमें अमुक हद तक सही हो सकती है, जो नई परंपराओंमें पले और बड़े हुए हैं।

स्वदेशीकी भावनासे हट जानेके कारण हमें भयंकर विघ्न-बाधाओंसे गुजरना पड़ा है। हम शिक्षित वर्गके लोगोंको अपनी शिक्षा विदेशी भाषाके माध्यमसे मिली है। इसलिए आम जनताको हम तनिक भी प्रभावित नहीं कर सके हैं। हम लोगोंका प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, पर हम उसमें असफल सिद्ध होते हैं। वे किसी अंग्रेज अधिकारीको जितना जानते-पहचानते हैं, उससे अधिक हमें नहीं जानते-पहचानते। उनके दिलमें क्या है, इसे न अंग्रेज शासक जानते हैं, न हम लोग। उनकी आकांक्षायें हमारी आकांक्षायें नहीं हैं। इसलिए हमारा और उनका सम्बन्ध-सूत्र टूट-सा गया है। हम प्रजाका संघटन करनेमें असफल सिद्ध हुए हैं, यह बात सच नहीं है; सच बात यह है कि प्रतिनिधियोंमें और प्रजामें आपसका नाता ही नहीं है। अगर पिछले पचास वर्षोंमें हमें अपनी ही भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा मिली होती, तो हमारे बड़े-बूढ़े, घरके नौकर और पड़ोसी, सब हमारे उस ज्ञानमें हिस्सा लेते। बोस और राय जैसे वैज्ञानिकोंके आविष्कार रामायण और महाभारतकी तरह ही हरएक घरमें प्रवेश कर जाते। आज तो स्थिति ऐसी है कि जनताके लिए ये आविष्कार विदेशी वैज्ञानिकों द्वारा किये गये आविष्कारों जैसे ही हैं। यदि विविध पाठ्य-विषयोंकी शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा दी गई होती, तो मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि हमारी ये भाषाएं आश्चर्यजनक रूपसे समृद्ध बन गई होतीं, गांवोंकी स्वच्छता आदिके सवाल वर्षों पहले हल हो गये होते, ग्राम-पंचायतें जीवित शक्तिके रूपमें काम कर रही होतीं, भारतको जैसा स्वराज्य चाहिये वैसा स्वराज्य वह भोगता होता और उसे अपनी पुनीत भूमि पर संघटित हत्याका अपमानकारी दृश्य न देखना पड़ता। खैर, अभी भी अवसर है कि हम अपनी भूलें सुधार लें।

अब हम स्वदेशीकी अन्तिम शाखा पर विचार करें। यहां भी जनताकी अधिकांश गरीबीका कारण यह है कि आर्थिक और औद्योगिक जीवनमें हमने स्वदेशीके नियमका भंग किया है। अगर भारतमें व्यापारकी

कोई भी वस्तु विदेशोंसे न लाई गई होती, तो हमारी भूमिमें दूध और शहदकी नदियां बहती होतीं। लेकिन यह तो होना नहीं था। हमें लोभ था और इंग्लैंडको भी लोभ था। इंग्लैण्ड और भारतका सम्बन्ध स्पष्टतया गलती पर आधारित था। लेकिन यहां रहनेमें वह गलती नहीं कर रहा है। यहां रहनेमें उसकी घोषित नीति यह है कि वह भारतको अपनी सम्पत्ति नहीं मानता। वह उसे जनताकी धरोहरके रूपमें उसीके भलेके लिए अपने पास रख रहा है। अगर यह सही है तो लंकाशायरको भारतमें व्यापार करनेका लोभ छोड़ देना चाहिये। और यदि स्वदेशीका सिद्धान्त सही है, तो इसके कारण लंकाशायरकी कोई हानि नहीं होगी। अलवत्ता, शुरूमें कुछ समयके लिए उसे कुछ अटपटा-सा लगेगा। मैं स्वदेशीको बदला लेनेके लिए चलाया जानेवाला बहिष्कार-आन्दोलन नहीं मानता। मैं उसे ऐसा धार्मिक सिद्धान्त मानता हूं, जिसका पालन सब लोगोंको करना चाहिये। मैं अर्थशास्त्री नहीं हूं, लेकिन मैंने ऐसी कुछ कितावें पढ़ी हैं जिनमें बतलाया गया है कि इंग्लैण्ड आसानीसे अपनी सारी जरूरतें खुद पैदा करनेवाला आत्म-निर्भर देश बन सकता था। हो सकता है कि यह बात हास्यास्पद हो; और वह सच नहीं हो सकती, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इंग्लैण्ड दुनियाके उन देशोंमें है, जो बाहरसे सबसे ज्यादा माल आयात करते हैं। लेकिन जब तक भारत अपने जीवनका उत्तम निर्वाह करने योग्य नहीं हो जाता, तब तक उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह लंकाशायरके अथवा किसी दूसरे देशके लिए जिये। और वह अपने जीवनका उत्तम निर्वाह तभी कर सकता है जब वह — अपने प्रयत्नसे या दूसरोंकी मदद लेकर — अपनी आवश्यकताकी सारी वस्तुएं अपनी ही सीमामें उत्पंन्न करने लगे। उसे नाशकारी प्रतिस्पर्धाके उस चक्करमें नहीं पड़ना चाहिये, जो आपसी लड़ाई-झगड़ों, ईर्ष्या और अन्य अनेक बुराइयोंको जन्म देता है। लेकिन उसके बड़े सेठों और करोड़पतियोंको इस विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धामें पड़नेसे कौन रोकेगा? कानून तो निश्चय ही ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन लोकमतका बल और समुचित शिक्षा अवश्य इस दिशामें बहुत-कुछ कर सकती है। हाथ-करघा उद्योग लगभग मरनेकी स्थितिमें है। अपनी यात्राओंमें ...

जाय। नटाल एक ब्रिटिश उपनिवेश है, किन्तु उसन एक दूसरे ब्रिटिश उपनिवेश मारीशससे आनेवाली शक्कर पर काफी कर लगाया था और इस तरह अपनी शक्करकी रक्षा की थी। इंग्लण्डने भारत पर मुक्त व्यापारकी नीति लादकर भारतके प्रति वड़ा अन्याय किया है। यह नीति इंग्लैण्डके लिए आहारकी तरह पोपक सिद्ध हुई होगी, किन्तु भारतके लिए तो वह जहर ही साबित हुई है।

कहा जाता है कि भारत कमसे कम आर्थिक जीवनमें तो स्वदेशीके नियमका आचरण नहीं कर सकता। जो लोग यह दलील देते हैं वे स्वदेशीको जीवनके एक अनिवार्य सिद्धान्तके रूपमें नहीं मानते। उनके लिए वह महज देशसेवाका कार्य है, जो अगर उसमें ज्यादा आत्म-निग्रह करना पड़ता हो तो छोड़ा भी जा सकता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्वदेशी एक धार्मिक नियम है जिसका पालन उससे होनेवाले सारे शारीरिक कष्टोंके बावजूद भी होना ही चाहिये। स्वदेशीका सच्चा प्रेम हो तो सुई या पिन जैसी चीजोंका अभाव — क्योंकि वे भारतमें नहीं बनती हैं — भयका कारण नहीं होना चाहिये। स्वदेशीका व्रत लेने-वाला ऐसी सैकड़ों चीजोंके बिना ही अपना काम चलाना सीख लेगा, जिन्हें आज वह अपने लिए जरूरी समझता है। फिर यह बात भी तो है कि जो लोग स्वदेशीको असंभव कहकर टाल देना चाहते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि स्वदेशी आखिर एक आदर्श है जिसे सतत प्रयत्न द्वारा प्राप्त करना है। और यदि फिलहाल हम इस नियमको अमुक वस्तुओं तक ही मर्यादित रखें और जो वस्तुएं देशमें प्राप्य नहीं हैं उनका उपयोग जारी रखें, तो भी हम अपने आदर्शकी दिशामें बढ़ते रह सकते हैं।

अन्तमें मुझे स्वदेशीके खिलाफ उठाये जानेवाले एक अन्य आक्षेप पर और विचार करना है। आक्षेपकारोंका कहना है कि वह एक अत्यंत स्वार्थपूर्ण सिद्धान्त है और सभ्य जनोंकी मानी हुई नीतिमें उसे कोई स्थान नहीं हो सकता। वे समझते हैं कि स्वदेशीका पालन तो असभ्यताके युगकी ओर लौटने जैसा होगा। मैं यहां इस कथनका विस्तृत विश्लेपण नहीं कर सकता। किन्तु मैं यह कहूंगा कि नम्रता और प्रेमके नियमोंके साथ एकमात्र स्वदेशीका ही मेल बैठ सकता है। यदि मैं अपने परिवारकी

स्वदेशी धर्मको जाननेवाला और उसका पालन करनेवाला अपने कुएंमें डूब नहीं जायगा। जो वस्तु अपने देशमें नहीं बन सकती या बड़ी कठिनाईसे बन सकती है, उसे विदेशोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण यदि वह बनाने लगे, तो वह स्वदेशी धर्म नहीं होगा। स्वदेशी धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य विदेशियोंसे कभी द्वेष करेगा ही नहीं। अर्थात् पूर्ण स्वदेशी धर्ममें किसीके प्रति द्वेषकी गुंजाइश ही नहीं है। वह संकुचित नहीं, विशाल और उदार धर्म है। वह प्रेमसे, अहिंसासे उत्पन्न हुआ सुन्दर धर्म है। २

११

स्वावलम्बन और सहयोग

मेरी कल्पनाकी व्यवस्थाकी बुनियाद सत्य और अहिंसा है। हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि हमें समाज पर भार नहीं बनना चाहिये, अर्थात् हमें स्वावलम्बी होना चाहिये। इस दृष्टिसे स्वयं स्वावलम्बन एक प्रकारकी सेवा है। स्वावलम्बी बन जानेके पश्चात् हम अपना फालतू समय दूसरोंकी सेवामें लगायेंगे। अगर सब लोग स्वावलम्बी बन जायें, तो किसीको कष्ट नहीं होगा। ऐसी स्थितिमें किसीकी सेवा करनेकी जरूरत नहीं रहेगी। परन्तु हम अभी तक उस स्थितिमें नहीं पहुंचे हैं, इसलिए हमें समाज-सेवाका विचार करना पड़ता है। हम पूर्ण स्वावलम्बन प्राप्त करनेमें सफल हो जायं तो भी चूंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए हमें किसी न किसी रूपमें सेवा स्वीकार करनी होगी। अर्थात् मनुष्य जितना स्वावलम्बी है उतना ही वह परस्परावलम्बी है। जब समाजको सुव्यवस्थित रखनेके लिए परावलम्बन आवश्यक होता है तब वह परावलम्बन नहीं रह जाता, परन्तु सहयोग हो जाता है। सहयोगमें मिठास है। जो सहयोग करते हैं उनमें कोई सबल या कोई निर्बल नहीं होता। सब कोई समान होते हैं। परावलम्बनमें लाचारी महसूस होती है। किसी परिवारके लोग जितने परस्परावलम्बी होते हैं उतने ही स्वावलम्बी होते

हैं। मेरे-तेरेकी कोई भावना उनमें नहीं होती। सब सहयोगी होते हैं। इसी प्रकार जब हम समाज, राष्ट्र या सारी मानव-जातिको परिवार मान लेते हैं, तब भी सब मनुष्य सहयोगी बन जाते हैं। यदि हम ऐसे सहयोगके एक चित्रकी कल्पना कर सकें, तो हमें पता चलेगा कि निर्जीव यंत्रके सहारेकी हमें जरूरत नहीं है। यंत्रोंका अधिकसे अधिक उपयोग करनेके बजाय हम उनका कमसे कम उपयोग करके काम चला लेंगे; और उसीमें समाजकी सच्ची सुरक्षितता और आत्मरक्षा निहित है। १

मेरी स्वावलम्बनकी कल्पना इतनी ही है कि वस्त्र, अनाज आदि बुनियादी जरूरतोंको ग्रामवासी अपने यहाँ पैदा कर लें। इसीको हम स्वावलम्बन कहेंगे। लेकिन इसका भी अनर्थ होना सम्भव है। इसलिए इस चीजको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। स्वावलम्बनका अर्थ कूप-मण्डूकता नहीं है। स्वावलम्बी बननेका अर्थ पूर्णतया स्वयंपूर्ण बनना नहीं है। किसी भी हालतमें हम सभी चीजें पैदा कर भी नहीं सकते और न हमें करना है। हमको तो पूर्ण स्वावलम्बनके नजदीक पहुंचना है। जो चीजें हम पैदा नहीं कर सकते उन्हें पानेके लिए उनके बदलेमें देनेको हमें अपनी आवश्यकतासे अधिक चीजें पैदा करनी ही होंगी। २

आदर्श तो बेशक यही है कि हरएक परिवारकी जैसे अपनी जमीन होती है, वह अपना अन्न पैदा करता, पकाता और खाता है, ठीक वैसे ही वह अपनी रुई उगाये, सूत काते, उसे बुने और कपड़ा पहने। ३

अन्नके बारेमें मैं कहूंगा कि हमारे पास उपजाऊ जमीनकी कमी नहीं है, सिंचाईके लिए काफी पानी है और काम करनेके लिए काफी आदमी हैं। फिर अनाजकी कमी क्यों होनी चाहिये? . जनताको अपने आप पर निर्भर रहनेका पाठ पढाना चाहिये। एक बार जब लोग यह समझ लेंगे कि उन्हें अपने पांवों पर खड़े रहना है, तो सारे वातावरणमें एक बिजली-सी दौड़ जायगी।

हिन्दुस्तान अपनी जरूरतसे ज्यादा कपास पैदा करता है। लोगोंको खुद सूत कातना और उसका कपड़ा बुनना चाहिये। लोगोंको अपनी खादी खुद तैयार करनी चाहिये। एक बार लोग अपना अनाज और कपड़ा खुद उत्पन्न करने लगे कि उनका सारा दृष्टिकोण ही बदल जायगा। ४

स्वदेशी धर्मको जाननेवाला और उसका पालन करनेवाला अपन कुएंमें डूब नहीं जायगा। जो वस्तु अपने देशमें नहीं बन सकती या बड़ी कठिनाईसे बन सकती है, उसे विदेशोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण यदि वह बनाने लगे, तो वह स्वदेशी धर्म नहीं होगा। स्वदेशी धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य विदेशियोंसे कभी द्वेष करेगा ही नहीं। अर्थात् पूर्ण स्वदेशी धर्ममें किसीके प्रति द्वेषकी गुंजाइश ही नहीं है। वह संकुचित नहीं, विशाल और उदार धर्म है। वह प्रेमसे, अहिंसासे उत्पन्न हुआ सुन्दर धर्म है। २

११

स्वावलम्बन और सहयोग

मेरी कल्पनाकी व्यवस्थाकी बुनियाद सत्य और अहिंसा है। हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि हमें समाज पर भार नहीं बनना चाहिये, अर्थात् हमें स्वावलम्बी होना चाहिये। इस दृष्टिसे स्वयं स्वावलम्बन एक प्रकारकी सेवा है। स्वावलम्बी बन जानेके पश्चात् हम अपना फालतू समय दूसरोंकी सेवामें लगायेंगे। अगर सब लोग स्वावलम्बी बन जायें, तो किसीको कष्ट नहीं होगा। ऐसी स्थितिमें किसीकी सेवा करनेकी जरूरत नहीं रहेगी। परन्तु हम अभी तक उस स्थितिमें नहीं पहुंचे हैं, इसलिए हमें समाज-सेवाका विचार करना पड़ता है। हम पूर्ण स्वावलम्बन प्राप्त करनेमें सफल हो जायं तो भी चूंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए हमें किसी न किसी रूपमें सेवा स्वीकार करनी होगी। अर्थात् मनुष्य जितना स्वावलम्बी है उतना ही वह परस्परावलम्बी है। जब समाजको सुव्यवस्थित रखनेके लिए परावलम्बन आवश्यक होता है तब वह परावलम्बन नहीं रह जाता, परन्तु सहयोग हो जाता है। सहयोगमें मिठास है। जो सहयोग करते हैं उनमें कोई सबल या कोई निर्बल नहीं होता। सब कोई समान होते हैं। परावलम्बनमें लाचारी महसूस होती है। किसी परिवारके लोग जितने परस्परावलम्बी होते हैं उतने ही स्वावलम्बी होते

स्वयंपूर्णता एक वड़ा शब्द है। . . . अगर गांव अपनी प्राथमिक आवश्यकताओंके लिए स्वावलम्बी न वने और आपसी मतभेदों तथा वीमारियों वगैराके कारण उत्पन्न होनेवाली आन्तरिक अशान्तिसे और चोरों व लुटेरोंके वाहरी उपद्रवोंसे बचनेके लिए अपने पैरों पर खड़े न हुए, तो उनकी हस्ती खतरेमें पड़ जायगी, वे मिट जायंगे। अतएव स्वावलम्बनका मतलब तो यह है कि लोग कपाससे लेकर कपड़ा वनाने तककी सभी क्रियाएं सीख लें, अनाजकी मौसमी फसलें खड़ी करें और मवेशियोंके लिए घास-चारेका प्रबन्ध कर लें। अगर यह नहीं हुआ तो भूखों मरनेकी नौबत आयेगी। और अपने पैरों पर खड़े होनेका मतलब है लोग सामूहिक रूपसे संगठित हों, अपने आपसी झगड़ोंको गांवके समझदार आदमियोंकी पंचायतों द्वारा निपटानेका प्रवन्ध करें और गांवकी सफाई, आरोग्य और साधारण बीमारियोंके उपचारकी सामूहिक व्यवस्था कर लें। इसके लिए केवल व्यक्तिगत प्रयत्नोंसे काम नहीं चलेगा। और सबसे वड़ी वात तो यह है कि गांवोंको चोरों और डाकुओंसे सुरक्षित रखनेके लिए गांववालोंमें संयुक्त प्रयत्नों द्वारा आत्म-विश्वासकी भावना पैदा करनी होगी। सामुदायिक अहिंसा इसका सर्वोत्तम उपाय है। लेकिन यदि कार्यकर्ताओंको अहिंसाका मार्ग स्पष्ट न दिखाई पड़े, तो उन्हें हिंसा द्वारा सामूहिक आत्मरक्षाका संगठन करनेमें झिझकना नहीं चाहिये। ५

स्वयं कातनेवालों द्वारा या लगभग हर गांवमें कपास उत्पन्न किये विना स्वावलम्वी खादी कभी सफल नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि जहां तक स्वावलम्वी खादीका सम्वन्ध है कमसे कम वहां तक कपासकी खेतीको विकेन्द्रित किया जाय। इसके लिए जिन गांवोंकी सेवा की जाय उनकी जन-गणनाकी हमें जरूरत होगी। क्योंकि प्रत्येक कातने या वुननेवालेके पास (छोटासा भी) जमीनका ऐसा टुकड़ा नहीं है जहां वह कपास पैदा कर सके। स्वावलम्वी खादी ही एक ऐसी योजना है, जिसके लिए चरखा-संघका अस्तित्व उचित माना जा सकता है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें संघने किसी उल्लेखनीय पैमाने पर अभी तक कोई काम नहीं किया है। ६

ईश्वरकी सृष्टिका जो भाग हमारे निकटसे निकट हो और जिसे हम अधिकसे अधिक जानते हों, उसीकी हम ठीक सेवा कर सकते हैं। हम अपने निकटके पड़ोसीसे इसका आरंभ कर सकते हैं। हमें केवल अपना आंगन ही साफ करके संतोष न मान लेना चाहिये, बल्कि हमारे पड़ोसीका आंगन भी साफ रहे इसकी चिन्ता रखनी चाहिये। हम अपने परिवारकी सेवा करें, लेकिन परिवारके लिए गांवका नुकसान न होने दें। हमारा अपना सम्मान गांवके सम्मानमें ही समाया हुआ है। लेकिन हममें से हरएकको अपनी मर्यादा समझ लेनी चाहिये। जिस जगतमें हम रहते हैं उसके सम्बन्धमें अपने ज्ञानसे हमारी सेवाशक्तिकी मर्यादा अपने-आप बंध जाती है। लेकिन यह बात मैं सरलसे सरल भाषामें रखूं। हमें अपने निकटके पड़ोसीके बारेमें अधिक सोचना चाहिये और अपने बारेमें कम सोचना चाहिये। अपने आंगनका कूड़ा-कचरा पड़ोसीके आंगनमें डाल देना मानव-जातिकी सेवा नहीं बल्कि कुसेवा है। हम अपने पड़ोसीकी सेवासे ही आरंभ करें। ७

खेतीके बारेमें हमें इस बातका पूरा प्रयत्न करना होगा कि जमीनके और अधिक टुकड़े न होने पायें। गांवके लोगोंको हमें मिल-जुलकर सहयोगसे खेती करनेके लिए प्रोत्साहित करना होगा। ८

सहयोगसे गांव अपने लिए कपास पैदा कर सकता है। अगर ऐसा किया जाय तो यह समझना आसान है कि कीमत या टिकाऊपनमें इस तरह तैयार किये गये कपड़ेकी बराबरी कोई बाहरसे मंगाया गया कपड़ा नहीं कर सकता। इस प्रक्रियामें शक्तिका अधिकसे अधिक संचय होता है। ९

हम यह भी न भूल जायं कि पशुमें और मनुष्यमें यही भेद है कि मनुष्य सामाजिक प्रकृतिवाला प्राणी है। अगर उसे स्वाधीन होनेका विशेषाधिकार प्राप्त हुआ है, तो परस्पराधीन होना भी उसका कर्तव्य है। कोई अहंकारी मनुष्य ही सबसे स्वाधीन और स्वयंपूर्ण होनेका दावा कर सकता है। . . . हमारे गांवोंकी इस प्रकार पुनर्रचना करना संभव है, जिससे अलग अलग ग्रामवासी तो नहीं परन्तु समूचे गांव मिलकर अपनी कपड़ेकी जरूरतोंके मामलेमें आत्म-निर्भर हो जायं। १०

पिछले वर्ष (१९२५) मद्रासमें एक सहयोगी मण्डलके सामने भाषण देते हुए मैंने कहा था कि हाथ-कताईके द्वारा मैं संसारमें सबसे बड़ा सहयोगी मण्डल स्थापित करना चाहता हूं। मेरा यह दावा गलत नहीं है; उसमें महत्त्वाकांक्षा हो सकती है। यह दावा इसलिए गलत नहीं है कि यदि करोड़ों लोग इसमें सहयोग न करें, तो हाथ-कताईका जो उद्देश्य है वह सफल हो ही नहीं सकता।

किसी भी एक केन्द्रके कार्यको लें। मुख्य कार्यालयमें कातनेवालोंके लिए कपास इकट्ठा किया जाता है। शायद उसी मुख्य स्थान पर विनौले निकालनेवाले कपासमें से विनौले निकालते हैं। फिर वह धुनकोंको दिया जाता है, ताकि वे उसकी पूनियां बना दें। अब यह कपास कातनेवालोंमें बांटनेके लिए तैयार हो गया। वे प्रति सप्ताह अपना कता हुआ सूत लेकर आते हैं और बदलेमें नई पूनियां और अपनी मजदूरी ले जाते हैं। इस प्रकार जो सूत मिलता है वह जुलाहोंको बुननेके लिए दिया जाता है और वे उसकी खादी बुनकर बेचनेके लिए केन्द्रको लौटा देते हैं। यह खादी अब पहननेवालोंको — जनसमाजको बेच दी जाती है। इस प्रकार मुख्य कार्यालयको जात-पांत, रंग और धर्मका विचार किये बिना असंख्य मनुष्योंके साथ सदा जीवन्त सम्पर्कमें रहना पड़ता है। क्योंकि मुख्य कार्यालयको कोई नफा या ब्याज नहीं बांटना पड़ता है और न उसे भूखों और गरीबोंकी चिन्ताके सिवा किसी और बातकी चिन्ता करनी पड़ती है। मुख्य कार्यालयको उपयोगी बननेके लिए सब प्रकारसे शुद्ध रहना चाहिये। उसमें और इस बड़े संगठनके दूसरे अंगोंमें केवल शुद्ध आध्यात्मिक और नैतिक बन्धन ही होता है। इसलिए कताईका केन्द्र तो एक सहयोगी मण्डल है और उसके सदस्य हैं विनौले निकालनेवाले, रुई धुननेवाले, सूत कातनेवाले, कपड़ा बुननेवाले और खादी खरीदनेवाले। ये सब आपसकी सदिच्छा और सेवाभावके एक सामान्य बन्धनसे बंधे होते हैं। ११

सहकारी आन्दोलनकी सफलताका रहस्य यह है कि उसके सदस्य बहुत ईमानदार हों, वे सहकारी कामके लाभोंको समझते हों और उनके सामने एक निश्चित ध्येय हो। इसलिए सिर्फ थोड़ा रुपया इकट्ठा करके

और हिस्सों या शेयरों पर मनमाना ब्याज लेकर रुपया कमानेकी गरजसे सहकारी मण्डल खड़ा करना अच्छी बात नहीं, लेकिन सहकारी पद्धतिसे खेती करना या डेरी चलाना सचमुच एक अच्छी चीज है, जिससे देशकी तरक्की होगी। इसी तरहकी कई बातें की जा सकती हैं। मैं नहीं जानता कि . . . ये सब सोसाइटियां किस प्रकारकी हैं। क्या उनके पास ईमानदार इन्स्पेक्टर हैं, जो अपना काम ठीक तरह समझते हों? जहां प्रबन्ध करनेवाले ईमानदार नहीं थे और ध्येय भी स्पष्ट नहीं था, वहां इस प्रकारके आन्दोलनसे प्रायः नुकसान ही हुआ है। १२

१२

पंचायत राज

आजादीके पहले पंचायतें

पचायत हमारा बड़ा पुराना और सुन्दर शब्द है; उसके साथ प्राचीनताकी मिठास जुड़ी हुई है। उसका शाब्दिक अर्थ है गांवके लोगों द्वारा चुने हुए पाच आदमियोंकी सभा। यह शब्द उस पद्धतिका सूचक है, जिसके द्वारा भारतके असंख्य ग्राम-लोकराज्योंका शासन चलता था। लेकिन ब्रिटिश सरकारने महसूल वसूल करनेकी अपनी कठोर पद्धतिसे इन प्राचीन लोकराज्योंका लगभग नाश ही कर डाला है। वे इस महसूल-वसूलीके आघातको सह नहीं सके। अब कांग्रेस-जन गांवके बड़े-बूढ़ोंको दीवानी और फौजदारी न्यायकी सत्ता देकर इस पद्धतिको पुनर्जीवित करनेका अधूरा प्रयत्न कर रहे हैं। यह प्रयत्न पहले-पहल १९२१ में किया गया था, लेकिन वह असफल रहा। अब वह दुबारा किया जा रहा है। लेकिन अगर वह व्यवस्थित और सुन्दर ढगसे — मैं वैज्ञानिक तरीकेसे नहीं कहूंगा — नहीं किया गया तो फिर असफल रहेगा।

नैनीतालमें मुझे बताया गया कि संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की कुछ जगहोंमें स्त्रीके साथ होनेवाले बलात्कारके मामले भी तथाकथित पचायतें ही चलाती हैं। मैंने अज्ञान या पक्षपातवाली पंचायतों द्वारा

बन जाय। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय; या उनकी राजी-खुशीसे दी हुई मदद न ली जाय। खयाल है कि सब आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाजका हरएक आदमी यह जानता है कि उसे क्या चाहिये और इससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरीकी मेहनत करके भी दूसरोंको जो चीज नहीं मिलती है वह खुद भी किसीको नहीं लेनी चाहिये, वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दर्जेकी सभ्यतावाला होना चाहिये।

ऐसे समाजकी रचना स्वभावत: सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। मेरी राय है कि जब तक ईश्वर पर जीता-जागता विश्वास न हो, तब तक सत्य और अहिंसा पर चलना असंभव है। ईश्वर या खुदा वह जीती-जागती ताकत है, जिसमें दुनियाकी तमाम ताकतें समा जाती हैं। वह किसीका सहारा नहीं लेती और दुनियाकी दूसरी सब ताकतोंके खतम हो जाने पर भी कायम रहती है। इस जीती-जागती रोशनी पर, जिसने अपने दामनमें सब-कुछ लपेट रखा है, अगर मैं विश्वास न रखूं, तो मैं समझ न सकूंगा कि मैं आज किस तरह जिन्दा हूं।

ऐसा समाज अनगिनत गांवोंका बना होगा। उसका फैलाव एकके ऊपर एकके ढंग पर नहीं, बल्कि लहरोंकी तरह एकके बाद एककी शकलमें होगा। जिन्दगी मीनारकी शकलमें नहीं होगी, जहां ऊपरकी तंग चोटीको नीचेके चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्रकी लहरोंकी तरह जिन्दगी एकके बाद एक घेरेकी शकलमें होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गांवके खातिर मिटनेको तैयार रहेगा। गांव अपने आसपासके गांवोंके लिए मिटनेको तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगोंका बन जायगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपनेमें समुद्रकी उस शानको महसूस करते हैं, जिसके वे एक अभिन्न अंग हैं।

इसलिए सबसे बाहरका घेरा या दायरा अपनी ताकतका उपयोग भीतरवालोंको कुचलनेमें नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा

और उनसे ताकत पायेगा। मुझे ताना दिया जा सकता है कि यह सब तो खयाली तसवीर है, इसके बारेमें सोचकर वक्त क्यों बिगाड़ा जाय? युक्लिडकी परिभाषावाला बिन्दु कोई मनुष्य खींच नहीं सकता, फिर भी उसकी कीमत हमेशा रही है और रहेगी। इसी तरह मेरी इस तसवीरकी भी कीमत है। इसके लिए मनुष्य जिन्दा रह सकता है। इस तसवीरको पूरी तरह बनाना या पाना संभव नहीं है, तो भी इस सही तसवीरको पाना या इस तक पहुंचना हिन्दुस्तानकी जिन्दगीका मकसद होना चाहिये। जिस चीजको हम चाहते हैं उसकी सही सही तसवीर हमारे सामने होनी चाहिये। तभी हम उससे मिलती-जुलती कोई चीज पानेकी आशा रख सकते हैं। अगर हिन्दुस्तानके हरएक गांवमें कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तसवीरकी सचाई साबित कर सकूंगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिये कि न कोई पहला होगा, न आखिरी।

इस तसवीरमें हरएक धर्मकी अपनी पूरी और बराबरीकी जगह होगी। हम सब एक ही आलीशान पेड़के पत्ते हैं। इस पेड़की जड़ हिलाई नहीं जा सकती, क्योंकि वह पाताल तक पहुंची हुई है। जबरदस्तसे जबरदस्त आंधी भी उसे हिला नहीं सकती।

इस तसवीरमें उन मशीनोंके लिए कोई गुंजाइश न होगी, जो मनुष्यकी मेहनतकी जगह लेकर कुछ लोगोंके हाथोंमें सारी ताकत इकट्ठी कर देती हैं। सभ्य लोगोंकी दुनियामें मेहनतकी अपनी अनोखी जगह है। उसमें ऐसी मशीनोंकी गुंजाइश होगी, जो हर आदमीको उसके काममें मदद पहुंचायें। लेकिन मुझे कबूल करना चाहिये कि मैंने कभी बैठकर यह सोचा नहीं कि इस तरहकी मशीन कैसी हो सकती है। सिलाईकी सिंगर मशीनका खयाल मुझे आया था। लेकिन उसका जिक्र भी मैंने यों ही कर दिया था। अपनी इस तसवीरको पूर्ण बनानेके लिए मुझे उसकी जरूरत नहीं। २

तब हम क्या करें? अगर हम पंचायती राजका सपना पूरा करना चाहते हैं, लोकतंत्रकी स्थापना करना चाहते हैं, तो मानना होगा कि छोटेसे छोटा हिन्दुस्तानी बड़ेसे बड़े हिन्दुस्तानीके बराबर ही हिन्दुस्तानका शासक है।

इसके लिए उसे शुद्ध होना चाहिये। शुद्ध न हो तो शुद्ध बनना चाहिये। वह जैसा शुद्ध हो वैसा ही समझदार भी हो। वह जातिभेद और वर्ण-भेदको नहीं मानेगा। सबको अपने समान समझेगा। दूसरोंको अपने प्रेम-पाशमें बांधेगा। उसके लिए कोई अछूत नहीं होगा। उसी तरह मजदूर और महाजन दोनों उसके लिए समान होंगे। वह करोड़ों मजदूरोंकी तरह पसीनेकी रोटी कमाना जानेगा और कलम तथा कड़छीको एकसा समझेगा। इस शुभ अवसरको निकट लानेके लिए वह खुद भंगी बन जायगा। वह समझदार होगा, इसलिए अफीम या शराबको छुयेगा ही क्यों? स्वभावसे ही वह स्वदेशी-व्रतका पालन करेगा। अपनी पत्नीको छोड़कर वह सभी स्त्रियोंको उमरके अनुसार मां, बहन या लड़की मानेगा। किसी पर बुरी नजर नहीं डालेगा। मनमें भी बुरी भावना नहीं रखेगा। जो अधिकार उसका है वही अधिकार वह अपनी स्त्रीका भी समझेगा। समय आने पर वह खुद मरेगा। दूसरेको कभी नहीं मारेगा। और वह बहादुर ऐसा होगा कि गुरुओंके सिक्खोंकी तरह अकेला सवा लाखके सामने अड़ा रहेगा और एक कदम भी पीछे नहीं हटेगा। ऐसा हिन्दुस्तानी यह नहीं पूछेगा कि इस यत्नमें मुझे क्या भाग लेना है। ३

पंचायतके कर्तव्य

पुराने जमानेमें यूनान, चीन और अन्य दूरके देशोंसे प्रसिद्ध यात्री भारतमें आते थे। बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर वे हमारे देशमें ज्ञान पानेके लिए आते थे। उन्होंने लिखा है कि हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जहां कोई चोरी नहीं करता, कोई अपने दरवाजोंको ताला नहीं लगाता। लोग ईमानदार और उद्यमी हैं। सब लोग शराफतसे रहते हैं। यह बात करीब दो हजार वर्ष पुरानी है। उस समय सिर्फ चार जातियां थीं। आज तो इतनी हो गई कि क्या कहना। पंचायत-घर बनाकर आपने अपने पर बड़ी जिम्मेदारी ले ली है। इस पंचायतको आप सुशोभित करें। यहां आपसमें झगड़ा तो होना ही नहीं चाहिये। अगर झगड़ा हो तो पंच उसे निबटा दें। एक साल बाद मैं आपसे पूछूंगा कि आपके यहांसे कोई कोर्टमें गया था या नहीं। अगर कोई गया तो माना जायगा कि पंचायतने अपना काम अच्छी तरह नहीं किया। पंच परमेश्वरका काम

करते हैं। आपकी कोर्ट एक ही होनी चाहिये — वह है आपकी पचायत। इसमें खर्च एक कौड़ीका नही और काम शीघ्रतासे हो जाता है। ऐसा होने पर न तो पुलिसकी जरूरत होगी और न मिलिटरीकी।

पचायतको देखना है कि मवेशीको पूरा खाना मिलता है या नहीं। गाय आज पूरा दूध नही देती, क्योंकि उसे पूरा खाना नही मिलता। आज दरअसल हिन्दू गायको काटते है, मुसलमान या दूसरे कोई नही काटते। *हिन्दू गायको अच्छी तरह रखते नहीं और आहिस्ता आहिस्ता* उसका कत्ल करते हैं। यह ज्यादा बुरा है। गायको हिन्दुस्तानमें जितना कष्ट उठाना पड़ता है उतना और किसी देशमें नही उठाना पडता।

इसी तरह आज जमीनमें जितना अन्न पैदा होता है उससे दुगुना अन्न पैदा हो, यह देखना पचायतका काम है। जमीनमें ठीक ढगसे खाद देकर यह काम किया जा सकता है। मनुष्य और जानवरके मल और कचरेमें से सोनखाद तैयार हो सकती है, जिससे जमीनकी उपज बढ़ेगी।

तीसरा खयाल आपको यह रखना है कि क्या यहाके सब लोग स्वस्थ हैं, भीतर और बाहरसे स्वस्थ हैं। यहाके रास्तों पर धूल, गोबर और कचरा बिल्कुल नही होना चाहिये। मैं आशा करता हू कि यहा सिनेमा-घर होगा ही नही। सिनेमासे हम काफी बुराई सीख सकते हैं। कहते हैं कि सिनेमा शिक्षणका साधन बन सकता है। यह होगा तब होगा, लेकिन आज तो उससे बुराई ही हो रही है। आप देशी खेल-कूदको पसन्द करेंगे। मैं आशा करता हू कि आपके यहा शराब, गाजा, अफीम वगैरा नशीली चीजें नहीं होंगी। आप अपने यहासे छुआछूतका भूत निकाल फेंकेंगे। यहां हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई वगैरा सब सगे भाइयोंकी तरह रहेंगे। यह सब आप कर लेंगे तो आप सच्ची आजादीका नमूना पेश करेंगे। सारा हिन्दुस्तान आपके आदर्श गावको देखने आयेगा और उससे प्रेरणा लेगा। ४

१३

नई तालीम

१

आम तौर पर नई तालीमका अर्थ किया जाता है उद्योग द्वारा शिक्षा देना। लेकिन यह कुछ अंश तक ही ठीक है। नई तालीमकी जड़ इससे गहरी जाती है। उसका आधार है सत्य और अहिंसा। व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन, दोनोंमें ये दो ही उसके आधार हैं। विद्या वह है जो मुक्ति दिलानेवाली हो — 'सा विद्या या विमुक्तये।' झूठ और हिंसा तो बन्धनकारक हैं। उनका शिक्षामें कोई स्थान नहीं हो सकता। कोई धर्म यह नहीं सिखाता कि बच्चोंको असत्य और हिंसाकी शिक्षा दो। सच्ची शिक्षा हरएकको सुलभ होनी चाहिये। वह कुछ लाख शहरियोंके लिए ही नहीं, परन्तु करोड़ों देहातियोंके लिए उपयोगी होनी चाहिये। ऐसी शिक्षा कोरी पोथियोंसे थोड़े मिल सकती है। उसका साम्प्रदायिक धर्मसे भी कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। वह तो धर्मके उन विश्वव्यापी सिद्धान्तोंकी शिक्षा देती है, जिनमें से सब सम्प्रदायोंके धर्म निकले हैं। यह शिक्षा तो जीवनकी पुस्तकसे मिलती है। उसके लिए कुछ खर्च नहीं करना पड़ता और उसे ताकतके जोरसे कोई छीन नहीं सकता। १

मेरा मत है कि बुद्धिका सच्चा विकास हाथ, पैर, कान, नाक, आंख आदि अवयवोंके सदुपयोगसे ही हो सकता है, अर्थात् शरीरका ज्ञानपूर्वक उपयोग करते हुए बुद्धिका विकास सबसे अच्छा और जल्दीसे जल्दी होता है। इसमें भी यदि पारमार्थिक वृत्तिका मेल न हो, तो बुद्धिका विकास एक-तरफा होता है। पारमार्थिक वृत्ति हृदय अर्थात् आत्माका क्षेत्र है। अतः यह कहा जा सकता है कि बुद्धिके शुद्ध विकासके लिए आत्मा और शरीरका विकास साथ-साथ तथा एकसी गतिसे होना चाहिये। इसलिए अगर कोई यह कहे कि ये विकास एकके बाद एक हो सकते हैं, तो वह ऊपरकी विचारसरणीके अनुसार ठीक नहीं होगा।

हृदय, बुद्धि और शरीरके बीच मेल न होनेसे जो दुःसह परिणाम आया है वह प्रकट है, तो भी गलत आदतके कारण हम उसे देख नहीं सकते। गांवोंके लोगोंका पालन-पोषण पशुओंके बीच होनेके कारण वे मात्र शरीरका उपयोग यन्त्रकी भांति किया करते हैं, बुद्धिका उपयोग वे करते ही नहीं और उन्हें करना भी नहीं पड़ता। हृदयकी शिक्षा उनमें नहींके बराबर है। इसलिए उनका जीवन यों ही गुजर रहा है, जो किसी भी कामका नहीं रहा है। और दूसरी ओर आधुनिक कॉलेजों तककी शिक्षा पर जब नजर डालते हैं, तो वहां बुद्धिके विकासके नाम पर बुद्धिके विलासकी ही तालीम दी जाती है। लोग ऐसा समझते हैं कि बुद्धिके विकासके साथ शरीरका कोई मेल नहीं है। पर शरीरको कसरत तो चाहिये ही, इसलिए उपयोगरहित कसरतोंसे उसे निभानेका मिथ्या प्रयोग होता है। पर चारों ओरसे मुझे इस तरहके प्रमाण मिलते ही रहते हैं कि स्कूल-कॉलेजोंसे पास होकर जो विद्यार्थी निकलते हैं, वे मेहनत-मशक्कतके काममें मजदूरोंकी बराबरी नहीं कर सकते। जरासी मेहनत की कि उनका माथा दुखने लगता है और धूपमें घूमना पड़े तो उन्हें चक्कर आने लगते हैं। यह स्थिति 'स्वाभाविक' मानी जाती है। बिना जुते खेतमें जैसे घास उग आती है, उसी तरह हृदयकी वृत्तियां आप ही उगती और कुम्हलाती रहती हैं। और यह स्थिति दयनीय मानी जानेके बदले प्रशंसनीय मानी जाती है!!

इसके विपरीत यदि बचपनसे बालकोंके हृदयकी वृत्तियोंको ठीक तरहसे मोड़ा जाय, उन्हें खेती, चरखा आदि उपयोगी कामोंमें लगाया जाय और जिस उद्योग द्वारा उनका शरीर खूब कसा जा सके उस उद्योगकी उपयोगिता और उसमें काम आनेवाले औजारों वगैराकी बनावट आदिका ज्ञान उन्हें दिया जाय, तो उनकी बुद्धिका विकास सहज ही होता जाय और नित्य उसकी परीक्षा भी होती जाय। ऐसा करते हुए गणितशास्त्र आदिके जिस ज्ञानकी आवश्यकता हो वह उन्हें दिया जाय और आनन्दके लिए साहित्य आदिका ज्ञान भी देते जायं, तो तीनों वस्तुएं समतोल हो जायं और उनका कोई अंग अविकसित न रहे। मनुष्य न केवल बुद्धि है, न केवल शरीर है और न केवल हृदय या आत्मा है। तीनोंके एक

समान विकाससे ही मनुष्यका मनुष्यत्व सिद्ध होगा। इसीमें सच्चा अर्थ-शास्त्र है। २

अगर हम ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं, जो गांवोंकी आवश्यकताओंके लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो, तो विद्यापीठको हमें गांवोंमें ले जाना चाहिये। विद्यापीठको हमें एक प्रशिक्षण-शालामें परिणत कर देना चाहिये, जिससे कि हम ग्रामवासियोंकी आवश्यकताओंके अनुसार अध्यापकोंको शिक्षा दे सकें। शहरमें प्रशिक्षण-शाला रखकर उसके द्वारा ग्रामवासियोंकी आवश्यकताओंके अनुसार आप अध्यापकोंको तालीम नहीं दे सकते; न आप उन्हें गांवोंकी हालतमें दिलचस्पी लेनेवाले बना सकते हैं। शहरके लोगोंको गांवोंके प्रश्नोंमें दिलचस्पी लेने और वहां रहनेके लिए तैयार करना कोई आसान काम नहीं। सेगांवमें रोज ही मेरा यह मत दृढ़ होता जाता है। मैं आपको यह यकीन नहीं दिला सकता कि हम सेगांवमें रहकर ग्रामवासी बन गये हैं, या किसी सार्वजनिक हितमें हमने ग्रामवासियोंके साथ ऐक्य स्थापित कर लिया है।

प्राथमिक शिक्षाके बारेमें मेरा यह दृढ़ मत है कि वर्णमाला तथा वाचन और लेखनसे शिक्षाका आरम्भ करनेसे बालकोंकी बुद्धिका विकास कुंठित-सा हो जाता है। जब तक उन्हें इतिहास, भूगोल, जबानी गणित और कताईकी कलाका प्रारंभिक ज्ञान न हो जाय, तब तक मैं उन्हें वर्णमाला नहीं सिखाऊंगा। इन तीन चीजोंके द्वारा मैं उनकी बुद्धिको विकसित करूंगा। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि तकली या चरखेके द्वारा किस तरह बुद्धि विकसित की जा सकती है। अगर यह कला महज यंत्रकी तरह न सिखाई जाय, तो वह आश्चर्यजनक रीतिसे बुद्धिका विकास कर सकती है। जब आप बालकको हरएक क्रियाका ठीक-ठीक कारण समझायेंगे, जब आप उसे तकली या चरखेके हरएक कल-पुरजेके बारेमें बतायेंगे, जब आप उसे कपास और सभ्यताके साथ उसके सम्बन्धके इतिहासका ज्ञान देंगे और अपने साथ उसे गांवके कपासके खेतमें ले जायेंगे और जब आप उसे उसके काते हुए सूतकी समानता और मजबूती जाननेका तरीका या तार गिनना सिखायेंगे, तब आप उसका दिल तो कताईकी कलाकी तरफ आकर्षित करेंगे ही, साथ ही उसके हाथों, उसकी

लड़के जितनी तेज रफ्तारसे लिखेंगे, उससे भी अधिक तेज रफ्तारसे वे पढ़ने लगेंगे। और जब वे लिखना शुरू करेंगे तो भद्दी लकीरें नहीं खींचेंगे, जैसे कि मैं अब तक (शिक्षकोंकी कृपासे) खींचता रहता हूं; बल्कि जिस तरह वे अपनेको दिखाई देनेवाली दूसरी चीजोंकी ठीक शकलें खींच सकेंगे, उसी तरह अक्षरोंकी भी ठीक शकलें बना सकेंगे। अगर मेरे कयासके स्कूल कभी कायम हों, तो मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि वाचनके मामलेमें वे सबसे आगे बढ़े हुए स्कूलोंके साथ होड़ कर सकेंगे; और अगर यह आम खयाल हो कि लिखावट जैसी कि आजकल ज्यादातर मामलोंमें होती है वैसी गलत नहीं बल्कि सही तरीकेकी हो, तो लिखावटमें भी मेरे ये स्कूल आजके उन्नतसे उन्नत स्कूलकी बराबरी कर सकेंगे। ५

प्राथमिक शिक्षाका पाठ्यक्रम कमसे कम सात सालका हो। इसमें बच्चोंको इतना सामान्य ज्ञान मिल जाना चाहिये, जो उन्हें साधारणतया मैट्रिक तककी शिक्षामें मिल जाता है। इसमें अंग्रेजी नहीं रहेगी। उसकी जगह कोई एक अच्छा-सा उद्योग सिखाया जायगा।

लड़कों और लड़कियोंका सर्वतोमुखी विकास हो, इसलिए सारी शिक्षा जहां तक हो सके एक ऐसे उद्योग द्वारा दी जानी चाहिये, जिसमें कुछ उपार्जन भी हो। इसे यों भी कह सकते हैं कि इस उद्योग द्वारा दो हेतु सिद्ध होने चाहिये — एक तो विद्यार्थी उस उद्योगकी उपज और अपने श्रमसे अपनी पढ़ाईका खर्च अदा कर सकें, और दूसरे स्कूलमें सीखे हुए इस उद्योग द्वारा उस लड़के या लड़कीमें उन सभी गुणों और शक्तियोंका पूर्ण विकास हो जाय, जो एक पुरुष या स्त्रीके लिए आवश्यक हैं।

पाठशालाकी जमीन, इमारतों और दूसरे जरूरी सामानका खर्च विद्यार्थीके परिश्रमसे निकालनेकी कल्पना नहीं की गई है।

कपास, रेशम और उनकी बिनाईसे लेकर सफाई, (कपासकी) लुढ़ाई, पिंजाई, कताई, रंगाई, मांड लगाना, ताना लगाना, दोसूती (दुबटा) करना, डिजाइन (नमूने) बनाना तथा बुनाई आदि तमाम क्रियायें और कसीदा काढ़ना, सिलाई करना, कागज बनाना, कागज काटना, जिल्दसाजी करना,

आलमारी, फरनीचर वगैरा तैयार करना, खिलौने बनाना, गुड़ बनाना इत्यादि ऐसे निश्चित उद्योग हैं, जिन्हें आसानीसे सीखा जा सकता है और जिन्हें चलानेके लिए बहुत बड़ी पूंजीकी भी जरूरत नहीं होती।

इस प्रकारकी प्राथमिक शिक्षासे लड़के और लड़कियां इस लायक हो जाएं कि वे अपनी रोजी कमा सकें, इसके लिए यह जरूरी है कि जिन धंधोंकी शिक्षा उन्हें दी गई हो उनमें राज्य उन्हें काम दे। अथवा राज्य द्वारा निश्चित की गई कीमतों पर सरकार उनकी बनाई हुई चीजोंको खरीद लिया करे। ६

परन्तु समस्त राष्ट्रकी दृष्टिसे हम शिक्षामें इतने पिछड़े हुए हैं कि अगर शिक्षा-प्रचारके लिए हम केवल धन पर ही निर्भर रहेंगे, तो एक निश्चित समयके अन्दर राष्ट्रके प्रति अपने फर्जको अदा करनेकी आशा हम कभी कर ही नहीं सकते। इसलिए मैंने यह सुझानेका साहस किया है कि शिक्षाको हमें स्वावलम्बी बना देना चाहिये, फिर लोग भले ही मुझे यह कहें कि मेरे अन्दर किसी रचनात्मक कार्यकी योग्यता नहीं है। शिक्षासे मेरा मतलब है बच्चे या मनुष्यकी तमाम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंका सर्वतोमुखी विकास। अक्षर-ज्ञान न तो शिक्षाका आरंभ है और न अन्तिम लक्ष्य। वह तो उन अनेक उपायोंमें से एक है, जिनके द्वारा स्त्री-पुरुषोंको शिक्षित किया जा सकता है। फिर सिर्फ अक्षर-ज्ञानको शिक्षा कहना गलत है। इसलिए बच्चेकी शिक्षाका प्रारंभ मैं किसी दस्तकारीकी तालीमसे ही करूंगा और उसी क्षणसे उसे कुछ निर्माण करना सिखा दूंगा। इस प्रकार हरएक पाठशाला स्वावलम्बी हो सकती है। शर्त सिर्फ यह है कि इन पाठशालाओंकी बनी चीजें राज्य खरीद लिया करे।

मेरा मत है कि इस तरहकी शिक्षा-प्रणाली द्वारा ऊंचीसे ऊंची मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त की जा सकती है। सिर्फ एक बातकी जरूरत है। वह यह कि आजकी तरह प्रत्येक दस्तकारीकी केवल यांत्रिक क्रियाएं सिखा कर ही हम न रह जायं, बल्कि बच्चेको प्रत्येक क्रियाका कारण और पूर्ण विधि भी सिखा दिया करें। यह मैं आत्म-विश्वासके साथ कह रहा हूं, क्योंकि उसके मूलमें मेरा अपना अनुभव

है। जहां-जहां कार्यकर्ताओंको कताई सिखाई जाती है, वहां न्यूनाधिक पूर्णताके साथ इसी पद्धतिका अवलम्बन किया जाता है। मैंने खुद इसी पद्धतिसे चप्पल बनानेकी तथा कताईकी शिक्षा दी है और उसके परिणाम अच्छे आये हैं। इस पद्धतिमें इतिहास और भूगोलका बहिष्कार भी नहीं है। मैंने तो देखा है कि इस तरहकी साधारण और व्यावहारिक जानकारीकी बातें जबानी कहनेसे ही अधिक लाभ होता है। लिखने और पढ़नेसे बच्चा जितना नहीं सीखता, उससे दस गुनी अधिक जानकारी उसे इस पद्धति द्वारा दी जा सकती है। वर्णमाला (के चिह्नों) का ज्ञान बच्चेको बादमें भी दिया जा सकता है, जब बच्चा गेहूं और चोकरको पहचानने लग जाय और जब उसकी बुद्धि और रुचि कुछ विकसित हो जाय। यह प्रस्ताव क्रांतिकारी जरूर है; पर इसमें परिश्रमकी खूब बचत होती है और विद्यार्थी एक सालमें इतना सीख जाता है कि जिसके लिए साधारणतया उसे बहुत अधिक समय लग सकता है। फिर इस पद्धतिमें सब तरहसे किफायत ही किफायत है। हां, विद्यार्थीको गणितका ज्ञान तो दस्तकारी सीखते हुए अपने-आप ही होता रहता है।

प्राथमिक शिक्षा मेरी नजरमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है। उसकी मर्यादा मैंने यही कायम की है कि जितनी पढ़ाई मैट्रिक तक— अंग्रेजीको छोड़कर — होती है, उतनी ही इसमें हो जानी चाहिये। फर्ज कीजिये कि कॉलेजोंके पढ़े हुए और पढ़नेवाले सब लोग एकाएक अपनी सारी पढ़ाई भूल जायं, तो इन कुछ लाख लोगोंके स्मृतिनाशसे जितनी हानि हो सकती है वह उस हानिके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं है, जो उन ३०–३५ करोड़ लोगोंको अज्ञानके सागर जैसे महा अन्धकारके कारण अब तक हुई है और हो रही है। करोड़ों ग्रामवासियोंके अज्ञानकी थाह हम केवल निरक्षरतासे होनेवाली हानिसे कभी नहीं पा सकते।

कॉलेजकी शिक्षामें भी मैं जबरदस्त क्रान्ति कर देना चाहूंगा। उसे मैं राष्ट्रीय जरूरतोंके साथ जोड़ दूंगा। यंत्रों तथा ऐसी ही अन्य कला-कौशल सम्बन्धी निपुणताकी कुछ उपाधियां होंगी। वे भिन्न-भिन्न उद्योगोंसे संबंध रखेंगी और यही उद्योग अपने लिए आवश्यक विशारदोंको तैयार करनेका खर्च बरदाश्त करेंगे। जैसे, टाटा कंपनीसे यह अपेक्षा

की जायगी कि वह यंत्रकला-विशारदोंके लिए एक महाविद्यालय राज्यकी देखभालमें चलावे। इसी प्रकार मिलोंके लिए आवश्यक विशारद पैदा करनेके लिए एक कॉलेज मिल-मालिकोंका संघ चलावे। यही अन्य उद्योग भी करें। व्यापारियोंका भी अपना कॉलेज रहे। अब रह जाते हैं साधारण ज्ञान (आर्ट्स), आयुर्वेद और खेती। साधारण ज्ञानके कितने ही निजी कॉलेज आज भी स्वाश्रयी हैं ही। इसलिए राज्यको अपना कोई स्वतंत्र कॉलेज खोलनेकी जरूरत नहीं रहेगी। आयुर्वेद-संबंधी महाविद्यालय प्रमाणित औषधालयोंके साथ जोड़ दिये जायंगे, और चूंकि धनिक लोगोंको ये प्रिय होते ही हैं, इसलिए उनसे यह अपेक्षा जरूर की जा सकती है कि वे चन्दा करके इन विद्यालयोंको चलावें। अब रहे खेतीके विद्यालय। सो अगर इन्हें अपने नामकी लाज रखनी हो तो इन्हें भी स्वावलम्बी बनना ही पड़ेगा। मुझे इन विद्यालयोंमें शिक्षाप्राप्त कुछ उपाधिधारियोंका दुःखद अनुभव हुआ है। उनका ज्ञान छिछला होता है। उन्हें व्यावहारिक अनुभव नहीं होता। अगर उन्हें राष्ट्रकी जरूरतोंकी पूर्ति करनेवाले स्वावलम्बी खेतों पर काम सीखनेका मौका मिला होता, तो उन्हें उपाधि प्राप्त करनेके बाद और सो भी अपने मालिकोंके धन पर अनुभव प्राप्त करनेकी जरूरत हरगिज नहीं रहती। ७

अगर हमें जैसे चाहिए वैसे शिक्षक मिल जाय, तो हमारे बच्चे श्रमधर्मके गौरवको समझने लगेंगे और उसे वे अपने बौद्धिक विकासका साधन और महत्त्वपूर्ण अंग भी मानने लगेंगे। साथ ही वे यह भी अनुभव करने लगेंगे कि वे जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उसका मूल्य श्रमके रूपमें चुकाना भी एक प्रकारकी देशसेवा ही है। मेरे सुझावका आशय तो यह है कि हम बच्चोंको दस्तकारियोंकी शिक्षा महज इसलिए न दें कि वे कुछ उत्पादक काम करना सीखें, बल्कि इसलिए दें कि उसके द्वारा उनकी बुद्धिका विकास हो। सचमुच अगर राज्य ७ से १४ वर्षकी उम्रके अन्दरके बच्चोंको अपने हाथमें ले ले, उत्पादक श्रम द्वारा उनके मन और शरीरको विकसित करनेकी कोशिश करे और फिर भी यह शिक्षा स्वावलम्बी न हो सके, तो कहना होगा कि निश्चय ही वे पाठशालाएं ढगीके स्थान हैं और उनमें काम करनेवाले शिक्षक निरे मूर्ख हैं। ८

है। जहां-जहां कार्यकर्ताओंको कताई सिखाई जाती है, वहां न्यूनाधिक पूर्णताके साथ इसी पद्धतिका अवलम्बन किया जाता है। मैंने खुद इसी पद्धतिसे चप्पल बनानेकी तथा कताईकी शिक्षा दी है और उसके परिणाम अच्छे आये है। इस पद्धतिमें इतिहास और भूगोलका बहिष्कार भी नहीं है। मैंने तो देखा है कि इस तरहकी साधारण और व्यावहारिक जानकारीकी बातें जबानी कहनेसे ही अधिक लाभ होता है। लिखने और पढ़नेसे बच्चा जितना नहीं सीखता, उससे दस गुनी अधिक जानकारी उसे इस पद्धति द्वारा दी जा सकती है। वर्णमाला (के चिह्नों) का ज्ञान बच्चेको बादमें भी दिया जा सकता है, जब बच्चा गेहूं और चोकरको पहचानने लग जाय और जब उसकी बुद्धि और रुचि कुछ विकसित हो जाय। यह प्रस्ताव क्रांतिकारी जरूर है; पर इसमें परिश्रमकी खूब बचत होती है और विद्यार्थी एक सालमें इतना सीख जाता है कि जिसके लिए साधारणतया उसे बहुत अधिक समय लग सकता है। फिर इस पद्धतिमें सब तरहसे किफायत ही किफायत है। हां, विद्यार्थीको गणितका ज्ञान तो दस्तकारी सीखते हुए अपने-आप ही होता रहता है।

प्राथमिक शिक्षा मेरी नजरमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है। उसकी मर्यादा मैंने यही कायम की है कि जितनी पढ़ाई मैट्रिक तक — अंग्रेजीको छोड़कर — होती है, उतनी ही इसमें हो जानी चाहिये। फर्ज कीजिये कि कॉलेजोंके पढ़े हुए और पढ़नेवाले सब लोग एकाएक अपनी सारी पढ़ाई भूल जाय, तो इन कुछ लाख लोगोंके स्मृतिनाशसे जितनी हानि हो सकती है वह उस हानिके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं है, जो इन ३०–३५ करोड़ लोगोंको अज्ञानके सागर जैसे महा अन्धकारके कारण अब तक हुई है और हो रही है। करोड़ो ग्रामवासियोंके अज्ञानकी थाह हम केवल निरक्षरतासे होनेवाली हानिसे कभी नहीं पा सकते।

कॉलेजकी शिक्षामें भी मैं जबरदस्त क्रान्ति कर देना चाहूंगा। उसे मैं राष्ट्रीय जरूरतोंके साथ जोड़ दूंगा। यंत्रों तथा ऐसी ही अन्य इन्जीनियर सम्बन्धी निपुणताकी कुछ उपाधियां होंगी। वे भिन्न-भिन्न उद्योगोंसे संबंध रखेंगी और वही उद्योग अपने लिए आवश्यक स्नातकोंको तैयार करनेका सारा खर्च बरदाश्त करेंगे। जैसे, टाटा कम्पनीसे यह आशा

की जायगी कि वह यंत्रकला-विशारदोंके लिए एक महाविद्यालय राज्यकी देखभालमें चलावे। इसी प्रकार मिलोंके लिए आवश्यक विशारद पैदा करनेके लिए एक कॉलेज मिल-मालिकोंका संघ चलावे। यही अन्य उद्योग भी करें। व्यापारियोंका भी अपना कॉलेज रहे। अब रह जाते हैं साधारण ज्ञान (आर्ट्स), आयुर्वेद और खेती। साधारण ज्ञानके कितने ही निजी कॉलेज आज भी स्वाश्रयी हैं ही। इसलिए राज्यको अपना कोई स्वतंत्र कॉलेज खोलनेकी जरूरत नहीं रहेगी। आयुर्वेद-संबंधी महाविद्यालय प्रमाणित औषधालयोंके साथ जोड दिये जायगे, और चूंकि धनिक लोगोंको ये प्रिय होते ही हैं, इसलिए उनसे यह अपेक्षा जरूर की जा सकती है कि वे चन्दा करके इन विद्यालयोंको चलावें। अब रहे खेतीके विद्यालय। सो अगर इन्हें अपने नामकी लाज रखनी हो तो इन्हें भी स्वावलम्बी बनना ही पडेगा। मुझे इन विद्यालयोंमें शिक्षाप्राप्त कुछ उपाधिधारियोंका दुःखद अनुभव हुआ है। उनका ज्ञान छिछला होता है। उन्हें व्यावहारिक अनुभव नहीं होता। अगर उन्हें राष्ट्रकी जरूरतोंकी पूर्ति करनेवाले स्वावलम्बी खेतों पर काम सीखनेका मौका मिला होता, तो उन्हें उपाधि प्राप्त करनेके बाद और सो भी अपने मालिकोंके धन पर अनुभव प्राप्त करनेकी जरूरत हरगिज नहीं रहती। ७

अगर हमें जैसे चाहिये वैसे शिक्षक मिल जाय, तो हमारे बच्चे श्रमधर्मके गौरवको समझने लगेंगे और उसे वे अपने बौद्धिक विकासका साधन और महत्त्वपूर्ण अंग भी मानने लगेंगे। साथ ही वे यह भी अनुभव करने लगेंगे कि वे जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उसका मूल्य श्रमके रूपमें चुकाना भी एक प्रकारकी देशसेवा ही है। मेरे सुझावका आशय तो यह है कि हम बच्चोंको दस्तकारियोंकी शिक्षा महज इसलिए न दें कि वे कुछ उत्पादक काम करना सीखें, बल्कि इसलिए दें कि उसके द्वारा उनकी बुद्धिका विकास हो। सचमुच अगर राज्य ७ से १४ वर्षकी उम्रके अन्दरके बच्चोंको अपने हाथमें ले ले, उत्पादक श्रम द्वारा उनके मन और शरीरको विकसित करनेकी कोशिश करे और फिर भी यह शिक्षा स्वावलम्बी न हो सके, तो कहना होगा कि निश्चय ही वे पाठशालाएं रद्दीके स्थान हैं और उनमें काम करनेवाले शिक्षक निरे मूर्ख हैं। ८

अभी तक हमने अपने बच्चोंको शक्तिसंपन्न और उन्नत बनानेका खयाल किये बिना उनके दिमागोंमें किताबी बातें ठूंसनेमें ही अपनी सारी ताकत लगाई है। अब हमें इसे रोक देना चाहिये और ऊपरी कार्यकी तरह नहीं, बल्कि बौद्धिक शिक्षाके प्रधान साधनकी तरह हाथ-पैरके कामके जरिये बच्चोंको उचित रूपसे शिक्षा देनेमें अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिये। ९

मैं जिस तरहके स्कूलोंकी हिमायत करता हूं, उनमें तो लड़के हाई-स्कूलोंमें अंग्रेजीको छोड़कर जितना सीखते हैं वह सब सीखेंगे और उसके उपरान्त कवायद, संगीत, आलेखन और बेशक एकाध उद्योग भी सीखेंगे। १०

मैं मानता हूं कि शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त होनी ही चाहिये। पर बालकोंको उपयोगी उद्योग देकर उसके मारफत ही उनके मन और शरीरकी शिक्षा होनी चाहिये। मैं यहां भी पैसोंकी गिनती करता हूं, वह अनुचित नहीं है। अर्थशास्त्र नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकारका होता है। नैतिक अर्थशास्त्रमें दोनों बाजू बराबर होंगी। अनैतिकमें जिसकी लाठी उसकी भैंसका न्याय चलता है। इसका प्रमाण कितना हो, यह उसकी ताकत पर आधार रखता है। अनैतिक अर्थशास्त्र जैसे घातक है, वैसे ही नैतिक अर्थशास्त्र आवश्यक है। उसके बिना धर्मकी पहचान और उसका पालन मैं असंभव मानता हूं। ११

कौनसे उद्योग शहरोंमें सरलतापूर्वक सिखाये जा सकते हैं? मेरे पास तो उत्तर तैयार ही है। मैं जो चाहता हूं वह तो गांवकी ताकत है। आज गांव शहरोंके लिए जीते हैं, उन पर अपना आधार रखते हैं। यह अनर्थ है। शहर गांवों पर निर्भर रहें, अपने बलका सिंचन गांवोंसे करें अर्थात् अपने लिए गांवोंका बलिदान करनेके बजाय स्वयं गांवोंके लिए बलिदान और त्याग करें, तो अर्थ सिद्ध होगा और अर्थशास्त्र नैतिक बनेगा। ऐसे शुद्ध अर्थकी सिद्धिके लिए शहरोंके बालकोंके उद्योगका गांवोंके उद्योगोंके साथ सीधा संबंध होना चाहिये। ऐसा होनेके लिए मेरे खयालमें अभी तो पींजनसे लेकर कताई तकके उद्योग आते हैं। आज भी कुछ तो ऐसा होता ही है। गांव कपास देते हैं और मिलें उसमें से कपड़ा

बुनती है। इसमें शुरूसे आखिर तक अर्थका नाश किया जाता है। कपास जैसे-तैसे बोई जाती है, जैसे-तैसे चुनी जाती है और जैसे-तैसे साफ की जाती है। किसान इस कपासको कई बार नुकसान सहकर भी राक्षसी जिनोंमें बेचता है। वहां वह बिनौलेसे अलग होकर, दबकर, अधमरी बनकर मिलोंमें गाठोंके रूपमें जाती है। वहा उसे पीजा जाता है, काता जाता है और बुना जाता है। ये सब क्रियाएं इस तरह होती हैं कि कपासका तत्त्व — सार — तो जल जाता है और उसे निर्जीव बना दिया जाता है। मेरी भाषासे कोई द्वेष न करे। कपासमें जीव तो है ही। इस जीवके प्रति मनुष्य या तो कोमलतासे व्यवहार करे या राक्षसकी तरह। आजकलके व्यवहारको मैं राक्षसी व्यवहार मानता हू।

कपासकी कुछ क्रियाएं गावोंमें और शहरोंमें हो सकती हैं। ऐसा होनेसे शहरों और गावोंके बीचका सबंध नैतिक और शुद्ध होगा। दोनोंकी वृद्धि होगी और आजकी अव्यवस्था, भय, शका, द्वेष सब मिट जायगे या कम हो जायगे। गावोंका पुनरुद्धार होगा। इस कल्पनाका अमल करनेमें थोड़ेसे द्रव्यकी ही जरूरत है। वह आसानीसे मिल सकता है। विदेशी बुद्धि या विदेशी यत्रोंकी जरूरत ही नहीं रहती। देशकी भी अलौकिक बुद्धिकी जरूरत नहीं है। एक छोर पर भुखमरी और दूसरे छोर पर जो अमीरी चल रही है, वह मिटकर दोनोंका मेल सधेगा और विग्रह तथा खून-खराबीका जो भय हमको हमेशा डराता रहा है वह दूर होगा। पर बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाधे? बम्बई कॉरपोरेशनका हृदय मेरी कल्पनाकी तरफ किस प्रकार मुड़े? इसका जवाब मैं सेगावसे दू, इसके बजाय तो शहरके विचारसिक नागरिक ही ज्यादा अच्छी तरह दे सकते है। १२

अगर इस प्रकारकी शिक्षा बच्चोको दी जाय, तो परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलम्बी हो जायगी। लेकिन सफलताकी कसौटी उसका स्वाश्रयी रूप नही है, बल्कि यह देखकर सफलताका अन्दाज लगाना होगा कि वैज्ञानिक रीतिसे उद्योगकी शिक्षाके द्वारा बालकके भीतरके मनुष्यका सपूर्ण विकास हुआ है या नहीं। सचमुच मैं ऐसे अध्यापकको कभी नहीं रखूगा, जो चाहे जिन परिस्थितियोंमें शिक्षाको स्वाश्रयी बना

अभी तक हमने अपने बच्चोंको उत्तेजित और उन्नत बनानेका खयाल किये बिना उनके दिमागोंमें जानकारी ठूंसनेमें ही अपनी सारी ताकत लगाई है। अब हमें इसे रोक देना चाहिये और हाथके कामोंको गौण नहीं, बल्कि बौद्धिक शिक्षाके प्रधान साधनकी तरह हाथ-पैरके कामके जरिये बच्चोंको उचित ढंगसे शिक्षा देनेमें अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिये। ९

मैं जिस तरहके स्कूलोंकी हिमायत करता हूं, उनमें तो लड़के हाई-स्कूलोंमें अंग्रेजीको छोड़कर जितना सीखते हैं वह सब सीखेंगे और उसके उपरान्त कवायद, संगीत, आलेखन और बेशक एकाध उद्योग भी सीखेंगे। १०

मैं मानता हूं कि शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त होनी ही चाहिये। पर बालकोंको उपयोगी उद्योग देकर उसके मारफत ही उनके मन और शरीरकी शिक्षा होनी चाहिये। मैं यहां भी पैसोंकी गिनती करता हूं, वह अनुचित नहीं है। अर्थशास्त्र नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकारका होता है। नैतिक अर्थशास्त्रमें दोनों बाजू बराबर होंगी। अनैतिकमें जिसकी लाठी उसकी भैंसका न्याय चलता है। इसका प्रमाण कितना हो, यह उसकी ताकत पर आधार रखता है। अनैतिक अर्थशास्त्र जैसे घातक है, वैसे ही नैतिक अर्थशास्त्र आवश्यक है। उसके बिना धर्मकी पहचान और उसका पालन मैं असंभव मानता हूं। ११

कौनसे उद्योग शहरोंमें सरलतापूर्वक सिखाये जा सकते हैं? मेरे पास तो उत्तर तैयार ही है। मैं जो चाहता हूं वह तो गांवकी ताकत है। आज गांव शहरोंके लिए जीते हैं, उन पर अपना आधार रखते हैं। यह अनर्थ है। शहर गांवों पर निर्भर रहें, अपने बलका सिंचन गांवोंसे करें अर्थात् अपने लिए गांवोंका बलिदान करनेके बजाय स्वयं गांवोंके लिए बलिदान और त्याग करें, तो अर्थ सिद्ध होगा और अर्थशास्त्र नैतिक बनेगा। ऐसे शुद्ध अर्थकी सिद्धिके लिए शहरोंके बालकोंके उद्योगका गांवों-के उद्योगोंके साथ सीधा संबंध होना चाहिये। ऐसा होनेके लिए मेरे खयालमें अभी तो पींजनसे लेकर कताई तकके उद्योग आते हैं। आज भी कुछ तो ऐसा होता ही है। गांव कपास देते हैं और मिलें उसमें से कपड़ा

बुनती हूँ। इसमें शुरूसे आखिर तक अर्थका नाश किया जाता है। कपास जैसे-तैसे बोई जाती है, जैसे-तैसे चुनी जाती है और जैसे-तैसे साफ की जाती है। किसान इस कपासको कई बार नुकसान सहकर भी राक्षसी जिनोंमें बेचता है। वहा वह बिनौलेसे अलग होकर, दबकर, अधमरी बनकर मिलोंमें गाठोंके रूपमें जाती है। वहा उसे पीजा जाता है, काता जाता है और बुना जाता है। ये सब क्रियाए इस तरह होती हैं कि कपासका तत्त्व — सार — तो जल जाता है और उसे निर्जीव बना दिया जाता है। मेरी भाषासे कोई द्वेष न करे। कपासमें जीव तो है ही। इस जीवके प्रति मनुष्य या तो कोमलतासे व्यवहार करे या राक्षसकी तरह। आजकलके व्यवहारको मैं राक्षसी व्यवहार मानता हू।

कपासकी कुछ क्रियाएं गावोंमें और शहरोंमें हो सकती है। ऐसा होनेसे शहरों और गावोंके बीचका संबंध नैतिक और शुद्ध होगा। दोनोंकी वृद्धि होगी और आजकी अव्यवस्था, भय, शका, द्वेष सब मिट जायगे या कम हो जायगे। गांवोंका पुनरुद्धार होगा। इस कल्पनाका अमल करनेमें थोडेसे द्रव्यकी ही जरूरत है। वह आसानीसे मिल सकता है। विदेशी बुद्धि या विदेशी यंत्रोंकी जरूरत ही नही रहती। देशकी भी अलौकिक बुद्धिकी जरूरत नहीं है। एक छोर पर भुखमरी और दूसरे छोर पर जो अमीरी चल रही है, वह मिटकर दोनोंका मेल मवेगा और विग्रह तथा खून-खराबीका जो भय हमको हमेशा डराता रहा है वह दूर होगा। पर बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाधे? बम्बई कॉरपोरेशनका हृदय मेरी कल्पनाकी तरफ किस प्रकार मुडे? इसका जवाब मैं सेगावसे दू, इसके बजाय तो शहरके विचारसिक नागरिक ही ज्यादा अच्छी तरह दे सकते हैं। १२

अगर इस प्रकारकी शिक्षा बच्चोंको दी जाय, तो परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलम्बी हो जायगी। लेकिन सफलताकी कसौटी उसका स्वाश्रयी रूप नही है, बल्कि यह देखकर सफलताका अन्दाज लगाना होगा कि वैज्ञानिक रीतिसे उद्योगकी शिक्षाके द्वारा बालकके भीतरके मनुष्यका संपूर्ण विकास हुआ है या नहीं। सचमुच मैं ऐसे अध्यापकको कभी नहीं रखूगा, जो चाहे जिन परिस्थितियोंमें शिक्षाको स्वाश्रयी बना-

देनेका वचन देगा। शिक्षाका स्वावलम्बी बनना इस बातका तर्कसिद्ध परिणाम होगा कि विद्यार्थीने अपनी प्रत्येक कार्यशक्तिका ठीक-ठीक उपयोग करना सीख लिया है। अगर एक लड़का रोज तीन घंटे काम करके किसी दस्तकारीसे निश्चयपूर्वक अपनी जीविकाके लायक पैसा कमा लेता है, तो जो अपनी विकसित बुद्धि और आत्माको लगाकर उस कामको करेगा, वह कितना अधिक कमा लेगा! १३

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि यह बुनियादी तालीम देशके वातावरणमें से पैदा हुई है और देशकी जरूरतोंको पूरा कर सकती है। यह वातावरण हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोंमें और उनमें रहनेवाले करोड़ों लोगोंमें छाया हुआ है। उनको भुलाकर आप हिन्दुस्तानको भी भूल जायेंगे। सच्चा हिन्दुस्तान शहरोंमें नहीं बल्कि इन सात लाख गांवोंमें बसा हुआ है।

यहां हम बुनियादी तालीमके मुख्य सिद्धान्तों पर विचार करें:

१. पूरी शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानी, आखिरमें पूंजीको छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद निकालना चाहिये।

२. इसमें आखिरी दरजे तक हाथका पूरा-पूरा उपयोग किया जाय। यानी, विद्यार्थी अपने हाथोंसे कोई न कोई उद्योग-धंधा आखिरी दरजे तक करें।

३. सारी तालीम विद्यार्थियोंकी प्रान्तीय भाषा द्वारा दी जानी चाहिये।

४. इसमें साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षाके लिए कोई जगह नहीं होगी। लेकिन बुनियादी नैतिक तालीमके लिए काफी गुंजाइश होगी।

५. यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, स्त्रियां लें या पुरुष, विद्यार्थियोंके घरोंमें पहुंचेगी।

६. चूंकि इस तालीमको पानेवाले लाखों-करोड़ों विद्यार्थी अपने-आपको सारे हिन्दुस्तानके नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हें एक आंतर-प्रान्तीय भाषा सीखनी होगी। सारे देशकी यह एक

भाषा नागरी या उर्दूमें लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए विद्यार्थियोंको दोनों लिपियां अच्छी तरह सीखनी होंगी। १४

२

सारी शिक्षाका किसी भी बुनियादी उद्योगके साथ संबंध जोड़ना चाहिये। आप जब किसी उद्योगके द्वारा ७ या १० वर्षके बालकको ज्ञान देते हों, तब शुरुआतमें इस विषयके साथ जिनका मेल नहीं बैठाया जा सके, ऐसे सब विषय आपको छोड़ देने चाहिये। रोज-रोज ऐसा करनेसे शुरुआतमें छोड़ी हुई ऐसी बहुतसी वस्तुओंका अनुसंधान उद्योगके साथ जोड़नेके रास्ते आप ढूंढ निकालेंगे। इस तरह आप शुरूमें काम लेंगे, तो अपनी खुदकी और विद्यार्थियोंकी शक्ति आप बचा सकेंगे। आज तो हमारे पास आधार लेने लायक कोई पुस्तकें नहीं हैं, न हमें रास्ता दिखानेवाले पहलेके दृष्टांत ही मौजूद हैं। इसलिए हमें धीरे-धीरे चलना है। मुख्य बात यह है कि शिक्षकको अपने मनकी ताजगी बनाये रखना चाहिये। जिसका उद्योगके साथ मेल न बैठाया जा सके, ऐसा कोई विषय आने पर आप निराश न हों, खीज न उठें, बल्कि उसे छोड़ दें और जिसका मेल बैठा सकें उसे आगे चलायें। संभव है कि कोई दूसरा शिक्षक सही रास्ता ढूंढ निकाले और उस विषयका उद्योगके साथ कैसे मेल बैठ सकता है यह बता सके। और जब आप बहुतोंके अनुभवका संग्रह करेंगे, तो बादमें आपको रास्ता बतानेवाली पुस्तकें भी मिल जायेंगी, जिससे आपके पीछे आनेवालोंका काम अधिक सरल बन जायेगा।

क्या आप पूछेंगे कि जिन विषयोंका उद्योगके साथ मेल न बैठाया जा सके, उनको टालनेकी क्रिया कितने समय तक की जावे? तो मैं कहूंगा कि जिन्दगीभर। आखिरमें आप देखेंगे कि बहुतसी चीजें, जिन्हें आप पहले शिक्षाक्रममें से छोड़ चुके थे, उनका आपने उसमें समावेश कर लिया है; जितनी चीजोंका समावेश करने लायक था उन सबका समावेश हो चुका है और आपने आखिर तक जिनको निकम्मी समझकर छोड़ दिया था वे बहुत निर्जीव और छोड़ने लायक ही थीं। यह मेरा

जीवनका अनुभव है। मैंने यदि बहुतसी चीजें छोड़ न दी होतीं, तो मैं जो बहुतसी चीजें कर सका हूं वह नहीं कर सका होता।

हमारी शिक्षामें जड़मूलसे परिवर्तन होना ही चाहिये। दिमागको हाथ द्वारा शिक्षा मिलनी चाहिये। मैं कवि होता तो हाथकी पांच अंगुलियोंमें रही हुई अद्भुत शक्तिके बारेमें कविता लिख सकता। दिमाग ही सब कुछ है और हाथ-पैर कुछ नहीं, ऐसा आप क्यों मानते हैं? जो अपने हाथोंको शिक्षा नहीं देते, जो शिक्षाकी सामान्य 'प्रणाली या रूढ़ि' में से होकर निकलते हैं, उनका जीवन 'संगीत-शून्य' रह जाता है। उनकी सारी शक्तियोंका विकास नहीं होता। केवल पुस्तकीय ज्ञानमें बालकको इतना रस नहीं आता कि उसका सारा ध्यान उसीमें लगा रहे। दिमाग खाली शब्दोंसे थक जाता है और बच्चेका मन दूसरी जगह भटकने लगता है। हाथ न करनेके काम करते हैं, आंखें न देखनेकी चीजें देखती हैं, कान न सुननेकी बातें सुनते हैं और उनको क्रमशः जो कुछ करना, देखना और सुनना चाहिये उसे वे करते, देखते और सुनते नहीं हैं। उन्हें सही चुनाव करना नहीं सिखाया जाता। इससे उनकी शिक्षा कई बार उनका विनाश करनेवाली सिद्ध होती है। जो शिक्षा हमें अच्छे-बुरेका भेद करना और अच्छेको ग्रहण करना तथा बुरेको त्यागना नहीं सिखाती, वह शिक्षा सच्ची शिक्षा ही नहीं है।

स्कूलमें चलनेवाले सामान्य पाठ्यक्रममें एकाध उद्योग जोड़ देना, यह पुरानी कल्पना थी। अर्थात् उसमें हस्त-उद्योगको शिक्षासे बिलकुल अलग रखकर सिखलानेकी बात थी। मुझे यह एक गम्भीर भूल लगती है। शिक्षकको उद्योग सीख लेना चाहिये और अपने ज्ञानका अनुसंधान उस उद्योगके साथ करना चाहिये, जिससे वह अपने पसन्द किये हुए उद्योग द्वारा यह सारा ज्ञान विद्यार्थियोंको दे सके।

कताईका उदाहरण लीजिये। जब तक मुझे गणित नहीं आयेगा तब तक मैंने तकली पर कितने गज सूत काता या उसके कितने तार हुए या मेरे काते हुए सूतका अंक कितना है, यह मैं नहीं कह सकूंगा। इसे करनेके लिए मुझे आंकड़े सीखने चाहिये और जोड़, बाकी, गुणा व भाग भी सीखने चाहिये। अटपटे हिसाब गिननेमें मुझे अक्षरोंका इस्तेमाल

करना पड़ेगा। अतः इसमें से मैं अक्षर-गणित सीखूंगा। इसमें भी मैं रोमन अक्षरोंके बजाय हिन्दुस्तानी अक्षरोंके उपयोगका आग्रह रखूंगा।

फिर ज्यामिति लीजिये। तकलीकी चकतीसे अधिक अच्छा गोलाईका प्रदर्शन और क्या हो सकता है? इस प्रकार मैं युक्लिडका नाम लिये बिना ही विद्यार्थीको वर्तुल या गोलाईके बारेमें सब-कुछ सिखा सकता हूं।

फिर आप शायद पूछेंगे कि कताई द्वारा बालकको इतिहास-भूगोल किस तरह सिखाये जा सकते हैं? थोड़े समय पहले 'कपास — मनुष्यका इतिहास' (Cotton — The Story of Mankind) नामक पुस्तक मेरे देखनेमें आई थी। उसे पढ़नेसे मुझे बहुत आनन्द आया। वह एक उपन्यास जैसी लगी। उसके शुरूमें प्राचीन कालका इतिहास दिया गया था। फिर कपास पहले-पहल किस प्रकार और कब बोई गई, उसका विकास किस तरह हुआ, अलग-अलग देशोंके बीच रुईका व्यापार कैसे चलता है, आदि वस्तुओंका वर्णन था। अलग-अलग देशोंके नाम मैं बालकको सुनाऊंगा, साथ ही स्वाभाविक रीतिसे उन देशोंके इतिहास-भूगोलके बारेमें भी कुछ कहता जाऊंगा। अलग-अलग समयमें अलग-अलग व्यापारिक सन्धियां किस-किसके राज्यकालमें हुईं? कुछ देशोंमें बाहरसे रुई मंगानी पड़ती है और कुछमें कपड़ा बाहरसे मंगाना पड़ता है, उसका क्या कारण है? हरएक देश अपनी-अपनी जरूरतके मुताबिक रुई क्यों नहीं उगा सकता? यह चर्चा मुझे अर्थशास्त्र और कृषिशास्त्रके मूल तत्त्वों पर ले आयगी। कपासकी अलग-अलग जातियां कौनसी हैं, वे किस तरहकी जमीनमें उगती हैं, उन्हें कैसे उगाया जाय, वे कहांसे प्राप्त की जा सकती हैं, वगैरा जानकारी मैं विद्यार्थीको दूंगा। इस तरह तकली चलानेकी बात करते मैं ईस्ट इंडिया कंपनीके सारे इतिहास पर आऊंगा। यह कंपनी यहां कैसे आई, उसने हमारे कताई-उद्योगको किस तरह नष्ट किया, अंग्रेज आर्थिक उद्देश्यसे हमारे यहां आये और उसमें से राजनीतिक सत्ता जमानेकी लालसा वे कैसे रखने लगे; यह वस्तु मुगल और मराठोंके पतनका, अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाका और फिर वापस हमारे जमानेमें जनसमूहके उत्थानका कारण कैसे हुई, यह सब भी मुझे वर्णन करके बताना पड़ेगा। इस तरह इस नई योजनामें शिक्षा देनेकी अपार गुंजाइश है। और बालक यह सब

उसके दिमाग और शरीर-शक्ति पर अनावश्यक बोझ पड़े बिना ही कितना अधिक वह सीखेगा!

इस सम्बन्धमें मैं अधिक विस्तारसे समझाता हूं। जैसे किसी प्राणि-शास्त्रीको अच्छा प्राणिशास्त्री बननेके लिए प्राणिशास्त्रके अलावा दूसरे बहुतसे शास्त्र सीखने चाहिये, उसी प्रकार बुनियादी तालीमको यदि एक शास्त्र माना जाय तो वह हमें ज्ञानकी अनन्त शाखाओंमें ले जाता है। तकलीका ही विस्तृत उदाहरण लिया जाय, तो जो विद्यार्थी केवल कातनेकी यांत्रिक क्रिया पर ही अपना ध्यान एकाग्र नहीं करेगा (इस विषयमें तो बेशक वह निष्णात होगा ही), बल्कि उस वस्तुका तत्त्व ग्रहण करनेकी कोशिश करेगा, वह तकली और उसके अंग-उपांगोंका अभ्यास करेगा। तकलीकी चकती पीतलकी और सींक फौलादकी क्यों होती है, यह प्रश्न वह अपने मनसे पूछेगा। जो असली तकली थी, उसकी चकती चाहे जैसी बनाई जाती थी। उससे भी पहलेकी प्राचीन तकलीमें बांसकी सींक और स्लेट या मिट्टीकी चकती उपयोगमें ली जाती थी। अब तकली-का शास्त्रीय ढंगसे विकास हुआ है और जो चकती पीतलकी और सींक लोहेकी बनाई जाती है वह सकारण है। यह कारण विद्यार्थीको ढूंढ़ निकालना चाहिये। उसके बाद विद्यार्थीको यह भी जानना चाहिये कि इस चकतीका व्यास इतना ही क्यों रखा जाता है, कम-ज्यादा क्यों नहीं रखा जाता? इन प्रश्नोंका संतोषजनक हल ढूंढ़नेके बाद इस वस्तुका गणित जान लिया कि आपका विद्यार्थी अच्छा इंजीनियर बन जाता है। तकली उसकी कामधेनु बनती है। इसके द्वारा अपार ज्ञान दिया जा सकता है। आप जितनी शक्ति और श्रद्धासे काम करेंगे, उतना ज्ञान इसके द्वारा दे सकेंगे। आप यहां तीन सप्ताह रहे हैं। इतने समयमें इस योजनाके पीछे मर-मिटने तकको तैयार होनेकी श्रद्धा आप लोगोंमें आ गई हो, तो आपका यहां रहना सफल माना जायगा।

मैंने कताईका उदाहरण विस्तारसे बतलाया है, इसका कारण यह है कि मुझे उसका ज्ञान है। मैं बढ़ई होता तो मेरे बालकको ये सब बातें मैं बढ़ईगिरीके मारफत सिखाता अथवा कार्डबोर्डका काम करनेवाला होता तो उस कामके मारफत सिखाता।

हमें सच्ची जरूरत तो ऐसे शिक्षकोंकी है, जिनमें नया-नया सर्जन करनेकी और विचार करनेकी शक्ति हो, सच्चा उत्साह और जोश हो और रोज-रोज विद्यार्थीको क्या सिखायेंगे यह सोचनेकी शक्ति हो। शिक्षकको यह ज्ञान पुराने पोथोंमें से नहीं मिलेगा। उसे अपनी निरीक्षण और विचार करनेकी शक्तिका उपयोग करना है और हस्त-उद्योगकी मददसे वाणी द्वारा बालकको ज्ञान देना है। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा-पद्धतिमें क्रांति होनी चाहिये। शिक्षककी दृष्टिमें क्रांति होनी चाहिये। आज तक आप निरीक्षकों (इन्स्पेक्टरों) की रिपोर्टोंसे मार्गदर्शन पाते रहे हैं। आपने निरीक्षकको पसन्द आवे वैसा करनेकी इच्छा रखी है, ताकि आपकी संस्थाके लिए अधिक पैसे मिलें अथवा आपकी अपनी तनख्वाहमें बढ़ती हो। पर नया शिक्षक इस सबकी परवाह नहीं करेगा। वह तो कहेगा, 'मैं यदि अपने विद्यार्थीको अधिक अच्छा मनुष्य बनाऊं और वैसा करनेमें मेरी सब शक्ति लगा दूं, तो कहा जायगा कि मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया। मेरे लिए इतना ही काफी है।' १५

३

इस तालीमकी मंशा यह है कि गांवके बच्चोंको सुधार-संवार कर उन्हें गांवका आदर्श निवासी बनाया जाय। इसकी योजना खासकर उन्हींको ध्यानमें रखकर तैयार की गई है। इस योजनाकी असल प्रेरणा भी गांवोंसे ही मिली है। जो कांग्रेसजन स्वराज्यकी इमारतको बिलकुल उसकी नींव या बुनियादसे चुनना चाहते हैं, वे देशके बच्चोंकी उपेक्षा कर ही नहीं सकते। परदेशी हुकूमत चलानेवालोंने, अनजाने ही क्यों न हो, शिक्षाके क्षेत्रमें अपने कामकी शुरुआत बिना चूके बिलकुल छोटे बच्चोंसे की है। हमारे यहां जिसे प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है वह तो एक मजाक है; उसमें गांवोंमें बसनेवाले हिन्दुस्तानकी जरूरतों और मांगोंका जरा भी विचार नहीं किया गया है; और वैसे देखा जाय तो उसमें शहरोंका भी कोई विचार नहीं हुआ है। बुनियादी तालीम हिन्दुस्तानके तमाम बच्चोंको, फिर वे गांवोंके रहनेवाले हों या शहरोंके, हिन्दुस्तानके सभी श्रेष्ठ और स्थायी तत्त्वोंके साथ जोड़ देती है। यह तालीम बालकके

मन और शरीर दोनोंका विकास करती है; बालकको अपने वतनके साथ जोड़ रखती है; उसे अपने और देशके भविष्यका गौरवपूर्ण चित्र दिखाती है; और उस चित्रमें देखे हुए भविष्यके हिन्दुस्तानका निर्माण करनेमें बालक या बालिका अपने स्कूल जानेके दिनसे ही हाथ बंटाने लगे इसका प्रबन्ध करती है। १३

१४

खेती और पशुपालन – १

किसान

हमारे देहातियोंका गुजर खेती पर होता है और खेतीका गाय पर। मैं इस विषयमें अंधा-सा हूं। निजी अनुभव मुझे नहीं है। परन्तु ऐसा एक भी गांव नहीं है जहां खेती न हो और गाय न हो। भैंसें हैं, लेकिन वे कोंकण वगैराको छोड़कर खेतीके लिए अधिक उपयोगी नहीं हैं। तब भी भैंसका हमने बहिष्कार किया है, ऐसी बात नहीं है। इसलिए ग्राम्य पशुधनका, खासकर अपने गांवके पशुओंका, हमारे कार्यकर्ताको पूरा खयाल रखना होगा। इस बड़ी भारी समस्याको यदि हम हल न कर सके, तो हिन्दुस्तानकी बरबादी होनेवाली है और साथ-साथ हमारी भी। क्योंकि उस अवस्थामें हमारे सामने पश्चिमी देशोंकी तरह इन पशुओंको, आर्थिक दृष्टिसे उनके बोझरूप होने पर, कतल किये सिवा कोई चारा न रहेगा। १

प्रारंभसे ही मेरी यह दृढ़ श्रद्धा रही है कि इस देशके वासियोंके लिए खेती ही एकमात्र अटूट और अचल सहारा है। इसकी भी खोज हम करेंगे और देखेंगे कि इसके सहारे कहां तक जाया जा सकता है। यदि हमारे लोग खादीके बदले खेतीमें विशारद होकर लोगोंकी सेवा करेंगे, तो मुझे अफसोस न होगा। मैं इतना देख चुका हूं कि हमें बहुत कष्ट उठाना है। अब खेतीकी ओर ध्यान देनेका समय आ गया है। आज तक मैं

मानता रहा कि जब तक सरकारके अधिकार हमारे हाथोंमें नहीं आते, देहाती खेतीका सुधार असंभव है। अब मेरे इन विचारोंमें कुछ परिवर्तन हो रहा है। मैं यह महसूस करता हूं कि मौजूदा हालतमें भी हम कुछ हद तक सुधार कर सकते हैं। यदि यह ठीक है तो लगान वगैरा आसानीसे देकर भी जमीनके सहारे किसान अपने लिए कुछ प्राप्त कर सकेगा। जवाहरलाल कहता है कि खेती सुधारोंसे तब भी जब तक विदेशी सरकार हम पर है तब तक किसी न किसी बहाने या तरीकेसे यह किसानकी कमाई लूटती रहेगी। लेकिन अब मैं सोचने लगा हूं कि यदि ऐसा हो तब भी खेतीके ज्ञान और जानकारीका प्रचार करनेसे हम क्यों रुकें? फिर भले ही हमारा किया-कराया सरकार लूट ले। लूटेगी तो हम भी लड़ेंगे। लोगोंसे लड़नेको कहेंगे, सिखायेंगे। सरकारको बता देंगे कि तुम इस तरह हमें नहीं लूट सकते। इसलिए अब हमें ऐसे कार्यकर्ता खोजने होंगे, जिन्हें खेतीमें रस हो। २

इसलिए मैं यही सोचता हूं कि खेती, गोपालन और अन्य सब ग्रामीण उद्योगोंको किस तरह देहातोंमें फिरसे जगाऊं, जिससे लोगोंकी स्थिति अच्छी हो। यदि दो-चार देहातमें भी मैं यह कर सका, तो मेरी समस्या हल हो जायेगी। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे'। ३

जिसे अहिंसाका पालन करना है, सत्यकी आराधना करनी है, ब्रह्मचर्य-पालनको स्वाभाविक बनाना है, उसके लिए तो शरीर-श्रम राम-बाण हो जाता है। यह श्रम वास्तवमें देखा जाय तो खेतीसे ही सम्बन्ध रखता है। पर आदमी जो स्थिति है उसमें सब उसे नहीं कर सकते। इसलिए खेतीका आदर्श ध्यानमें रखकर आदमी बदलेमें दूसरा श्रम — जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी इत्यादि कर सकता है। ४

कई साल हुए, मैंने एक कविता पढ़ी थी, जिसमें किसानको दुनियाका पिता कहा गया है। अगर परमात्मा देनेवाला है, तो किसान उसका हाथ है। हम पर किसानका जो ऋण है, उसे चुकानेके लिए हम क्या करनेवाले हैं? अभी तक तो हम उसके गाढ़े पसीनेकी कमाई खाते रहे हैं। हमें खेतीसे काम शुरू करना चाहिये था, लेकिन हम ऐसा कर न सके। इस कसूरकी जिम्मेदारी कुछ हद तक मुझ पर है।

कुछ लोग कहते हैं कि जब तक राजनीतिक ताकत हमारे हाथमें न आ जाय तब तक खेतीमें कोई बुनियादी सुधार नहीं हो सकता। उनका स्वप्न है कि भाप और बिजलीका बड़े पैमाने पर उपयोग करके मशीनकी ताकतसे खेती की जाय। जल्दी जल्दी फसल लेनेके लालचमें जमीनके उपजाऊपनका व्यापार करना अन्तमें बरबाद कर देनेवाला सिद्ध होगा और वह सिर्फ संकुचित दृष्टिवाली नीति होगी। इसका नतीजा यह होगा कि जमीनका उपजाऊपन कम होता जायगा। अच्छी जमीनसे खुराक पैदा करनेके लिए पसीना बहानेकी जरूरत होती है।

लोग शायद इस दृष्टिकी टीका करें और कहें कि यह दृष्टि प्रगति-विरोधी है और इससे काम धीमा होगा। मैं भी इससे जल्दी कोई नतीजा निकलनेकी आशा नहीं रखता। फिर भी जमीन और उस पर रहने-वाले लोगोंकी समृद्धिकी कुंजी इसीमें है। स्वास्थ्य और शक्ति देनेवाली खुराक ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाका आधार है। किसानकी आमदनीका ज्यादा हिस्सा उसके और उसके परिवारके भोजन पर ही खर्च होता है। बाकी सब चीजें बादमें आती हैं। खेती करनेवालेको अच्छी खुराक दो। उसे ताजे और शुद्ध घी, दूध और तेल काफी मात्रामें मिलने चाहिये और अगर वह मांस खाता हो तो उसे मछली, अण्डे और गोश्त भी मिलना चाहिये। अगर उसे पेट भर पोषक खाना नहीं मिला, तो मिसालके तौर पर, उसके पास अच्छे कपड़े हुए भी तो क्या लाभ? इसके बाद पीनेके पानीकी व्यवस्था करनेका सवाल और दूसरे सवाल आयेंगे। इन सवालों पर विचार करते हुए कुदरती तौर पर ऐसी बातें भी निकल आयेंगी, जैसे ट्रेक्टरसे हल चलाने और मशीनसे जमीनको पानी देनेकी तुलनामें खेतीके अर्थशास्त्रमें बैलका क्या स्थान है। इस तरहसे एक एक बात करते करते ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाका पूरा चित्र उनके सामने उभर आयेगा। इस चित्रमें शहरोंका भी उचित स्थान होगा। आजकी तरह वे समाज-शरीर पर उठे हुए फोड़ों या गांठोंकी तरह अस्वाभाविक नहीं मालूम होंगे। आज यह खतरा बढ़ रहा है कि कहीं हम अपने हाथोंका उपयोग करना ही न भूल जायं। मिट्टी खोदने और जमीनकी देखभाल करनेकी बातको भूलना अपने-आपको भूलना है। अगर आप यह समझें

कि सिर्फ शहरोंकी सेवा करके आपने मनिपदका कर्तव्य पूरा कर दिया, तो आप इस बातको भूल जाते हैं कि हिन्दुस्तान असलमें सात लाख गावोंमें बसा हुआ है। अगर किसी आदमीने सारी दुनिया ले ली, लेकिन साथ ही अपनी आत्मा खो दी, तो उसने इस सौदेमें क्या पाया? ५

इन भारतीय किसानोंसे ज्यों ही आप बात करेंगे और वे आपसे बोलने लगेंगे, त्यों ही आप देखेंगे कि उनके होठोंसे ज्ञानका निर्झर बहता है। आप देखेंगे कि उनके अनगढ़ बाहरी रूपके पीछे आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञानका गहरा सरोवर भरा पड़ा है। मैं इसी चीजको संस्कृति कहता हूं। पश्चिममें आपको यह चीज नहीं मिलेगी। आप किसी यूरोपीय किसानसे बातचीत करके देखें, तो पायेंगे कि उसे आध्यात्मिक वस्तुओंमें कोई रस नहीं है। ६

भारतीय किसानमें फूहड़पनके बाहरी आवरणके पीछे युगों पुरानी संस्कृति छिपी पड़ी है। इस बाहरी आवरणको हम अलग कर दें, उसकी दीर्घकालीन गरीबी और निरक्षरताको हटा दें, तो हमें सुसंस्कृत, सभ्य और आजाद नागरिकका एक सुन्दरसे सुन्दर नमूना मिल जायगा। ७

हमें उन्हें यह सिखाना है कि वे समय, स्वास्थ्य और पैसेकी बचत कैसे कर सकते हैं। लिओनेल कर्टिसने हमारे गावोंका वर्णन करते हुए उन्हें 'घूरेके ढेर' कहा है। हमें उन्हें आदर्श गावोंमें बदलना है। हमारे ग्रामवासियोंको शुद्ध हवा नहीं मिलती, यद्यपि वे शुद्ध हवासे घिरे रहते हैं, उन्हें ताजा अन्न नहीं मिलता, यद्यपि उनके चारों ओर ताजेसे ताजा अन्न होता है। इस अन्नके मामलेमें मैं मिशनरीकी तरह इसलिए बोलता हूं कि मैं गावोंको एक सुन्दर दर्शनीय वस्तु बना देनेकी आकांक्षा रखता हूं। ८

हमें गावोंको अपने चंगुलमें जकड़ रखनेवाले जिस त्रिविध रोगका इलाज करना है, वह रोग इस प्रकार है: (१) सार्वजनिक स्वच्छताकी कमी, (२) पर्याप्त और पोषक आहारकी कमी, (३) ग्रामनिवासियोंकी जड़ता। . . . ग्रामवासी अपनी उन्नतिकी ओरसे उदासीन हैं। स्वच्छताके आधुनिक उपायोंको न तो वे समझते हैं और न उनकी कद्र करते हैं। अपने खेतोंको जोतने-बोने या जिस तरहका परिश्रम वे करते आये हैं

१५

खेती और पशुपालन – २

जमीनकी समस्या

जमीनकी मालिकी

किसान जमीनका नूर है। जमीन उसीकी है अथवा होनी चाहिये — न कि घर बैठकर खेती करानेवाले मालिक या जमींदारकी। १

जमीन और दूसरी सारी संपत्ति उस आदमीकी है, जो उसके लिए काम करता है। दुर्भाग्यसे मजदूर इस सीधी-सादी बातसे अनभिज्ञ हैं या उन्हें अनभिज्ञ रखा गया है। २

मैं मानता हूं कि जो जमीन आप जोतते हैं वह आपकी होनी चाहिये। लेकिन यह एक क्षणमें होनेवाली बात नहीं है। जमींदारोंसे आप उसे बलपूर्वक भी नहीं ले सकते। अहिंसा और आपकी अपनी शक्तिका भान ही इसका एकमात्र मार्ग है। ३

प्रतिष्ठित जीवनके लिए जितनी जमीनकी आवश्यकता है, उससे अधिक जमीन किसी आदमीके पास नहीं होनी चाहिये। ऐसा कौन है जो इस हकीकतसे इनकार कर सके कि आम जनताकी घोर गरीबीका कारण आज यही है कि उसके पास अपनी कही जानेवाली कोई जमीन नहीं है?

लेकिन यह याद रखना चाहिये कि इस तरहके सुधार तुरन्त नहीं किये जा सकते। अगर ये सुधार अहिंसात्मक तरीकोंसे करने हैं, तो जमींदार और गैर-जमींदार दोनोंको सुशिक्षित बनाना अनिवार्य हो जाता है। जमींदारोंको यह विश्वास दिलाना होगा कि उनके साथ कभी जोर-जबरदस्ती नहीं की जायगी और गैर-जमींदारोंको यह सिखाना और समझाना होगा कि उनकी मरजीके खिलाफ जबरन उनसे कोई काम नहीं ले सकता, और यह कि कष्ट-सहन या अहिंसाकी कलाको सीखकर वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। ४

जमीनोंके मालिक जितने आप हैं उतने ही किसान भी हैं; और आप अपनी आमदनीको ऐश-आराम या फिजूलखर्चीमें नहीं उड़ा सकते, बल्कि उसे आपको रैयतकी भलाईमें खर्च करना चाहिये। आप एक बार अपनी रैयतको आत्मीयताकी भावनाका अनुभव करा दें और यह महसूस करा दें कि एक ही परिवारके आदमियोंके नाते उनके हित आपके हाथोंमें सुरक्षित हैं और उन्हें कभी हानि नहीं पहुंचेगी, तो आप विश्वास रखिये कि उनमें और आपमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता और न वर्ग-विग्रह ही हो सकता है। ८

मैं जमींदारका नाश नहीं करना चाहता, लेकिन मुझे ऐसा भी नहीं लगता कि जमींदार हमारे लिए अनिवार्य है। मैं जमींदारों और दूसरे पूंजीपतियोंका अहिंसाके द्वारा हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूं और इसलिए वर्गयुद्धकी अनिवार्यता मैं स्वीकार नहीं करता। कम-से-कम संघर्षका रास्ता लेना मेरे लिए अहिंसाके प्रयोगका एक जरूरी अंग है। जमीन पर मेहनत करनेवाले किसान और मजदूर ज्यों ही अपनी ताकतको पहिचान लेंगे, त्यों ही जमींदारीकी बुराई दूर हो जायगी। अगर किसान-मजदूर यह कह दें कि उन्हें सभ्य समाजकी आवश्यकताओंके अनुसार अपने बच्चोंके भोजन, वस्त्र और शिक्षण आदिके लिए जब तक काफी मजदूरी नहीं दी जायगी, तब तक वे जमीनको जोतेंगे-बोयेंगे ही नहीं, तो जमींदार बेचारा कर ही क्या सकता है? सच तो यह है कि मेहनत करनेवाला जो कुछ पैदा करता है उसका मालिक वही है। अगर मेहनत करनेवाले बुद्धिपूर्वक एक हो जायं, तो वे एक ऐसी ताकत बन जायेंगे जिसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। और इसीलिए मैं वर्गयुद्धकी कोई जरूरत नहीं देखता। यदि मैं उसे अनिवार्य मानता, तो उसका प्रचार करनेमें और लोगोंको उसकी तालीम देनेमें मुझे कोई संकोच नहीं होता। ९

एक आदर्श जमींदार किसानका बहुत कुछ बोझा, जो वह अभी उठा रहा है, एकदम घटा देगा। वह किसानोंके गहरे संपर्कमें आयेगा और उनकी आवश्यकताओंको जानकर उस निराशाके स्थान पर, जो उनके प्राणोंको सुखाये डाल रही है, उनमें आशाका संचार करेगा। वह किसानोंमें पाये जानेवाले सफाई और तन्दुरुस्तीके नियमोंके अज्ञानको दर्शककी तरह

देखता नहीं रहेगा, बल्कि उस अज्ञानको दूर करेगा। किसानोंके जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिए वह स्वयं अपनेको दरिद्र बना लेगा। वह अपने किसानोंकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन करेगा और ऐसे स्कूल खोलेगा जिनमें किसानोंके बच्चोंके साथ साथ वह अपने खुदके बच्चोंको भी पढ़ायेगा। वह गांवके कुएं और तालाबको साफ करायेगा। वह किसानोंको अपनी सड़कें और अपने पाखाने खुद आवश्यक परिश्रम करके साफ करना सिखायेगा। वह किसानोंके मुक्त उपयोगके लिए अपने सारे बाग-बगीचे निःसंकोच भावसे खोल देगा। जो अनावश्यक इमारतें वह अपनी मौजके लिए रखता है, उनका उपयोग अस्पताल, स्कूल या ऐसी ही अन्य बातोंके लिए करेगा। यदि पूंजीपति-वर्ग कालका संकेत समझकर सम्पत्तिके बारेमें अपने इस विचारको बदल डाले कि उस पर उनका ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है, तो जो सात लाख घूरे आज गांव कहलाते हैं उन्हें आनन-फाननमें शान्ति, स्वास्थ्य और सुखके धाम बनाया जा सकता है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि पूंजीपति जापानके उमरावोंका अनुसरण करें, तो वे सचमुच कुछ खोयेंगे नहीं और सब-कुछ पायेंगे। केवल दो मार्ग हैं, जिनमें से उन्हें अपना चुनाव कर लेना है। एक तो यह कि पूंजीपति अपना अतिरिक्त संग्रह स्वेच्छासे छोड़ दें और उसके परिणामस्वरूप सबको वास्तविक सुख प्राप्त हो जाय। दूसरा यह कि अगर पूंजीपति समय रहते न चेतें तो करोड़ों जाग्रत किन्तु अज्ञान और भूखे लोग देशमें ऐसी अंधाधुंधी मचा दें, जिसे एक बलशाली हुकूमतकी फौजी ताकत भी नहीं मिटा सकती। १०

अच्छा हो यदि जमींदार समय रहते सावधान हो जाय। अब वे केवल लगान वसूल करनेवाले न रहें। उन्हें अपने काश्तकारोंके संरक्षक और विश्वस्त मित्र बन जाना चाहिये। उन्हें अपना निजी खर्च सीमित कर देना चाहिये। उन्हें वह अनुचित ऊपरी आय छोड़ देनी चाहिये, जो उन्हें काश्तकारोंसे शादी आदिके अवसरों पर जबरदस्तीकी भेंटोंके रूपमें मिलती है या एक किसानसे दूसरे किसानके हाथमें जमीन जाने पर या लगान न देनेके कारण बेदखली हो जानेके बाद उसी किसानको जमीन वापस मिलने पर नजरानेकी शकलमें होती है। उन्हें किसानोंको जमीनका

स्थायी अधिकार दे देना चाहिये, उनकी भलाईमें क्रियात्मक रस लेना चाहिये, उनके बच्चोंके लिए सुव्यवस्थित स्कूल, प्रौढ़ोंके लिए रात्रिशालाएं, बीमारोंके लिए अस्पताल और दवाखाने खोलने चाहिये, देहातकी सफाईकी देखभाल करनी चाहिये और विविध प्रकारसे उन्हें यह अनुभव कराना चाहिये कि जमींदार उनके हितैषी हैं और अपनी विभिन्न सेवाओंके लिए एक निश्चित कमीशन मात्र लेते हैं। सार यह कि उन्हें अपनी स्थितिको उचित सिद्ध कर दिखाना चाहिये। उन्हें कांग्रेसवालों पर भरोसा रखना चाहिये। वे स्वयं कांग्रेसी बन सकते हैं और जान सकते हैं कि कांग्रेस सरकार और लोगोंके बीच पुलका काम करती है। जिन लोगोंके दिलोंमें जनताकी सच्ची भलाईकी लगन है, वे सब कांग्रेसकी सेवा ले सकते हैं। उधर कांग्रेसजनोंको यह देखना चाहिये कि किसान जमींदारोंके प्रति अपने कर्तव्योंका पूरी तरह पालन करें। मेरा मतलब कानूनी कर्तव्योंसे ही नहीं बल्कि उन कर्तव्योंसे है, जिन्हें उन्होंने खुद उचित माना है। उन्हें यह सिद्धान्त अस्वीकार कर देना चाहिये कि उनकी जमीन बिलकुल उनकी अपनी ही है और जमींदारोंका उस पर कोई अधिकार नहीं। वे एक सम्मिलित परिवारके सदस्य हैं या उन्हें होना चाहिये—ऐसे सम्मिलित परिवारके, जिसमें जमींदार मुखियाकी तरह किसी भी तरहके आक्रमणके खिलाफ उनके अधिकारोंकी रक्षा करता है। कानून कुछ भी हो, जमींदारीका समर्थन तभी हो सकता है जब वह भरसक सम्मिलित परिवारकी स्थिति प्राप्त करे।

इस सम्बन्धमें राम और जनकका उदाहरण हमारा आदर्श होना चाहिये। लोगोंके विरुद्ध उनका अपना कुछ नहीं था। उनका सर्वस्व और वे स्वयं भी लोगोंके थे। वे उनके बीचमें ऐसा जीवन व्यतीत करते थे, जो उनके जीवनसे ऊपर नहीं था, परन्तु उनके जीवनके अनुरूप था। इस पर शायद यह आपत्ति उठाई जाय कि वे ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे। तब हम महान खलीफा उमरकी मिसाल लें। यद्यपि वे अपनी महान प्रतिभा और आश्चर्यजनक उद्योगसे पैदा किये हुए एक विशाल राज्यके बादशाह थे, फिर भी वे गरीबीका जीवन बिताते थे और जो विशाल खजाना उनके पैरोंमें पड़ा रहता था उसका अपनेको कभी मालिक नहीं

समझते थे। जो राजकर्मचारी जनताका धन ऐश-आराममें बर्बाद करते थे वे खलीफासे कांपते थे। ११

जमीदारोंसे मुझे इतना ही कहना है कि आपके खिलाफ जो शिकायतें की जाती हैं वे अगर सच हों, तो मुझे आपको सावधान कर देना चाहिये कि अब आपके दिन लद गये हैं। किसानोंके मालिक और ईश्वरके रूपमें आज तक आपने जो वर्चस्व भोगा, वह अब चालू रहनेवाला नहीं है। यदि गरीब किसानोंके आप ट्रस्टी बन जायें, तो आज भी आपका भविष्य उज्ज्वल है। ट्रस्टी शब्दका उपयोग मैं केवल नामधारी ट्रस्टी होनेके लिए नहीं कर रहा हूं, बल्कि सच्चे ट्रस्टी बननेके लिए कह रहा हूं। ऐसे ट्रस्टी अपने श्रम और संपत्तिके संरक्षणके बदलेमें मेहनतानेके रूपमें जितना लेनेका उन्हें अधिकार होगा उससे एक पाई भी अधिक नहीं लेंगे। ऐसे ट्रस्टी बन जानेके बाद वे देखेंगे कि किसी भी प्रकारका कानून उनका बाल बांका नहीं कर सकता। खुद किसान ही उनके मित्र बन जायेंगे। १२

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या वर्तमान राजाओं और दूसरे लोगोंसे गरीबोंके संरक्षक बननेकी आशा रखी जा सकती है? यदि वे अपने-आप ट्रस्टी नहीं बन जाते हैं, तो परिस्थितिका जोर जबरदस्ती उनसे यह सुधार करा लेगा। हां, वे संपूर्ण विनाशको आमंत्रित करें तो दूसरी बात है।

जब पंचायत राज्य स्थापित हो जायेगा तो लोकमत वह काम करेगा, जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमीदारों, पूंजीपतियों और राजाओंकी वर्तमान सत्ता तभी तक रह सकती है जब तक साधारण लोग अपनी ताकतको अच्छी तरह पहिचान नहीं लेते। यदि लोग जमींदारी या पूंजीवादकी बुराईके साथ असहयोग कर दें, तो वह निष्प्राण होकर मर जायेगी। पंचायत राज्यमें पंचायतकी ही बात मानी जायेगी और पंचायत अपने बनाये हुए कानूनके जरिये ही काम कर सकती है। १३

सच्चा समाजवाद तो हमें अपने पूर्वजोंसे प्राप्त हुआ है, जो हमें यह सिखा गये हैं कि 'सब भूमि गोपालकी है, इसमें कहीं मेरी और

तेरीकी सीमाएं नहीं हैं। ये सीमाएं तो मनुष्योंकी बनाई हुई हैं और इसलिए वे इन्हें तोड़ भी सकते हैं।' गोपाल यानी कृष्ण यानी भगवान। आधुनिक भाषामें गोपाल यानी राज्य यानी जनता। आज जमीन जनताकी नहीं है, यह बात सही है। पर इसमें दोष उस शिक्षाका नहीं है। दोष तो हमारा है जिन्होंने उस शिक्षाके अनुसार आचरण नहीं किया।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस आदर्शको जिस हद तक रूस या और कोई देश पहुंच सकता है उसी हद तक हम भी पहुंच सकते हैं; और वह भी हिंसाका आश्रय लिये बिना। पूंजीवालोंसे उनकी पूंजी हिंसापूर्वक छीनी जाय, इसके बजाय यदि चरखा और उसके सारे फलितार्थ स्वीकार कर लिये जायं तो वही काम हो सकता है। चरखा हिंसक अपहरणकी जगह ले सकनेवाला एक अत्यंत प्रभावकारी साधन है। जमीन और दूसरी सारी संपत्ति उसकी है, जो उसके लिए काम करे। दुःख इस बातका है कि किसान और मजदूर या तो इस सरल सत्यको जानते नहीं हैं या यों कहो कि उन्हें इसे जानने नहीं दिया गया है। १४

आनेवाले जमानेकी अहिंसक व्यवस्थामें जमीन राजकी मिल्कियत होगी। कहा नहीं गया है – 'सबै भूमि गोपालकी'? इस तरहके बंटवारेमें बुद्धि और श्रमका नाश नहीं होगा। हिंसक तरीकोंसे यह असम्भव है। इसलिए यह कहना सच है कि हिंसाके जरिये जमीनके मालिकोंका नाश कर दिया गया, तो अन्तमें मजदूरोंका नाश भी होगा ही। इसलिए अगर जमीनके मालिक बुद्धिमत्तासे काम लें, तो किसीका नुकसान नहीं होगा। १५

१६
खेती और पशुपालन — ३
सहकारिता

एक महत्वका प्रश्न यह था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक? मैंने यह राय दी कि सामुदायिक हुए बगैर गाय बच ही नहीं सकती, और इसलिए भैंस भी नहीं बच सकती। प्रत्येक किसान अपने घरमें गाय-बैल रखकर उनका पालन भलीभांति और शास्त्रीय पद्धतिसे नहीं कर सकता। गोवंशके ह्रासके अनेक कारणोंमें व्यक्तिगत गोपालन भी एक कारण रहा है। यह बोझ वैयक्तिक किसानकी शक्तिके बिलकुल बाहर है।

मैं तो यहां तक कहता हूं कि आज संसार हरएक काममें सामुदायिक रूपसे शक्तिका संगठन करनेकी ओर जा रहा है। इस संगठनका नाम सहयोग है। बहुतसी बातें आजकल सहयोगसे हो रही हैं। हमारे मुल्कमें भी सहयोग आया तो है, लेकिन वह ऐसे विकृत रूपमें आया है कि उसका सही लाभ हिन्दुस्तानके गरीबोंको बिलकुल नहीं मिलता।

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ किसानकी व्यक्तिगत जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसानके पास जितनी चाहिये उतनी जमीन नहीं है। जो है वह उसकी अड़चनोंको बढ़ानेवाली है। ऐसा किसान अपने घरमें या खेत पर गाय-बैल नहीं रख सकता। यदि रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादीको न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तानकी यही हालत है। धर्म, दया या नीतिकी परवाह न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तानमें लाखों पशु मनुष्यको खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ नहीं होने पर भी उन्हें खिलाना तो पड़ता ही है। इसलिए उन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो — ये हमें इन निकम्मे पशुओंको मारनेसे रोकते हैं।

इस हालतमें क्या किया जाये? यही कि जितना प्रयत्न पशुओंको जीवित रखने और उन्हें बोझ न बनने देनेका हो सकता है उतना किया जाय। इस प्रयत्नमें सहयोगका बड़ा महत्त्व है। सहयोग अथवा सामुदायिक पद्धतिसे पशु-पालन करनेसे :

१. जगह बचेगी। किसानको अपने घरमें पशु नहीं रखने पड़ेंगे। आज तो जिस घरमें किसान रहता है, उसीमें उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा बिगड़ती है और घरमें गंदगी रहती है। मनुष्य पशुके साथ एक ही घरमें रहनेके लिए पैदा नहीं किया गया है। ऐसा करनेमें न दया है, न ज्ञान।

२. पशुओंकी वृद्धि होने पर एक घरमें रहना असम्भव हो जाता है। इसलिए किसान बछड़ेको बेच डालता है और भैंसे या पाड़ेको मार डालता है, या मरनेके लिए छोड़ देता है। यह अधमता है। सहयोगसे यह रुकेगा।

३. जब पशु बीमार होता है तब व्यक्तिगत रूपसे किसान उसका शास्त्रीय उपचार नहीं करवा सकता। सहयोगसे ही चिकित्सा सुलभ होती है।

४. प्रत्येक किसान सांड़ नहीं रख सकता। सहयोगके आधार पर बहुतसे पशुओंके लिए एक अच्छा सांड़ रखना सरल है।

५. प्रत्येक किसान गोचर-भूमि तो ठीक, पशुओंके लिए व्यायामकी यानी हिरने-फिरनेकी भूमि भी नहीं छोड़ सकता। किन्तु सहयोग द्वारा ये दोनों सुविधाएं आसानीसे मिल सकती हैं।

६. व्यक्तिगत रूपमें किसानको घास इत्यादि पर बहुत खर्च करना पड़ता है। सहयोग द्वारा कम खर्चमें काम चल जायगा।

७. किसान व्यक्तिगत रूपमें अपना दूध आसानीसे नहीं बेच सकता। सहयोग द्वारा उसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूधमें पानी वगैरा मिलानेके लालचसे भी बच सकेगा।

८. व्यक्तिगत रूपमें किसानके लिए पशुओंकी परीक्षा करना असंभव है, किन्तु गांवभरके पशुओंकी परीक्षा सुलभ है। और उनकी नसलके सुधारका प्रश्न भी आसान हो जाता है।

९. सामुदायिक या सहयोगी पद्धतिके पक्षमें इतने कारण पर्याप्त होने चाहिये। परन्तु सबसे बड़ी और सचोट दलील तो यह है कि व्यक्तिगत पद्धतिके कारण ही हमारी और पशुओंकी दशा आज इतनी दयनीय हो उठी है। उसे बदल दें तो हम बच सकते हैं और पशुओंको भी बचा सकते हैं।

मेरा तो विश्वास है कि जब हम अपनी जमीनको सामुदायिक पद्धतिसे जोतेंगे, तभी उससे फायदा उठा सकेंगे। गांवकी खेती अलग-अलग सौ टुकड़ोंमें बंट जाय, इसके बनिस्बत क्या यह बेहतर नहीं होगा कि सौ कुटुम्ब सारे गांवकी खेती सहयोगसे करें और उसकी आमदनी आपसमें बांट लिया करें? और जो बात खेतीके लिए सच है, वह पशुओंके लिए भी सच है।

यह दूसरी बात है कि आज लोगोंको सहयोगकी पद्धति पर लानेमें कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामोंमें होती है। गोसेवाके सभी अंग कठिन हैं। कठिनाइयां दूर करनेसे ही सेवाका मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो मुझे इतना ही बताना था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है और यह कि वैयक्तिक पद्धति गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा भी सहयोगको स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक। १

'क्या किसान अपने खेतोंको एकसाथ मिला लें और अपने अपने खेतोंके क्षेत्रफलके हिसाबसे फसल आपसमें बांट लें?'

सहकारकी मेरी कल्पना यह है कि सब मालिक मिल-जुलकर जमीन पर अधिकार रखें और जोतने, बोने, फसल काटने वगैराका काम भी मिल-जुलकर ही करें। इससे मेहनत, पूंजी, औजार वगैराकी बचत होगी। मालिक मिल-जुलकर खेतोंमें काम करेंगे और पूंजी, औजार, जानवर और बीज वगैरा पर भी उनका मिला-जुला अधिकार होगा। मेरी कल्पनाकी सहकारी खेती जमीनकी शकल ही बदल देगी और लोगोंकी गरीबी और आलस्यको भगा देगी। यह सब तभी सम्भव होगा जब लोग एक-दूसरेके मित्र बन जायेंगे और एक परिवारके सदस्य बनकर रहने लगेंगे। जब

यह युगकी नयी खोज होगी तब सामाजिक प्रश्नका निपटारा मालूम होनेके लिए मिल जायगा। २

सहकारिताकी पद्धति किसानोंके लिए बहुत ज्यादा जरूरी है। जमीन सरकारकी है। इसलिए जब उसे सहकारिताके आधार पर जोता जायगा, तो उसमें ज्यादासे ज्यादा आमदनी होगी।

यह ध्यान रखना चाहिये कि सहकारिता पूरी तरह अहिंसाकी बुनियाद पर हो। हिंसामय सहकारिताकी सफलता जैसी कोई चीज है ही नहीं। हिटलर इस दूसरी बातका प्रत्यक्ष प्रमाण था। वह भी सहकारिताकी बेकार बातें किया करता था। उसे जबरन उसने लोगों पर लादा और हर कोई जानता है कि उसके फलस्वरूप जर्मनीकी कैसी दुर्गति हुई।

अगर हिन्दुस्तानने भी हिंसाके जरिये सहकारिताकी बुनियाद पर नया समाज खड़ा करनेकी कोशिश की, तो वह एक दुःखकी बात होगी। भले कामके लिए भी जबरदस्ती करनेसे मनुष्यका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। जब परिवर्तन अहिंसक असहयोगकी मनको मोड़ देनेवाली शक्ति यानी प्रेमसे किया जाता है तभी व्यक्तिके व्यक्तित्वकी नींव कायम रखी जा सकती है और दुनियाकी सच्ची, स्थायी प्रगतिका विश्वास हो सकता है। ३

१७

खेती और पशुपालन – ४

खाद

मिश्र खाद

मिश्र खादका प्रचार करनेके लिए मीराबहनकी प्रेरणा और उत्साहसे दिल्लीमें इस महीनेमें (दिसम्बर १९४७) एक सभा बुलाई गई थी। उसमें डॉ० राजेन्द्रप्रसाद सभापति थे। इस कामके विशारद सरदार दातारसिंह, डॉ० आचार्य वगैरा भी इकट्ठे हुए थे। उन्होंने तीन दिनके विचार-विनिमयके बाद कुछ महत्त्वके प्रस्ताव पास किये हैं। उनमें यह बताया गया है कि शहरोंमें और ७ लाख गांवोंमें इस बारेमें क्या करना चाहिये। शहरोंमें और देहातोंमें मनुष्यके और दूसरे जानवरोंके मलको कूड़े-कचरे, पौधों व कारखानोंमें से निकले हुए मैलके साथ मिलानेका सुझाव रखा गया है। इस विभागके लिए छोटीसी उपसमिति बनाई गई है, जिसके मेम्बर ये हैं: श्री मीराबहन, श्री शिवकुमार शर्मा, डॉ० बी० एन० लाल और डॉ० के० जी० जोशी।

अगर ये प्रस्ताव सिर्फ अखबारोंमें छपकर ही न रह जाय और करोड़ों इन पर अमल करें, तो हिन्दुस्तानकी शकल बदल जाय। हमारे अज्ञानके कारण जो करोडों रुपयोंकी खाद बरबाद हो रही है वह बच जाय, जमीन उपजाऊ बने और जितनी फसल आज पैदा होती है उससे कई गुनी ज्यादा फसल पैदा होने लगे। परिणाम यह होगा कि भुखमरी बिलकुल दूर हो जायगी। करोडोंका पेट भरनेके लिए अन्न मिलेगा और उसके बाद बाहर भी भेजा जा सकेगा।

भारतकी जनता इस प्रयत्नमें खुशीसे सहयोग करे, तो यह देश न सिर्फ अनाजकी कमीको पूरा कर सकता है, बल्कि हमें जितना चाहिये उससे कहीं ज्यादा अनाज पैदा कर सकता है। यह जीवित खाद (आरगेनिक मेन्युर) जमीनके उपजाऊपनको हमेशा बढ़ाती ही है, कभी कम नहीं

करती। हर दिन जो कूड़ा-कचरा इकट्ठा होता है उसे ठीक विधिके अनुसार गड्ढोंमें इकट्ठा किया जाय, तो उसकी सुनहली खाद बन जाती है; और तब उसे खेतकी जमीनमें मिला दिया जाय तो उससे अनाजकी उपज कई गुनी बढ़ जाती है और फलतः हमें करोड़ों रुपयोंकी बचत होती है। इसके सिवा, कूड़े-कचरेका इस तरह खाद बनानेके लिए उपयोग कर लिया जाय, तो आसपासकी जगह साफ रहती है। और स्वच्छता एक सद्गुण होनेके साथ साथ स्वास्थ्यकी पोषक भी है। १

हमारे यहां पूरा अनाज पैदा नहीं होता, क्योंकि हमारी जमीनको पूरी खाद नहीं मिलती। हम खाद बाहरसे लाते हैं। उससे रुपया बरबाद होता है। जमीन भी बिगड़ती है। लोग जानवरोंके मलको कचरेके साथ मिलाकर जब खाद बनाते हैं, तब पता नहीं चलता कि वह खाद है। उसे हाथमें ले लो तो बदबू नहीं आती। हम कचरेमें से करोड़ों रुपये बना सकते हैं और एक मनकी जगह दो मन, चार मन धान पैदा कर सकते हैं। २

खादके खड्डे

[गांवोंमें खादके खड्डे खोदनेकी जरूरतके बारेमें बताये गये श्री ब्रेनके सुझावोंके साथ आम तौरसे सहमत होते हुए, पर साथ ही उनकी इस रायसे असहमत होते हुए कि खादके खड्डे ६ फुट चौड़े और ६ फुट गहरे होने चाहिये, गांधीजीने लिखा :]

श्री ब्रेनने जैसे खड्डोंके लिए लिखा है वैसोंकी ही आम तौर पर सिफारिश की जाती है, यह मैं जानता हूं। पर मेरी रायमें श्री पूअरेने जो एक फुटके छिछले खड्डोंकी सिफारिश की है, वह अधिक वैज्ञानिक एवं लाभप्रद है। उसमें खुदाईकी मजदूरी कम होती है और खाद निकालनेकी मजदूरी या तो बिलकुल ही नहीं होती या बहुत थोड़ी होती है। फिर उस मैलेका खाद भी लगभग एक सप्ताहमें ही बन जाता है। क्योंकि जमीनकी सतहसे ६ से ९ इंच तककी गहराईमें रहनेवाले जंतुओं, हवा और सूर्यकी किरणोंका उस पर असर होता है, जिससे खड्डेमें दबाये जानेवाले मैलेके बनिस्बत कहीं अच्छी खाद तैयार हो जाती है।

लेकिन मैला ठिकाने लगानेके तरीके कितने ही प्रकारके क्यों न हों, याद रखनेकी मुख्य बात तो यह है कि सब मैलेको खड्डेमें गाड़ा जरूर जाय। इससे दुहरा लाभ होता है — एक तो ग्रामवासियोंकी तन्दुरुस्ती ठीक रहती है, दूसरे खड्डोंमें दबकर बना हुई खाद खेतोंमें डालनेसे फसलकी वृद्धि होकर उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती है। यह याद रखना चाहिये कि मैलेके अलावा जानवरोंके शरीरके अवयव आदि चीजें अलग गाड़ी जानी चाहिये। ३

मैलेकी खाद

-जी० आई० फाउलर नामके एक लेखकने 'सपत्ति तथा दुर्व्यय' (Wealth and Waste) नामकी एक अंग्रेजी पुस्तकमें लिखा है कि मनुष्यका मैला अच्छी तरह ठिकाने लगाया जाय, तो एक मनुष्यके मैलेसे हर साल २ रु० की आय हो सकती है। अनेक जगहोंमें तो आज सोने जैसी खाद यों ही पड़ी-पड़ी नष्ट हो जाती है और उलटे उससे बीमारियां फैलती हैं। उक्त लेखकने प्रोफेसर ब्रूलटीनीकी 'कूड़े-कचरेका उपयोग' (The Use of Waste Materials) नामक पुस्तकमें जो उद्धरण दिया है, उसमें कहा गया है कि 'दिल्लीमें रहनेवाले २,८२,००० मनुष्योंके मैलेमें जो नाइट्रोजन पैदा होता है, उससे कमसे कम १० हजार और अधिकसे अधिक ९५ हजार एकड़ जमीनको पर्याप्त खाद मिल सकती है।' परन्तु हमने अपने भंगियोंके साथ अच्छी तरह बरताव करना नहीं सीखा है, इससे प्राचीन कीर्तिवाली दिल्ली नगरीमें भी आज ऐसे ऐसे नरक-कुण्ड देखनेमें आते हैं कि हमें अपना सिर शर्मसे नीचा कर लेना पड़ता है। अगर हम सब भंगी बन जाय, तो हमें यह मालूम हो जायगा कि हमें खुद अपने प्रति कैसा बरताव करना चाहिये, और यह भी ज्ञान हो जायगा कि आज जो चीज जहरका काम कर रही है, उसे हम पेड़-पौधोंके लिए किस प्रकार उत्तम खादमें परिणत कर सकते हैं। अगर हम मनुष्यके मलका सदुपयोग करें, तो डॉक्टर फाउलरके हिसाबके अनुसार भारतकी ३० करोड़की आबादीसे सालमें ६० करोड़ रुपयेका लाभ हो सकता है। ४

मिश्र खाद बनानेकी पद्धति

[इन्दौरमें 'इन्स्टिट्यूट ऑफ प्लान्ट इन्डस्ट्री' नामकी एक वैज्ञानिक संस्था है। जिसकी सेवा करनेके लिए यह कायम की गई है, उनके लिए यह समय समय पर पत्रिकाएं निकालती है। इनमें से पहली पत्रिका खेतकी बेकार समझी जानेवाली चीजोंसे कंपोस्ट (मिश्र खाद) बनानेके तरीकों और उनके फायदोंका वर्णन करती है। गोबर और मैला उठाने, साफ करने या ऐसा ही काम करनेवाले हरिजनों और ग्रामसेवकोंके लिए यह बहुत उपयोगी है। इसलिए मैं कंपोस्ट बनानेकी प्रक्रियाके वर्णनके साथ उसके फुटनोटोंको भी छोड़कर लगभग पूरी पत्रिकाकी नकल नीचे देता हूं।

—मो० क० गांधी]

बहुत लम्बे समयसे यह बात समझ ली गई है कि हिन्दुस्तानकी मिट्टियोंमें उचित और व्यवस्थित ढंगसे प्राणिज तत्त्वोंकी कमी पूरी करना या उन्हें फिरसे पैदा करना खेतीकी पैदावारको बढ़ानेकी किसी भी सफल योजनाका एक जरूरी अंग है। यह भी उतनी ही अच्छी तरह समझ लिया गया है कि खलिहानोंमें तैयार की जानेवाली खादके मौजूदा साधन खादकी जरूरी मात्रा पूरी नहीं कर सकते। इसके अलावा, यह बात तो है ही कि इस खादके तैयार होनेमें नाइट्रोजनका बड़ा हिस्सा बरबाद हो जाता है और इस खादके ज्यादासे ज्यादा गुणकारी बननेमें बहुत लम्बा समय लग जाता है। हरी खाद शायद इसकी जगह ले सकती है, लेकिन मौसमी हवा (monsoon) की अनिश्चितताके कारण हिन्दुस्तानके ज्यादातर हिस्सोंमें उसका मिलना अनिश्चित ही रहता है। हरी खादका मिट्टीमें गलना या सड़ना भी कुछ समयके लिए पौधोंके भोजनकी कमी पूरी करनेकी कुदरती प्रक्रियामें रुकावट डालता है, जो उष्ण कटिबन्धके प्रदेशोंमें जमीनके उपजाऊपनको कायम रखनेमें बड़े महत्त्वका काम करती है। साफ है कि जमीनको ह्यूमस तैयार करनेके बोझसे मुक्त करके उसे जैव तत्त्वोंकी कमी पूरी करने और फसलको बढ़ानेके काममें ही लगे रहने देना सबसे अच्छा मार्ग है। इसका सबसे आसान तरीका यह है कि खेतका काम

फुटका खड्डा वनानेके लिए एक फुट मिट्टी खोदकर किनारों पर फैला दीजिय; ऐसे खड्डे दो दोकी जोड़में खोदे जायं। उनकी लम्वाई पूर्वसे पश्चिमकी ओर रहे। एक जोड़के दो खड्डोंके वीच ६ फुटकी दूरी रहे और ऐसी हर जोड़ एक-दूसरेसे १२ फुट दूर रहे। तैयार कम्पोस्टके ढेर और वारिशमें लगाये जानेवाले ढेर इन चौड़ी जगहों पर किय जाते हैं, जो हरएक ढेरसे सीधे गाड़ीमें खाद भर कर ले जानेके लिए भी उपयोगी होती हैं।

मिट्टी और पेशाव

ढोरोंके पेशावमें कीमती खादके तत्त्व होते हैं और खलिहानकी खाद वनानेकी सामान्य पद्धतिमें वे ज्यादातर वरवाद ही होते हैं। गोठानमें पक्का फर्श वनाना खर्चीला होता है और वैलोंके लिए वह अच्छा नहीं होता। ढोरोंके उठने-बैठने और सोनेके लिए खुली मिट्टीका मुलायम, गरम और सूखा विछौना सस्तेमें वनाया जा सकता है। मिट्टीकी ६ इंचकी परत गन्दगी फैलाये विना ढोरोंकी सारी पेशाव सोखनेके लिए काफी होगी, वशर्ते कि ज्यादा गीले हिस्से रोज साफ कर दिये जायं, उन पर थोड़ी नई मिट्टी डाल दी जाय और मिट्टी पर थोड़ा न खाया हुआ घास विछा दिया जाय। हर चार महीनेमें यह पेशाववाली मिट्टी हटा दी जाय और उसकी जगह नई मिट्टी डाली जाय। उसका ज्यादा अच्छा हिस्सा कम्पोस्ट वनानेके लिए रख लिया जाय और ज्यादा वड़े ढेले सीधे खेतोंमें डाल दिये जायं। यह वड़ी जल्दी काम करनेवाली खाद होती है, जो खास तौर पर सिंचाईकी फसलको ऊपरसे दी जाती है। ५

गोवर और राख

रोज मिल सकनेवाले गोवरका सिर्फ एक-चौथाई हिस्सा ही जरूरी है; इसे पानीमें मिलाकर प्रवाहीके रूपमें छिड़का जाता है। जरूरत हो तो वचे हुए गोवरको ईंधनकी तरह काममें लिया जा सकता है। रसोई-घर और दूसरी जगहोंसे लकड़ीकी राख सावधानीसे इकट्ठी करनी चाहिये र किसी ढंकी हुई जगह पर उसका संग्रह करना चाहिये।

खेतका कचरा

हर तरहके पौधोंके कचरेसे, जिसकी खेतमें दूसरी तरहसे जरूरत न हो, कम्पोस्ट बनाया जा सकता है। इस कचरेमें ये सब चीजें आ सकती हैं: घासपात, कपास, मटर और तिलके डंठल, टेसूके पत्ते, अलसी, सरसों, काले और हरे चनोंके डंठल, गन्नेका कूचा और छिलका, जुवार और गन्नेकी जड़ें, पेड़ोंके गिरे हुए पत्ते और घास-चारा, कड़वी वगैराके न खाये हुए हिस्से। कड़ी चीजोंको कुचलना होगा। सिंधमें कच्ची और मुलायम सड़कों पर भी यह काम सफलतासे किया गया है। वहां गाड़ीके रास्ते पर ऐसी चीजें फैला दी जाती हैं और कुचले हुए हिस्सोंको समय-समय पर उठाकर उनकी जगह दूसरी कड़ी चीजें फैला दी जाती हैं। ठूठ और जड़ों जैसे बहुत कड़े हिस्सोंको (कुचलनेके अलावा) कमसे कम दो दिन तक पानीमें भिगोने या दो-तीन माह तक गीली मिट्टी या कीचड़के नीचे गाड़नेकी जरूरत रहेगी। इसके बाद ही वे अच्छी तरह काममें लिये जा सकते हैं। कीचड़के नीचे गाड़नेका काम बारिशमें आसानीसे किया जा सकता है। हरी चीजें कुछ हद तक मुरझा ली जायं और फिर उनकी गजी लगाई जाय। थोड़ी-थोड़ी अलग-अलग चीजोंकी एकसाथ गजी लगाई जाय और बड़ी मात्राकी हरएक चीजके लिए अलग गजी बनाई जाय। इन चीजोंको कम्पोस्टके खड्डेमें ले जाते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि सब तरहकी चीजोंका मिश्रण किया जाय; खड्डेमें डालनेके लिए उठाई जानेवाली सारी चीजोंकी कुल मात्राके एक-तिहाईसे ज्यादा कोई चीज खड्डेमें नहीं डालनी चाहिये। पानीमें भिगोई या मुलायम बनाई हुई सख्त जड़ें, डंठल वगैरा एक बारमें बहुत थोड़ी मात्राओंमें ही काममें लिये जाने चाहिये। अगर मामूली तौर पर मिल सकनेवाली अलग-अलग चीजोंको ऐसी मात्राओंमें इकट्ठा और इस्तेमाल किया जाय कि सालभर तक वे मिलती रहें, तो यह सब अपने-आप हो जाता है। सन या इसी तरहकी दूसरी खरीफकी फसलके उपयोगसे कम्पोस्टको और ज्यादा गुणकारी बनाया जा सकता है। इसे हरी ही काटना चाहिये और सूखने पर उसका ढेर लगाना चाहिये। इससे रबीकी

फसल वोनेके समय जमीन साफ मिलेगी और सन वोनेसे इस फसलको फायदा पहुंचेगा।

पानी

अगर कम्पोस्ट तैयार करनेकी जमीनके पास एक छोटा खड्डा या हौज वनाकर उसमें नहाने-धोनेका गन्दा पानी इकट्ठा किया जाय और रोज काममें लिया जाय, तो मेहनत वचेगी और फायदा भी होगा। लम्वे समय तक एक जगह पड़ा रहनेवाला कोई भी पानी नुकसानदेह होगा। इससे ज्यादा पानीकी जरूरत हो तो दूसरी तरहसे उसका प्रवन्ध करना चाहिये। मौसमके मुताविक एक गाड़ी कम्पोस्ट तैयार करनेके लिए चार गैलनके ५० से ६० तक पानीसे भरे पीपोंकी जरूरत होती है।

प्रक्रियाका व्यौरा

खड्डोंका भरना : ४ फुट लम्वा और ३ फुट चौड़ा एक पाल या टाटके टुकड़ेका स्ट्रेचर (जिसके लम्वे किनारे ७½ फुट लम्वे दो वांसोंमें फंसे हों) लीजिये। गोठानके फर्श पर, जहां ढोर उठते-वैठते और सोते हैं, रोज एक वैलके लिए एक पाल और एक भैंसके लिए डेढ़ पालके हिसावसे खेतका कचरा फैला दीजिये। इस कचरे पर ढोरोंका पेशाव गिरता और जज्व होता है; साथ ही ढोर उसे कुचल कर मिला देते हैं। वारिशमें यह विछौना सूखे कचरेकी दो परतोंके वीचमें हरे लेकिन कुछ सूखे हुए कचरेकी परत डालकर वनाया जाता है। घोल वनानेके वाद जो ताजा गोवर वचे, उसके या तो कंडे वनाये जा सकते हैं या छोटी नारंगीके वरावर हिस्से करके उसे ढोरोंके विछौने पर फैलाया जा सकता है। घोल वनानेके वाद पेशाववाली मिट्टीका और कुकुरमुत्तावाली खादका वचा हुआ हिस्सा दूसरे दिन सुवह ढोरोंके विछौने पर छिड़क दिया जाता है, जव वह सीधे खड्डोंमें डालने और पतली परतोंमें फैलानेके लिए फावड़ों और पालोंके जरिये सारे फर्श परसे उठाया जाता है। वादमें ऐसी हर परतको थोड़ी-थोड़ी लकड़ीकी राख, ताजा गोवर, पेशावकी मिट्टी और कुकुरमुत्तावाली खादके घोलसे एकसा गीला किया जाता है। ढोरोंका सारा विछौना उठा लेनेके वाद फर्श पर विखरा हुआ वारीक कचरा भी झाड़ लिया जाता

है, जो खड्डेकी ऊपरी सतह पर बिछाया जाता है। सबसे ऊपरकी परतको पानी छिड़ककर गीला किया जाता है और शामको व दूसरे दिन सुबह और ज्यादा पानी छिड़ककर उसे पूरी तरह भिगो दिया जाता है। मिलनेवाले कचरेकी मात्राके अनुसार एक खड्डा या उसका हिस्सा छह दिनमें सिरे तक भर ही दिया जाना चाहिये। इसके बाद दूसरा खड्डा या एक खड्डेका दूसरा हिस्सा इसी तरह भरना शुरू किया जाय। खड्डेको भरते समय कचरेको पावसे दबाना नुकसानदेह होता है, क्योंकि इससे हवा अन्दर नहीं जाने पाती।

बारिशमें खड्डे पानीसे भर जाते हैं। जब बारिश शुरू हो तो खड्डोंका कचरा निकाल कर जमीन पर इकट्ठा कर देना चाहिये, जिससे उसे उलट-पुलट करनेका लाभ मिल जाय। बारिशके दिनोंमें ८ फुट × ८ फुट × २ फुटके ढेर जमीन पर लगाकर नया कम्पोस्ट बनाना चाहिये। ये ढेर खड्डोंके बीचकी चौड़ी जगहों पर बिलकुल पास पास किये जाने चाहिये, ताकि वे ठंडी हवासे बच सकें।

कम्पोस्टको पलटना और उस पर पानी छिड़कना

सड़ते हुए कम्पोस्टकी ऊपरी सतह पर हर हफ्ते पानीका छिड़काव करके नमी कायम रखी जाती है। खड्डेके भीतर बीच-बीचमें नमी और हवा पहुंचाते रहना जरूरी है, इसलिए खादको तीन बार पलटना चाहिये। हर पलटेके साथ पानीका छिड़काव करना चाहिये, जिससे नमीकी कमी पूरी की जा सके। गीले मौसममें पानीके छिड़कावकी मात्रा कम कर देनी चाहिये या पानी बिलकुल न छिड़कना चाहिये। लेकिन जब पहली बार खड्डा भरा जाय या ढेर लगाया जाय, तब तो हर मौसममें पानी छिड़कना ही चाहिये।

पहला पलटा — करीब १५ दिन बाद

सारे खड्डेसे ऊपरकी न सड़ी हुई परत निकाल डालिये और उसे नया खड्डा भरनेके काममें लीजिये। फिर खुली हुई सतह पर ३० दिनका पुराना कम्पोस्ट फैलाइये और सिरे पर इतना पानी छिड़किये कि लगभग ६ इंच नीचे तक वह अच्छी तरह गीला हो जाय। पहले पलटेके समय,

खड्डेको लम्बाईके हिसाबसे दो हिस्सोंमें बांट दिया जाता है और हवाके रुखकी तरफके आधे हिस्सेको जैसेका तैसा रहने दिया जाता है। उसे नहीं छेड़ा जाता। दूसरा आधा हिस्सा उस पर डाल दिया जाता है (इसके लिए लकड़ीका बना घास उछालनेका औजार काम देता है)। कचरेकी एक परतके बाद दूसरी परत नहीं उठानी चाहिये, बल्कि औजारोंको इस तरह काममें लेना चाहिये कि जहां तक संभव हो खड्डेके सिरेसे पेंदे तकका कचरा साथमें निकल सके। पलटे हुए कचरेकी हर परतको, जो करीब ६ इंच मोटी होगी, पानी छिड़ककर अच्छी तरह भिगो देना चाहिये। बारिशमें सारा ढेर पलटा जा सकता है, ताकि उसकी ऊंचाई ज्यादा न बढ़ जाय।

दूसरा पलटा — करीब एक माह बाद

खड्डेके आधे हिस्सेका कचरा उसकी खाली बाजूमें औजारसे पलट दिया जाता है और उस पर काफी पानी छिड़का जाता है। इसमें भी सिरेसे पेंदे तककी खादको मिलानेका ध्यान रखना चाहिये।

तीसरा पलटा — दो माह बाद

इसी तरह कम्पोस्ट फावड़ेसे खड्डोंके पासकी चौड़ी जगहों पर फैला दिया जाता है और उस पर पानी छिड़का जाता है। दो खड्डोंकी खाद बीचकी खुली जगह पर १० फुट चौड़ा और ३½ फुट ऊंचा ढेर बनाकर अच्छी तरह फैलाई जा सकती है। ढेरकी लम्बाई कितनी भी रखी जा सकती है और इस तरह बहुतसे ढेर साथ-साथ लगाये जा सकते हैं। अगर सुभीता हो तो खादको पानी छिड़क कर खड्डोंसे गाड़ीमें भरकर सीधे खेतोंमें ले जाया जा सकता है। जिस जमीनमें खादका उपयोग करना हो, वहीं उसका ढेर लगाना चाहिये। इससे बुवाईके मौसममें कीमती समय बच सकेगा। सब ढेर ऊंचे और चपटे सिरवाले होने चाहिये, ताकि वे बहुत ज्यादा सूख न जायं और उनमें खाद बननेकी प्रक्रिया बन्द न हो जाय।

अच्छा कम्पोस्ट किसी भी समय बदबू नहीं करता और सारा एकसे रंगका होता है। अगर वह बदबू करे या उस पर मक्खियां बैठें,

तो समझना चाहिये कि उसे ज्यादा हवाकी जरूरत है। इसलिए खड्डेकी खादको पलटना चाहिये और उसमें थोड़ी राख और गोबर मिलाना चाहिये।

हर मामलेमें कचरे, गोबर वगैराकी कितनी मात्रा चाहिये, इसका हिसाब नीचेके आंकड़ोंके आधार पर आसानीसे लगाया जा सकता है।

चालीस ढोरोंके लिए जरूरी मात्रा

छह दिन तक रोज खड्डे भरना : गोठानके फर्श पर ढोरोंके बिछौनेके लिए बिछाये हुए कचरेकी और उसे उठानेके बाद झाड़ूसे इकट्ठे किये हुए बारीक कचरेकी एक दिनमें खड्डेमें डाली जानेवाली मात्रा — ४० से ५० पाल कचरा, जिस पर ४ तगारी (१८ इंच व्यासवाली और ६ इंच गहरी) कुकुरमुत्तावाली खाद, १५ तगारी पेशाबवाली मिट्टी और ईंधनवाले रूपमें उपयोग न किया जानेवाला फाजिल गोबर फैलाया जाय।

घोल : गोठानके एक दिनके कचरे वगैराके लिए २० पीपे (चार गैलनके) पानी, ५ तगारी गोबर, १ तगारी राख, १ तगारी पेशाबवाली मिट्टी और २ तगारी कुकुरमुत्तावाली खाद।

पानी : गोठानके एक दिनके कचरे वगैराके लिए खड्डा भरते ही ६ पीपे पानी, १० पीपे पानी शामको और ६ पीपे दूसरे दिन सुबह।

ऊपरी सतहका छिड़काव : हर बार २५ पीपे पानी।

पलटेके वक्त पानी : पहले पलटेके समय मौसमके मुताबिक ६० से १०० पीपे; दूसरे पलटेके समय ४० से ६० पीपे; तीसरे पलटेके समय ४० से ८० पीपे।

कुकुरमुत्तावाली खाद : पहले पलटेके वक्त १२ तगारी।

कोष्ठक

एक तगारीमें भरी हुई चीजोंकी मात्रा (दो पसरोंमें) और वजन (पौंडमें)।

चीज	मात्रा (पसरोंमें)	वजन (पौंडमें)
ताजा गोबर	६ से ७	४०
पेशाववाली मिट्टी	२० से २१	२२
लकड़ीकी राख	१५	२०
कुकुरमुत्तावाली खाद	५	२०
पहले पलटेके लिए खाद	६	२०

कामका समय-पत्रक

दिन	घटनाएं
१	भरना शुरू होता है
६	भरना खतम होता है
१०	कुकुरमुत्ता जमता है
१२	पानीका पहला छिड़काव
१५, १६	पहला पलटा और एक माह पुराना कम्पोस्ट मिलाना
२४	पानीका दूसरा छिड़काव
३०–३२	दूसरा पलटा
३८	पानीका तीसरा छिड़काव
४५	„ चौथा „
६०	तीसरा पलटा
६७	पानीका पांचवां छिड़काव
७५	„ छठा „
९०	काममें लेनेके लिए कम्पोस्ट तैयार

अगर परिस्थितियां पूरी तरह इन्दौर-पद्धतिसे कम्पोस्ट बनानेमें बाधक हों, तो नीचे लिखे ढंगसे कुछ अंशमें उसके लाभ उठाये जा सकते हैं।

कई तरहका मिला हुआ कचरा ढोरोंके बिछौनेके लिए उपयोग किया जाय और दूसरे दिन सुबह हटानेके पहले उस पर ऊपर बताये मुताबिक जरूरी मात्रामें गोबर, पेशाबवाली मिट्टी और राख डाली जाय।

यह सब कचरा बादमें उन खेतकी मेड़ पर ले जाया जाता है, जिसमें उसका उपयोग करना होता है; या दूसरी किसी सूखी जगह पर ले जाया जाता है और ८ इंच चौड़े और ३ इंच ऊंचे ढेरोंमें जमा किया जाता है। ढेरोंकी लम्बाई सुविधाके अनुसार कितनी भी रखी जा सकती है। बारिश शुरू होनेके करीब महीने-भर बाद ही उन पर कुकुरमुत्ता जम जायगा। इसके बाद कोई ऐसा दिन चुनकर, जब आसमानमें बादल घिरे हों या थोड़ी बारिश हो रही हो, उसे पूरी तरह पलट दिया जाता है। एक महीनेके बाद एक या दो बार फिर उसे पलट देनेसे मौसम खतम होते होते यह सड़ जायगा, बशर्ते कि समय समय पर अच्छी बारिश होती रहे।

अलबत्ता, खाद तैयार होनेके पहले एक बरस तक ठहरना जरूरी होगा। अगर बारिश बहुत कम हो, तो शायद ज्यादा भी ठहरना पड़े।

इस तरह बनी हुई खाद इन्दौर-पद्धतिसे तैयार की हुई खादसे तो घटिया होती है, लेकिन खलिहानोंमें तैयार की जानेवाली मामूली खादसे हर हालतमें ज्यादा अच्छा होती है। क्योंकि इस पद्धतिसे भी कड़ी और सख्त चीजें आसानीसे सड़ाई जा सकती है और गांवकी मौजूदा पद्धतिसे तैयार होनेवाली खादसे कहीं ज्यादा मात्रामें खाद बनती है। ६

गांवकी फसलें

हरएक गांवका पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरतका तमाम अनाज और कपड़ेके लिए कपास स्वयं पैदा कर ले। उसके पास इतनी जमीन सुरक्षित होनी चाहिये, जिसमें ढोर चर सकें और गांवके बड़ों तथा बच्चोंके लिए मनबहलावके साधन और खेलकूदके मैदान वगैराकी व्यवस्था हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके; यों वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैराकी खेतीसे बचेगा। ७

१८

खेती और पशुपालन–५

खुराककी कमीकी समस्या

खुराककी कमी

कुदरती या मनुष्यके पैदा किये हुए अकालमें हिन्दुस्तानके करोड़ों नहीं, तो लाखों आदमी भूखसे मरे हैं। इसलिए यह हालत हिन्दुस्तानके लिए नई नहीं है। मेरी रायमें एक व्यवस्थित समाजमें अनाज और पानीकी कमीके सवालको सफलतासे हल करनेके लिए पहलेसे सोचे हुए उपाय हमेशा तैयार रहने चाहिये। एक व्यवस्थित समाज कैसा हो और उसे इस सवालको कैसे सुलझाना चाहिये, इन बातों पर विचार करनेका यह समय नहीं है। इस समय तो हमें सिर्फ यही विचार करना है कि अनाजकी आजकी भयंकर तंगीको हम किस तरह सफलतापूर्वक दूर कर सकते हैं।

मेरा खयाल है कि हम लोग यह काम कर सकते हैं। पहला पाठ जो हमें सीखना है, वह है स्वावलम्बन और अपने-आप पर भरोसा रखनेका। अगर हम यह पाठ पूरी तरह सीख लें, तो विदेशों पर निर्भर रहने और इस तरह अपना दिवालियापन जाहिर करनेसे हम बच सकते हैं। यह बात घमण्डसे नहीं बल्कि वस्तुस्थितिको ध्यानमें रखकर कही गई है। हमारा देश छोटासा नहीं है, जो अपने अनाजके लिए बाहरी मदद पर निर्भर रहे। यह तो एक छोटा-मोटा महाद्वीप है, जिसकी आबादी चालीस करोड़के लगभग है। हमारे देशमें बड़ी-बड़ी नदियां, कई तरहकी उपजाऊ जमीन और कभी न चुकनेवाला पशुधन है। हमारे पशु अगर हमारी जरूरतसे बहुत कम दूध देते हैं, तो इसमें पूरी तरह हमारा ही दोष है। हमारे पशु इस योग्य हैं कि वे कभी भी हमें अपनी जरूरतका दूध दे सकते हैं। पिछली कुछ सदियोंमें अगर हमारे देशकी उपेक्षा न की गई होती, तो आज उसका अनाज सिर्फ उसीके लिए काफी नहीं

होता, बल्कि पिछले महायुद्धकी वजहसे अनाजकी तंगी भोग रही दुनियाको भी उसकी जरूरतका बहुत-कुछ अनाज हिन्दुस्तानसे मिल जाता। आज दुनियाके जिन देशोंमें अनाजकी तंगी है, उनमें हिन्दुस्तान भी शामिल है। आज तो यह मुसीबत घटनेके बजाय बढती हुई जान पडती है। मेरा यह सुझाव नहीं है कि जो दूसरे देश राजी-खुशीसे हमें अपना अनाज देना चाहते हैं, उनका आभार न मानते हुए हम उसे लौटा दें। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि हम भीख न मागते फिरें। उससे हम नीचे गिरते हैं। इसमें देशके भीतर एक जगहसे दूसरी जगह अनाज भेजनेकी कठिनाइयां और शामिल कर दीजिये। हमारे यहां अनाज और खान-पानकी दूसरी चीजोंको एक जगहसे दूसरी जगह शीघ्रतासे भेजनेकी सुविधाएं नहीं हैं। इसके साथ ही यह असंभव नहीं है कि अनाजकी फेर-बदलीके समयमें उसमें इतनी मिलावट कर दी जाय कि वह खाने लायक ही न रहे। हम इस बातसे आंखें नहीं मूंद सकते कि हमें मनुष्यके भले-बुरे सब तरहके स्वभावसे निपटना है। दुनियाके किसी भी हिस्सेमें ऐसा मनुष्य नहीं मिलेगा, जिसमें कुछ-न-कुछ कमजोरी न हो।

दूसरे, हम यह भी देखें कि हमें दूसरे देशोंसे कितनी मदद मिल सकती है। मुझे मालूम हुआ है कि हमारी आजकी जरूरतोंके तीन प्रतिशतसे अधिक मदद हम नहीं पा सकते। अगर यह बात सही है, और मैंने कई विशेषज्ञोंसे इसकी जांच कराई है और उन्होंने इसे सही माना है, तो मैं पूरी तरह यह मानता हूं कि बाहरी मदद पर भरोसा करना बेकार है। यह जरूरी है कि हमारे देशमें खेतीके लायक जो जमीन है, उसके एक एक इंच हिस्सेमें हम ज्यादा पैसे दिलानेवाली फसलोंके बजाय प्रतिदिन काममें आनेवाला अनाज पैदा करें। अगर हम बाहरी मदद पर जरा भी निर्भर रहे, तो हो सकता है कि अपने देशके भीतर ही अपनी जरूरतका अनाज पैदा करनेकी जो जबरदस्त कोशिश हमें करनी चाहिये उससे हम बहक जायं। जो पड़ती जमीन खेतीके काममें लाई जा सकती है, उसे हम जरूर इस काममें लें।

मुझे भय है कि खाने-पीनेकी चीजोंको एक जगह जमा करके वहांसे सारे देशमें उन्हें पहुंचानेका तरीका हानिकारक है। विकेन्द्रीकरणके जरिये

हम आसानीसे काले-बाजारका खात्मा कर सकते हैं और चीजोंको यहांसे वहां लाने-ले जानेमें लगनेवाले समय और पैसेकी बचत कर सकते हैं। हिन्दुस्तानमें अनाज पैदा करनेवाले ग्रामवासी अपनी फसलको चूहों वगैरासे बचानेकी तरकीबें जानते हैं। अनाजको एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशन तक लाने-ले जानेमें चूहों वगैराको उसे खानेका काफी मौका मिलता है। इससे देशके करोड़ों रुपयोंका नुकसान होता है और जब हम एक-एक छटांक अनाजके लिए तरसते हैं, तब देशका हजारों मन अनाज इस तरह बरबाद हो जाता है। अगर हरएक हिन्दुस्तानी जहां संभव हो वहां अनाज पैदा करनेकी जरूरतको महसूस करे, तो शायद हम भूल जायं कि देशमें कभी अनाजकी तंगी थी। ज्यादा अनाज पैदा करनेका विषय ऐसा है, जिसमें सबके लिए आकर्षण है। इस विषय पर मैं पूरे विस्तारके साथ तो नहीं बोल सका, पर मुझे आशा है कि मेरे इतना कहनेसे आप लोगोंके मनमें इसके प्रति रुचि पैदा हुई होगी और समझदार लोगोंका ध्यान इस बातकी तरफ मुड़ा होगा कि हरएक व्यक्ति इस तारीफके लायक काममें मदद कर सकता है।

अब मैं आपको यह बता दूं कि बाहरसे हमको मिलनेवाले तीन प्रतिशत अनाजको लेनेसे इनकार करनेके बाद हम किस तरह इस कमीको पूरा कर सकते हैं। हिन्दू लोग महीनेमें दो बार एकादशीका व्रत रखते हैं। इस दिन वे आधा या पूरा उपवास करते हैं। मुसलमान और दूसरी कौमोंके लोगोंको भी उपवासकी मनाही नहीं है—खास करके जब करोड़ों भूखों मरते लोगोंके लिए एक-आध दिनका उपवास करना पड़े। अगर सारा देश इस तरहके उपवासके महत्त्वको समझ ले, तो विदेशी अनाज लेनेसे हमारे इनकार करनेके कारण जो कमी होगी, उससे भी ज्यादा कमीको वह पूरी कर सकता है।

मेरी अपनी रायमें तो अगर अनाजके रेशनिंगका कोई उपयोग है भी तो वह बहुत कम है। अगर अनाज पैदा करनेवालोंको उनकी मर्जी पर छोड़ दिया जाय, तो वे अपना अनाज बाजारमें लायेंगे और हरएकको अच्छा और खाने लायक अनाज मिलेगा, जो आज आसानीसे नहीं मिलता।

अनाजकी तंगीके बारेमें अपनी बात खतम करनेसे पहले मैं आप लोगोंका ध्यान प्रेसिडेन्ट ट्रूमेन द्वारा अमेरिकन जनताको दी गई उस सलाहकी तरफ खींचूगा, जिसमें उन्होंने कहा है कि अमेरिकन लोगोंको कम रोटी खाकर यूरोपके भूखों मरते लोगोंके लिए अनाज बचाना चाहिये। उन्होंने आगे कहा है कि अगर अमेरिकाके लोग स्वेच्छासे इस तरहका उपवास करेंगे, तो उनकी तन्दुरुस्तीमें कोई कमी नहीं आयेगी। प्रेसिडेण्ट ट्रूमेनको उनकी इस परोपकारी वृत्ति पर मैं बधाई देता हूं। मैं इस सुझावको माननेके लिए तैयार नहीं हूं कि इस परोपकारके पीछे अमेरिकाका आर्थिक लाभ उठानेका गन्दा इरादा छिपा हुआ है। किसी मनुष्यका न्याय उसके कामों परसे होना चाहिये, उनके पीछे रहनेवाले इरादेसे नहीं। एक भगवानके सिवा और कोई नहीं जानता कि किसी मनुष्यके दिलमें क्या है। अगर अमेरिका भूखे यूरोपको अनाज देनेके लिए उपवास करेगा या कम खायगा, तो क्या हम अपने खुदके लिए यह काम नहीं कर सकेंगे? अगर बहुतसे लोगोंका भूखसे मरना निश्चित है, तो हमें स्वावलम्बनके तरीकेसे उनको बचानेकी पूरी पूरी कोशिश करनेका यश तो कमसे कम ले ही लेना चाहिये। इससे हमारा राष्ट्र ऊंचा उठता है। १

खुराककी कमीके दिनोंमें

कहावत है कि जो मनुष्य जितना बचाता है वह उतना ही कमाता या पैदा करता है। इसलिए जिनमें गरीबोंके लिए दया है, जो उनके साथ ऐक्य साधना चाहते हैं, उन्हें अपनी आवश्यकताएं कम करनी चाहिये। यह हम कई तरीकोंसे कर सकते हैं। मैं उनमें से कुछका ही यहां जिक्र करूंगा।

धनिक वर्गमें प्रमाण या आवश्यकतासे कहीं ज्यादा खाना खाया जाता है और बिगाड़ किया जाता है। एक समयमें एक ही अनाजका उपयोग करना चाहिये। चपाती, दाल-भात, दूध-घी, गुड़ और तेल ये खाद्य-पदार्थ शाक-तरकारी और फलोंके उपरान्त आम तौर पर हमारे घरोंमें इस्तेमाल किये जाते हैं। आरोग्यकी दृष्टिसे यह मेल ठीक नहीं है। जिन

लोगोंको दूध, पनीर, अंडे या मांसके रूपमें स्नायुवर्धक तत्त्व मिल जाते हैं, उन्हें दालकी बिलकुल जरूरत नहीं रहती। गरीब लोगोंको तो सिर्फ वनस्पति द्वारा ही स्नायुवर्धक तत्त्व मिल सकते हैं। अगर धनिक वर्ग दाल और तेल खाना छोड़ दे, तो गरीबोंको जीवन-निर्वाहके लिए ये आवश्यक पदार्थ मिलने लगें। इन बेचारोंको न तो प्राणियोंके शरीरसे पैदा हुए स्नायुवर्धक तत्त्व मिलते हैं और न चर्बी ही। अन्नको दलियाकी तरह मुलायम बनाकर कभी नहीं खाना चाहिये। अगर उसको किसी रसीली या तरल चीजमें डुबोये बगैर सूखा ही खाया जाय, तो आधी मात्रासे ही आदमीका काम चल जाता है। अन्नको कच्ची सलाद, जैसे कि प्याज, गाजर, मूली, लेटिस, हरी पत्तियों और टमाटरके साथ खाया जाय तो लाभ होता है। कच्ची हरी सब्जियोंकी सलादके एक-दो औंस भी ८ औंस पकाई हुई सब्जियोंके बराबर होते हैं। चपाती या डबल-रोटी दूधके साथ नहीं लेनी चाहिये। शुरूमें एक वक्त चपाती या डबल-रोटी और कच्ची सब्जियां और दूसरे वक्त पकाई हुई सब्जी दूध या दहीके साथ ले सकते हैं। मिष्टान्नका भोजन बिलकुल बन्द कर देना चाहिये। इनकी जगह गुड़ या थोड़ी मात्रामें शक्कर अकेले अथवा दूध या डबल-रोटीके साथ ले सकते हैं।

ताजे फल खाना अच्छा है, परन्तु शरीरके पोषणके लिए थोड़ा फल-सेवन भी पर्याप्त होता है। यह महंगी वस्तु है और धनिक लोगोंके आवश्यकतासे अत्यंत अधिक फल-सेवनके कारण गरीबों और बीमारोंको, जिन्हें धनिकोंकी अपेक्षा अधिक फलोंकी जरूरत है, फल मिलना दुश्वार हो गया है।

कोई भी वैद्य या डॉक्टर, जिसने भोजनके शास्त्रका अध्ययन किया है, प्रमाणके साथ कह सकेगा कि मैंने जो कुछ ऊपर बताया है, उससे शरीरको किसी प्रकारका नुकसान नहीं हो सकता। उलटे, तन्दुरुस्ती अधिक अच्छी हो सकती है।

स्पष्ट ही भोजन-सामग्रीकी किफायतका सिर्फ यही एक उपाय नहीं है। इसके सिवा और भी कई उपाय हैं। परन्तु केवल इसी एक उपायसे कोई उल्लेख योग्य लाभ नहीं हो सकता।

अनाजके व्यापारियोंको लालच और जितना मुनाफा मिल सके उतना मुनाफा कमानेकी वृत्तिको त्यागना चाहिये। उन्हें यथासंभव थोड़ेसे थोड़े मुनाफेमें ही संतुष्ट रहना चाहिये। यदि वे गरीबोंके लिए अनाजका भंडार न रखेंगे, तो उन्हें लूटपाटका डर रहेगा। उन्हें चाहिये कि वे अपने पड़ोसके आदमियोंसे संपर्क बनाये रखें। कांग्रेसियोंको चाहिये कि वे इन अनाजके व्यापारियोंके यहां जायें और यह सन्देश उन्हें दें।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य तो यह है कि गांवोंके लोगोंको यह शिक्षा दी जाय कि जो कुछ उनके पास है उसे बचाकर रखें और जहां-जहां पानीकी सुविधा है वहां-वहां नई फसल बोनें और तैयार करनेके लिए उन्हें प्रेरित किया जाय। इसके लिए प्रचारकी आवश्यकता है, जो बड़े पैमाने पर और बुद्धिमत्तापूर्ण हो। यह बात आम तौर पर लोगोंको नहीं मालूम है कि केला, आलू, चुकन्दर, शकरकन्द, सूरन और कुछ हद तक लौकी खानेके लिए सरलतासे बोई जानेवाली फसलें हैं और जरूरतके समय ये पदार्थ रोटीका स्थान ले सकते हैं।

आजकल पैसेकी भी बहुत कमी है। अनाज शायद मिल भी जाय, परन्तु अनाज खरीदनेको लोगोंके पास पैसा नहीं है। बेकारीके कारण ही पैसेका अभाव है। बेकारी हमें मिटानी है। सूत कातना ही इसका सबसे सरल और सहज उपाय है। स्थानीय जरूरतें श्रमके दूसरे जरिये भी पैदा कर सकती हैं। बेकारी न रहने पाये, इसके लिए हरएक प्रकारका साधन ढूंढ़ना होगा। सिर्फ वे ही लोग भूखों मरेंगे जो आलसी हैं। धीरजके साथ काम करनेसे ऐसे लोग भी अपना आलस्य छोड़ देंगे। २

यह मानकर चलना चाहिये कि हमको अनाजके संकटका सामना करना पड़ेगा। ऐसी हालतमें हमको नीचे लिखी बातें तो तुरन्त शुरू कर देनी चाहिये :

१. हरएक आदमीको अपने खाने-पीनेकी जरूरत कम-से-कम कर लेनी चाहिये; वह इतनी होनी चाहिये कि उसकी तन्दुरुस्ती बनी रहे। शहरोंमें जहां दूध, साग-सब्जी, तेल और फल मिल सकते हैं वहां अनाज और दालोंका उपयोग घटा देना चाहिये। ऐसा आसानीसे किया जा सकता है। अनाजोंमें पाया जानेवाला स्टार्च गाजर,* चुकन्दर, आलू, अरवी,

रतालू, जमींकन्द, केला वगैरा चीजोंसे मिल सकता है। इसमें खयाल यह है कि उन अनाजों और दालोंको, जिन्हें संग्रह करके रखा जा सके, आजकी खुराकमें शामिल न किया जाय और उन्हें बचाकर रखा जाय। साग-सब्जी भी स्वादके लिए न खानी चाहिये, खासकर ऐसी हालतमें जब कि लाखों आदमियोंको वह बिलकुल ही नसीब नहीं होती और अनाज तथा दालोंकी कमीकी वजहसे उनके भूखों मरनेका खतरा पैदा हो गया है।

२. हरएक आदमी, जिसे पानीकी सुविधा मिल सकती हो, अपने लिए या आम लोगोंके लिए कुछ-न-कुछ खानेकी चीज पैदा करे। इसका सबसे आसान तरीका यह है कि थोड़ी साफ मिट्टी इकट्ठी कर ली जाय, जहां मुमकिन हो वहां उसके साथ थोड़ी सजीव खाद मिला ली जाय— थोड़ा सूखा गोबर भी सजीव खादका अच्छा काम देता है— और उसे मिट्टीके या टीनके गमलेमें डाल दिया जाय। फिर उसमें साग-भाजीके कुछ बीज, जैसे राई, सरसों, धनिया, मेथी, पालक, बथुआ वगैरा बो दिये जायं और उन्हें रोज पानी पिलाया जाय। लोगोंको यह देखकर ताज्जुब होगा कि कितनी जल्दी बीज उगते हैं और खाने लायक पत्तियां देने लगते हैं; जिनको बिना पकाये कच्चा ही सलाद या चटनीकी तरह खाया जा सकता है।

३. फूलोंके तमाम बगीचोंमें खानेकी चीजें उगाई जानी चाहिये। इस बारेमें मैं यह सुझाना चाहूंगा कि वाइसरॉय, गवर्नर और दूसरे ऊंचे अफसर इसका उदाहरण प्रस्तुत करें। मैं केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंके कृषि-विभागके अध्यक्षोंसे कहूंगा कि वे प्रान्तीय भाषाओंमें अनगिनत पत्रिकाएं छपवाकर बांटें और साधारण आदमियोंको समझायें कि कौन-कौनसी चीजें आसानीसे पैदा की जा सकती हैं।

४. सिर्फ आम लोग ही अपनी खुराक न घटावें, बल्कि फौजवालोंको भी चाहिये कि वे ज्यादा नहीं तो आम लोगोंके बराबर तो भी अपनी खुराकमें कमी करें। सेनाके आदमी सैनिक अनुशासनमें होनेके कारण आसानीसे किफायत कर सकते हैं, इसलिए मैंने सेनासे ज्यादा कमी करनेकी बात कही है।

५. तिलहनकी और तेल तथा खलीकी निकासी अगर बन्द न की गई हो, तो फौरन बन्द कर दी जानी चाहिये। यदि तिलहनमें से मिट्टी और कचरा वगैरा अलग कर दिया जाय, तो खली मनुष्यके लिए अच्छी खुराक बन सकती है। उसमें काफी पोषक तत्त्व होते हैं।

६. जहां सम्भव और जरूरी हो सिंचाईके लिए और पीनेके पानीके लिए सरकारको गहरे कुएं खुदवाने चाहिये।

७. अगर सरकारी नौकरों और आम जनतासे उसको सच्चा सहयोग मिले, तो इसमें जरा भी शंका नहीं कि देश इस संकटसे पार हो जायगा। जिस तरह खतरा आने पर हाथ निःशक्त हो जाते हैं, उसी तरह जहां व्यापक संकट आनेवाला हो वहां सख्त कार्रवाई न की जाय, तो धोखा हुए बिना नहीं रहता। हम इस मुसीबतके कारणों पर विचार न करें। कारण कुछ भी हो, सचाई यह है कि अगर सरकार और जनताने संकटका धीरज और हिम्मतसे सामना नहीं किया तो बरबादी निश्चित है। इस एक मोर्चेको छोड़कर और सब मोर्चों पर हम सरकारसे लड़ेंगे और अगर सरकार हृदयहीनतासे काम लेगी या उचित लोकमतको ठुकरायेगी, तो इस मोर्चे पर भी हमको उससे लड़ना होगा। इस बारेमें मैं जनताको मेरी इस रायसे सहमत होनेके लिए कहूंगा कि हम सरकारकी बातको वह कहती है उसी तरह मान लें और समझ लें कि स्वराज्य कुछ ही महीनोंमें मिल जानेवाला है।

८. सबसे जरूरी चीज यह है कि चोरबाजारीका और बेईमानी व मुनाफाखोरीका तो बिलकुल खातमा ही हो जाना चाहिये, और जहां तक आजके इस संकटका सवाल है, सब दलोंके बीच सहयोग होना चाहिये। ३

अनाजकी तंगी और अधिक जनसंख्या

यदि यह कहा जाय कि जनसंख्याकी अतिवृद्धिके कारण कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-नियमनकी राष्ट्रके लिए आवश्यकता है, तो मुझे इस बातमें पूरी शंका है। यह बात अब तक साबित ही नहीं की गई है। मेरी रायमें तो यदि जमीन-सम्बन्धी कानूनोंमें समुचित सुधार कर दिया जाय, खेतीकी दशा सुधारी जाय और एक सहायक धन्धेकी

तजवीज कर दी जाय, तो हमारा यह देश अपनी जनसंख्यासे दूने लोगोंका भरण-पोषण कर सकता है। ४

हमारा यह छोटासा पृथ्वी-मण्डल कलका खिलौना नहीं है। अनगिनत युगोंसे यह ऐसा ही चला आ रहा है। जनसंख्याकी वृद्धिके भारसे उसने कभी कष्टका अनुभव नहीं किया। तब कुछ लोगोंके मनमें एकाएक इस सत्यका कहांसे उदय हो गया कि यदि सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोंसे जनसंख्याकी वृद्धिको रोका न गया, तो अन्न न मिलनेसे इस पृथ्वी-मंडलका नाश हो जायगा? ५

१९

खादी और कताई

खादी देशमें सबकी आर्थिक स्वतंत्रता और समानताके प्रारंभका चिह्न है। खादीको उसके सारे फलितार्थों सहित स्वीकार करना चाहिये। उसका अर्थ है संपूर्ण स्वदेशी मनोवृत्ति रखना और जीवनकी सारी आवश्यक वस्तुएं भारतमें ही और वह भी ग्रामवासियोंकी मेहनत और बुद्धिसे प्राप्त करना। गांव अधिकतर बातोंमें आत्म-निर्भर होंगे और भारतके शहरों और बाहरी दुनिया तककी स्वेच्छापूर्वक सेवा करेंगे, जब तक कि उससे दोनों पक्षोंको लाभ होता रहेगा।

इसके लिए बहुतसे लोगोंकी मनोवृत्ति और रुचियोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तनकी आवश्यकता है। यद्यपि कई बातोंमें अहिंसक मार्ग सरल है, परन्तु बहुतसी बातोंमें वह बड़ा कठिन भी है। वह प्रत्येक भारतीयके जीवनके मर्मको स्पर्श करता है, उसे अपने भीतरकी सुप्त शक्तियोंका भान कराता है और उसे इस बातका गर्व अनुभव कराता है कि उसका भारतीय जनताके महासागरकी प्रत्येक बूंदके साथ तादात्म्य है।

मेरे लिए खादी भारतीय मानव-समाजकी एकता, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और समानताका प्रतीक है और इसलिए अन्तमें वह जवाहरलाल नेहरूके काव्यमय शब्दोंमें 'हिन्दुस्तानकी आजादीका गणवेश' है।

इसके सिवा, खादी-मनोवृत्तिका अर्थ है जीवनके आवश्यक पदार्थोंके उत्पादन और वितरणका विकेन्द्रीकरण। इसलिए अब तक जो सिद्धान्त बन पाया है वह यह है कि प्रत्येक गाव अपनी जरूरतकी तमाम चीजें स्वयं पैदा कर ले और शहरोंकी आवश्यकताओंके लिए कुछ उत्पत्ति और भी कर ले।

खादीके फलितार्थ समझा चुकनेके बाद अब मुझे यह बताना चाहिये कि खादीके प्रचारके लिए कांग्रेसजन क्या कर सकते है और उन्हें क्या करना चाहिये। खादीके उत्पादनमें कपास उपजाना, उसे चुनना, लोढ़ना, साफ करना और धुनना, पूनिया बनाना, सूत कातना, माड लगाना, रंगना, ताना-बाना तैयार करना, कपड़ा बुनना और कपडा धोना जैसी सब क्रियायें शामिल है। रगाईके सिवा ये सब आवश्यक प्रक्रियाए हैं। ये सब गावोंमें सफलतापूर्वक की जा सकती है और भारतके जिन गावोंमें चरखा-सघ काम कर रहा है वहा आज की जा रही है।

अगर कांग्रेसजन खादी-सम्बन्धी कांग्रेसकी पुकारके प्रति सच्चे हों, तो वे चरखा-संघकी समय समय पर जारी की हुई उन सूचनाओ पर अमल करेंगे, जिनमें बताया जाता है कि खादी-योजनामें वे क्या भाग अदा कर सकते हैं। यहा तो थोडेसे व्यापक नियम ही दिये जा सकते हैं :

१. जिस किसी परिवारके पास जमीनका टुकडा हो, वह कमसे कम घरके उपयोगके लिए कपास उगा सकता है। कपास उगानेकी प्रक्रिया आसान है। विहारमें किसानोंको अपनी $\frac{3}{20}$ खेतीके योग्य जमीनमें नील उगानेके लिए कानूनन् मजबूर किया जाता था। यह विदेशी निलहोंके हितमें होता था। तो फिर हम राष्ट्रके लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी जमीनके एक निश्चित भागमें कपास क्यों नही उगा सकते? पाठक देखेंगे कि विकेन्द्रीकरणकी पद्धति खादीकी प्रक्रियाओंके प्रारंभसे ही शुरू होती है। आजकल कपासकी फसल केन्द्रित रूपमें उत्पन्न की जाती है और भारतके दूर दूरके भागोंमें भेजी जाती है। लड़ाईसे पहले वह मुख्यत: ब्रिटेन और जापान भेजी जाती थी। वह पहले भी रुपया पैदा करनेवाली फसल थी और आज भी है, इसलिए उसके भावोंमें उतार-चढाव होते रहते हैं। खादी-योजनाके अनुसार कपासका उत्पादन इस अनिश्चितता और सट्टे

इस कल्पना पर भी गौर कीजिये कि सारा राष्ट्र कताई यज्ञकी प्रक्रियाओंमें एकसाथ भाग ले, तो एकता और मिलापकी दृष्टिसे उसका कितना असर होगा! साथ साथ श्रम करनेसे गरीब-अमीरको बराबर करनेवाला जो परिणाम होगा उस पर भी विचार कीजिये!

अगर कांग्रेसजन दिलसे इस काममें जुट जायं, तो वे कताई आदिके औजारोंमें सुधार कर लेंगे और अनेक नये आविष्कार करेंगे। हमारे देशमें श्रम और बुद्धिमें संबंध-विच्छेद रहा है। नतीजा यह हुआ कि हम जहांके तहां रह गये। हमारा विकास रुक गया। अगर दोनोंमें अविच्छेद्य संबंध हो और वह भी यहां सुझाये गये तरीके पर हो, तो उसके परिणामस्वरूप होनेवाले लाभका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता।

यज्ञके रूपमें राष्ट्रव्यापी कताईकी इस योजनामें मैं यह आशा नहीं रखता कि औसत स्त्री या पुरुष इस कामके लिए एक घंटा रोजसे ज्यादा समय दे। १

चरखेका संदेश उसकी परिधिसे कहीं ज्यादा व्यापक है। उसका संदेश सादगी, मानव-सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर,

पूंजी और श्रम, राजा और किसानके बीच अविच्छेद्य संबंध स्थापित करनेका संदेश है। २

'सर्वोदय' शब्दके जो फलितार्थ निकलते हैं, उनको मैं पूरी तरह स्वीकार करता हूं। हमें छोटेसे छोटे मनुष्यके साथ वैसा ही बरताव करना चाहिये जैसा हम चाहते हैं कि दुनिया हमारे साथ करे। सबको उन्नति तथा विकासका समान अवसर मिलना चाहिये। अवसर मिलने पर सभी मनुष्य आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। चरखा इसी महान सत्यका प्रतीक है। ३

मेरे विचारसे यज्ञके रूपमें कताई ही सबसे उपयुक्त और अपनाने लायक शरीर-श्रम हो सकता है। मैं इससे अधिक पवित्र या राष्ट्रीय अन्य किसी वस्तुकी कल्पना नहीं कर सकता कि हम सब घंटेभर रोज वही परिश्रम करें जो गरीबोंको करना पड़ता है और इस प्रकार हम उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव-जातिके साथ एक हो जायं। मैं इससे अच्छी ईश्वर-पूजाकी कल्पना नहीं कर सकता कि उसके नाम पर गरीबोंके लिए मैं भी उसी तरह श्रम करूं जैसे गरीब स्वयं करते हैं। चरखे द्वारा दुनियाकी दौलतका अधिक न्यायपूर्ण बटवारा होता है। ४

मेरा पक्का विश्वास है कि हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके पुनरुज्जीवनसे भारतके आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धारमें सबसे बड़ी मदद मिलेगी। करोड़ों आदमियोंकी अपनी खेतीकी आयमें वृद्धि करनेके लिए कोई सादा उद्योग चाहिये। बरसों पहले वह गृह-उद्योग कताईका था; और करोड़ोंको भूखों मरनेसे बचाना हो तो उन्हें इस योग्य बनाना पड़ेगा कि वे अपने घरोंमें फिरसे कताई जारी कर सकें और हर गांवको अपना ही बुनकर फिरसे मिल जाय। ५

अगर हम भारतीय नर-कंकालोंका चित्र अपने ध्यानमें रखें, तो हमें अपने उन ८० प्रतिशत लोगोंका खयाल करना होगा, जो अपने ही खेतोंमें काम करते हैं, जिनके पास सालमें कमसे कम चार महीने लगभग कोई धंधा नहीं होता और जो इसीलिए भुखमरीके किनारे पर रहते हैं। यह साधारण स्थिति है। आये दिनके अकालोंसे इस

बेकारीमें और भी वृद्धि होती रहती है। ये नर-नारी अपने ही घरोंमें आसानीसे ऐसा कौनसा काम कर सकते हैं, जिससे उनकी अत्यंत अल्प आयमें थोड़ी वृद्धि हो? क्या अब भी किसीको सन्देह है कि वह काम केवल हाथ-कताई है, कोई दूसरा नहीं? ६

जैसे घर पर भोजन बनाना महंगा नहीं पड़ता और उसका स्थान होटलका खाना नहीं ले सकता, वैसे ही घर पर सूत कात लेना और कपड़ा बुन लेना भी महंगा नहीं पड़ सकता। हमारी आबादीके २५ करोड़से अधिक लोग अपने ही हाथोंसे कातेंगे और इस तरह तैयार हुए सूतका आसपासके स्थानोंमें कपड़ा बुनवा लेंगे। यह आबादी जमीनके साथ बंधी हुई है और उसे साल भरमें कमसे कम चार माह बेकार रहना पड़ता है।

अगर ये लोग इस समयमें सूत कातें और उस सूतका कपड़ा बुनवा कर पहनें, तो उनकी खादीके साथ मिलका कोई कपड़ा स्पर्धा नहीं कर सकता। इस तरह तैयार किया हुआ कपड़ा उनके लिए सस्तेसे सस्ता होगा। ७

कताईके पक्षमें जो दावे किये जाते हैं वे ये हैं:

१. जिन लोगोंको फुरसत है और जिन्हें थोड़ेसे पैसोंकी भी जरूरत है, उन्हें कताईके द्वारा आसानीसे धन्धा मिल जाता है;

२. इसका हजारोंको ज्ञान है;

३. यह आसानीसे सीखी जा सकती है;

४. इसमें लगभग कुछ भी पूंजी लगानेकी जरूरत नहीं होती;

५. चरखा आसानीसे और सस्ते दामोंमें तैयार किया जा सकता है। हममें से अधिकांशको अभी तक यह मालूम नहीं है कि कताई एक ठीकरी और बांसकी खपचीसे यानी तकली पर भी की जा सकती है;

६. लोगोंको इससे अरुचि नहीं है;

७. इससे अकालके समय तात्कालिक राहत मिल जाती है;

८. विदेशी कपड़ा खरीदनेसे भारतका जो धन बाहर चला जा रहा है उसे कताई ही रोक सकती है;

९. इससे करोड़ों रुपयोंकी जो बचत होती है वह अपने-आप सुपात्र गरीबोंमें बंट जाती है;

१०. इसकी छोटीसे छोटी सफलतासे भी लोगोंको बहुत कुछ तात्कालिक लाभ होता है;

११. लोगोंमें सहयोग पैदा करनेका यह अत्यंत प्रबल साधन है। ८

जनसाधारण रुपयेकी कमीके रोगसे इतना कष्ट नहीं भोगते जितना कामकी कमीके रोगसे भोगते हैं। श्रम ही धन है। यदि कोई करोडोंके लिए उनके घरोंमें काम जुटा दे, तो कहना चाहिये कि वह उनके लिए रोटी-कपड़ा या यों कहिये कि रुपया जुटा देता है। चरखा उनके लिए ऐसा ही श्रम सुलभ कर देता है। इसलिए जब तक चरखेसे ज्यादा अच्छी चीज नहीं मिल जाती तब तक चरखा कायम रहेगा। ९

सारी बुराईका बड़ा कारण — उसकी जड़ — बेकारी है। और अगर यह जड नष्ट की जा सके तो दूसरी किसी कोशिशके बिना ही अधिकांश बुराइयोंका सुधार किया जा सकता है। भूखों मरनेवाले राष्ट्रमें आशा या प्रारंभ-शक्ति नहीं रह जाती। वह गन्दगी और बीमारीके प्रति उदासीन हो जाता है। सभी सुधारोंके लिए वह कहने लगता है कि 'इनसे क्या लाभ होगा?' जीवनदायी चरखेके द्वारा ही करोड़ों लोगोंके लिए निराशाका यह अंधकार आशाके प्रकाशमें बदला जा सकता है। १०

चरखा तो शून्यमें से कोई लाभदायी वस्तु उत्पन्न करनेका प्रयत्न करता है। अगर उस चरखेके द्वारा राष्ट्रके साठ करोड़ रुपये हम बचा लेते हैं, और यह हम जरूर कर सकते हैं, तो हम राष्ट्रीय आयमें उतनी विशाल वृद्धि कर देते हैं। इस प्रक्रियामें हमारे गांवोंका संगठन अपने-आप हो जाता है। और चूंकि यह सारी रकम देशके गरीबसे गरीब लोगोंमें ही बांटनी होती है, इसलिए यह योजना इतनी बड़ी संपत्तिके न्यायपूर्ण और लगभग समान बंटवारेकी एक योजना बन जाती है। ऐसे वितरणके नैतिक महत्वको भी यदि समझ लिया जाय, तो चरखेका पक्ष अकाट्य बन जाता है। ११

मैसूर, कुछ स्थानोंमें ऐसे जुलाहे पाये जाते हैं, जिनकी गिनती उनके धंधेके कारण अछूतोंमें की जाती है। वे ज्यादातर बिलकुल खादी मोटी मोटी खादी बुननेवाले हैं। वे तेजीसे नष्ट हो रहे थे। लेकिन खादीने आकर उन्हें बचा लिया और उनके मोटे कपड़ेके लिए मांग पैदा हो गई। उस समय यह पता चला कि बहुतसे हरिजन परिवार ऐसे भी हैं जिनका गुजर कताईसे होता है। इस प्रकार खादी गरीबोंके जीवनमें दो तरहसे बेकारीका काम देती है। वह सबसे गरीब लोगोंकी मददगार है और उनमें हरिजन शामिल हैं। ये लोग गरीबोंमें भी सबसे ज्यादा निःसहाय हैं। इसका कारण यह है कि बहुतसे धंधे, जो दूसरे लोगोंको उपलब्ध हैं, हरिजनोंको उपलब्ध नहीं हैं। १२

जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं, उनके लिए भी मैं चरखा पेश करता हूं। यह घृणा करनेकी चीज नहीं है, क्योंकि यह अनुभवकी बात है। जो आदमी अपने विकारोंको वशमें रखना चाहता है, उसे शान्त रहनेकी जरूरत है। उसकी सारी भीतरी अशान्ति मिट जानी चाहिये। और चरखेकी गति इतनी शांत और सौम्य है कि जो इसे पूरी श्रद्धासे चलाते हैं, उनके सारे विकार शांत हो जाते हैं। . . . मानव-विकारोंका वेग हवाके वेगसे भी ज्यादा होता है। और उन्हें पूरी तरह वशमें रखनेके लिए अपार धीरजकी जरूरत होती है। मेरा तो इतना ही दावा है कि स्थिरता प्राप्त करनेके लिए चरखा उन्हें एक शक्ति-शाली साधन प्रतीत होगा। १३

कताई करोड़ोंका संगठन करके उन्हें एक सम्मिलित सहयोगी प्रयत्नमें लगा देगी, लाखोंकी शक्तिकी रक्षा और उसका उपयोग करेगी और करोड़ों जीवनोंको मातृभूमिकी सेवामें समर्पित करेगी। इसके सिवा, इतने बड़े भगीरथ कार्यको करनेसे हमें स्वयं अपनी शक्तिका साक्षात्कार हो जायगा। इसका यह अर्थ है कि कताई द्वारा सामने आनेवाली असंख्य पेचीदा समस्याओं और तफसीलकी बातों पर हमारा पूरा नियंत्रण हो जायगा। उदाहरणार्थ, हम पाई पाईका हिसाब रखना सीखेंगे, देहातमें स्वच्छता और स्वास्थ्यपूर्ण स्थितिमें रहना सीखेंगे, अपने रास्तेकी रुका-वटोंको दूर करेंगे इत्यादि। कारण, अगर हम ये सब बातें नहीं सीखेंगे,

तो यह काम पूरा नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार चरखेसे हमें अपने भीतर यह क्षमता उत्पन्न करनेका साधन मिल जाता है। १४

उपयोगी मालूम होनेवाले सारे उद्योगोंको एक-एक कर छांटते छाटते हम इस अनिवार्य परिणाम पर पहुंचते हैं कि लाखों लोगोंके लिए एकमात्र सार्वत्रिक उद्योग कताई ही है, दूसरा कोई नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरे उद्योगोंका कोई महत्त्व नहीं या वे निकम्मे हैं। सच तो यह है कि व्यक्तिगत दृष्टिकोणसे कोई भी दूसरा उद्योग कताईसे ज्यादा आमदनी देनेवाला होता है। घड़ियां बनाना बेशक एक अत्यत आयवर्धक और मोहक उद्योग होगा। परन्तु उसमें कितने आदमी लग सकते हैं? क्या वह लाखों ग्रामीणोंके लिए किसी कामका है? परन्तु यदि ग्रामवासी अपने घरकी पुनर्रचना कर लें, अपने बाप-दादोंकी तरह फिरसे रहना शुरू कर दें, अपने बेकारीके समयका सदुपयोग करने लगें, तो अन्य सारे उद्योग अपने-आप पुनर्जीवित हो जायेंगे। १५

चरखेका पुनरुद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक बुद्धि और देशभक्तिवाले निःस्वार्थ भारतीयोंकी एक सेना चरखेका सन्देश गांवोंमें फैलाने और उनकी निस्तेज आखोंमें आशा और प्रकाशकी किरण जगानेके लिए दत्तचित्त होकर काम न करने लगें। यह सच्चे सहयोग और प्रौढ़-शिक्षाका विशाल प्रयत्न है। उससे चरखेकी शात परन्तु प्राणदायक गतिकी तरह ही एक शात और निश्चित क्रान्ति आती है।

चरखेके कामके २० वर्षके अनुभवने मुझे अपनी इस बातके सही होनेका विश्वास करा दिया है। चरखेने गरीब हिन्दुओं और मुसलमानोंकी लगभग एकसी सेवा की है। उसके द्वारा हमने शोरगुल मचाये बिना इन लाखों देहाती कारीगरोंकी जेबमें लगभग ५ करोड़ रुपया पहुंचाया है।

इसलिए मैं निःसकोच कहता हूं कि चरखा हमें सब धर्मोंके सामान्य अनुयायियोंको लाभ पहुचानेवाले स्वराज्य तक पहुंचा देगा। चरखेसे गांवोंको फिरसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो जाता है और ऊंच-नीचके भेदभाव मिट जाते हैं। १६

चरखा व्यापारिक युद्धकी नहीं परन्तु व्यापारिक शान्तिकी निशानी है। संसारके राष्ट्रोंके लिए उसका सन्देश दुर्भावका नहीं, परन्तु सद्भाव और स्वावलम्बनका है। उसे संसारकी शांतिके लिए खतरा बननेवाली या उसके साधनोंका शोषण करनेवाली किसी जलसेनाके संरक्षणकी जरूरत नहीं होगी; परन्तु उसे जरूरत होगी ऐसे लाखों लोगोंके धार्मिक निश्चयकी, जो अपने अपने घरोंमें उसी तरह सूत कात लें जैसे आज वे अपने अपने घरोंमें अपना भोजन बना लेते हैं। मैंने ऐसी अनेक भूलें की हैं, जिनके लिए मैं भावी संतानोंके शापका भाजन बन सकता हूं। परन्तु मुझे विश्वास है कि चरखेका पुनरुद्धार सुझाकर तो मैं उनके आशीर्वादका ही पात्र बना हूं। मैंने उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है, क्योंकि चरखेके हरएक चक्करमें शान्ति, सद्भाव और प्रेम भरा है। १७

मेरा यह दावा है कि (खादी और दूसरे ग्रामोद्योगोंका पुनरुद्धार करके) हम इतना विकास कर लेंगे कि आम लोगोंके दिलोंमें सादगी और घरेलूपनका जो आदर्श बसा हुआ है, उसके अनुरूप हम राष्ट्रीय जीवनका पुनर्निर्माण कर सकें। फिर हम ऐसे साम्राज्यवादमें नहीं घसीटे जायेंगे, जिसकी बुनियाद संसारकी कमजोर जातियोंके शोषण पर है; और न हमें ऐसी मदोन्मत्त बनानेवाली भौतिकतावादी संस्कृतिको स्वीकार करना होगा, जिसकी रक्षा शांतिपूर्ण जीवनको लगभग असंभव बना देनेवाली जलसेना और वायुसेना करती है। इसके विपरीत, हम उस साम्राज्यवादको परिष्कृत करके राष्ट्रोंका ऐसा संघ बना लेंगे, जिसमें संसारको अपनी उत्तम वस्तु देनेके लिए और जगतके कमजोर राष्ट्रों या जातियोंकी पशुबलके बजाय स्वयं कष्ट उठाकर रक्षा करनेके लिए सारे राष्ट्र सम्मिलित होंगे। यह कायापलट चरखेकी पूर्ण सफलताके बाद ही हो सकता है। भारत ऐसा सन्देश देनेके योग्य तभी हो सकता है जब वह अन्न और वस्त्रकी अपनी दो मुख्य आवश्यकताओंके बारेमें आत्म-निर्भर होकर प्रलोभनसे मुक्त और इसलिए बाहरी आक्रमणोंसे सुरक्षित हो जाय। १८

जब हम एक बार (खादीके) उद्योगका पुनरुद्धार कर लेंगे, तो अन्य सब उद्योगोंका उद्धार अपने-आप हो जायगा। मैं चरखेको आधार बनाकर

सम्यक् ग्राम-जीवनकी रचना करना चाहूंगा; मैं चरखेको केन्द्र बनाकर ऐसी व्यवस्था करूंगा कि उसके चारों ओर दूसरे उद्योग पनपते रहें। १९

खादीका आदर्श सदा ही ग्रामोंके पुनरुद्धारका सबसे उत्तम साधन रहा है। इसके जरिये गरीबोंमें सच्ची शक्ति पैदा होगी, जिससे स्वराज्य अपने-आप आ जायगा। २०

मुझे अपना अनुभव बताता है कि खादीको शहरों और गांवों दोनोंमें सर्वव्यापी बनानेके लिए यह जरूरी है कि खादी सूतके बदलेमें ही मिले। जैसे जैसे समय बीतेगा मुझे आशा है कि लोग स्वयं सूतके सिक्के द्वारा खादी खरीदनेका आग्रह रखेंगे। लेकिन ऐसा न हुआ और लोगोंने सूत अनिच्छासे पैदा किया, तो मुझे डर है कि अहिंसाके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना असंभव हो जायगा।

यह निश्चित है कि मिलों और शहरोंकी संख्या बढ़नेसे हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंकी समृद्धि नहीं बढ़ेगी। उलटे, उससे बेकारोंकी गरीबी ज्यादा बढ़ जायगी और भूखसे पैदा होनेवाले सारे रोग बढ़ जायंगे। अगर इस दृश्यको शहरोंमें रहनेवाले लोग शान्तचित्त होकर देख सकें, तब तो कहनेको कुछ नहीं रह जाता। वैसी सूरतमें भारतमें सत्य और अहिंसाका राज्य न होकर हिंसाका बोलबाला हो जायगा। और हमें मान लेना पड़ेगा कि कुदरती तौर पर खादीके लिए भारतमें कोई स्थान नहीं है। फिर तो सबके लिए फौजी तालीम अनिवार्य हो जायगी। परन्तु हमें करोड़ों भूखोंकी दृष्टिसे सोचना चाहिये। अगर उन्हें फिरसे जीवन-दान देना है, उन्हें जिन्दा रखना है, तो चरखेको हमें मुख्य प्रवृत्ति बनाना पड़ेगा और लोगोंको स्वेच्छासे कातना होगा। २१

हमारे कामका आरंभ छोटीसी बातसे हुआ था। जबसे मैंने चरखेका काम शुरू किया तबसे मेरे साथ विट्ठलदासभाई और चन्द बहनें थीं। उनको मैं अपनी बात समझा सका था। मगनलालभाई आदि दूसरे भी थे। वे जाते तो वहां जाते, उनको तो मेरे ही साथ जीना था—मरना था।

आज करोड़ दो करोड़ आदमी चरखेके असरमें आ गये हैं। चरखेमें स्वराज्य पानेकी शक्ति है, ऐसा हम आज तक कहते आ रहे हैं।

चरखेके द्वारा इतने सालोंमें देहातके लोगोंके बीच काफी पैसा भी हम पहुंचा पाये हैं। क्या आज भी हम ऐसा कह सकते हैं कि चरखेके बिना स्वराज्य नहीं आ सकता? जब तक हम अपना यह दावा सिद्ध नहीं कर सकते तब तक चरखा चलाना हमारे लिए एक लाचारीका सहारा-मात्र बन जाता है। वह मुक्तिमंत्र नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि हम हमारी यह बात करोड़ोंको नहीं समझा पाये हैं। आज उन करोड़ोंमें चरखेके विषयमें न जिज्ञासा है, न ज्ञान।

कांग्रेसने चरखा अपनाया था सही, लेकिन क्या उसने वह अपनी खुशीसे अपनाया था? नहीं, वह तो चरखेको मेरे खातिर बरदाश्त करती है। समाजवादी तो उसकी (चरखेकी) हंसी उड़ाते हैं। उसके खिलाफ उन्होंने व्याख्यान भी दिये हैं, लिखा भी काफी है। उनका प्रत्यक्ष उत्तर हमारे पास नहीं है। मैं उनको कैसे विश्वास दिलाऊं कि चरखेसे स्वराज्य हासिल हो सकता है। इतने वर्षोंमें तो मैं नहीं बता सका कि इस इस प्रकारसे हमारा दावा सिद्ध हो सकता है।

अब तीसरी बात। अहिंसा तो कोई आकाशकी चीज नहीं है। अगर वह आकाशकी चीज है तो मेरे कामकी नहीं। मैं पृथ्वीमें से आया हूं और उसीमें मुझे मिल भी जाना है। अगर अहिंसा सचमुच ही कोई चीज है, तो उसका दर्शन, मेरे पैर पृथ्वी पर हैं इसी बीच, मैं करना चाहता हूं। करोड़ों लोग जिसका पालन कर सकें ऐसी अहिंसा मुझे चाहिये। जिस समाजमें कोमलता आदि गुण बसते हैं, वहां अहिंसा न होगी तो कहां होगी?

हिंसावादीके घर पर जाओ तो देखोगे कि कहीं शेरका चमड़ा टंगा है, तो कहीं हिरनके सींग। दीवार पर तलवार है, बन्दूक है। मैं वाइसरॉयके घर गया हूं; मुसोलिनीके यहां भी मुझे ले गये थे। वहां देखा कि चारों ओर शस्त्र लगे हुए हैं। मुझे शस्त्रोंकी सलामी दी गई, क्योंकि वही उनका प्रतीक है।

उसी प्रकार हमारे लिए अहिंसाका प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाला प्रतीक चरखा है। लेकिन हम जब वैसा ही कार्य कर बतायेंगे तब न वह सिद्ध होगा? मुसोलिनीके दरबारमें तलवार थी। वह कहती थी — अगर

तुम मुझे छुओगे तो मैं काट डालूंगी। उसमें हिंसाका प्रत्यक्ष दर्शन हो सकता है। यह कहती है, मुझे छुओ और मेरा प्रताप देखो। उसी प्रकार हमें चरखेका प्रताप सिद्ध करना चाहिये कि चरखेके दर्शनमात्रसे अहिंसाका दर्शन हो जाय। लेकिन आज हम कगाल बने बैठे है। समाजवादियोंको क्या जवाब दें? वे कहते हैं, इतने वर्षोंसे आप चरखा-चरखा रटते रहे। आपने कौनसी सिद्धि हासिल की?

मुसलमानोंके वक्त भी चरखा चलता था। उन दिनों ढाकाकी मलमल निकलती थी। तब भी चरखा कगालियतकी ही निशानी थी, अहिंसाकी नहीं। बादशाह लोग औरतोंसे और नीचसे नीच वर्गके लोगोंसे बेगार कराते थे। बादमें ईस्ट इंडिया कपनीने भी वही किया। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें भी यही बात कही गई है। तबसे ही चरखा हिंसा और जोर-जबरदस्तीका प्रतीक बन रहा था। चरखा चलानेवालेको मुट्ठीभर अनाज या दो दमडिया मिलती थी। और उसमें से प्राप्त मलमल गजो पहनने पर भी बादशाहोंकी स्त्रिया विवस्त्र दिखाई देती थीं।

लेकिन आपको जो चरखा मैंने दिया है वह अहिंसाके प्रतीकके तौर पर दिया है। अगर यह बात इसके पूर्व मैंने आपको नही कही तो वह मेरी त्रुटि है। मैं पगु हू, आहिस्ते आहिस्ते चलनेवाला हू। तो भी मैं जानता हूं कि आज तक जो काम हुआ वह बेकार नही गया है।

अब चौथी बात। बगैर चरखेके स्वराज्य प्राप्त नही हो सकता, यह बात हमने सिद्ध नही की है। काग्रेसवालोंको यह बात न समझा सको तब तक वह सिद्ध नही होनेवाली है। चरखा और काग्रेस एक-दूसरेके पर्यायवाची शब्द बनने चाहिये।

अहिंसाके प्रतिपादनका काम कठिन है। जब तक हम उसकी तह-में न घुस जायं तब तक उसकी सचाई हमारे ध्यानमें नही आयगी। आज तक मैंने जो कुछ कहा सबका मैं समर्थन करता आया हू। जगत मेरी परीक्षा करनेवाला है। अगर मेरी इस चरखेकी बातमे वह मेरी मूर्खता सिद्ध करे तो हर्ज नहीं है। जो चरखा सदियों तक कगालियत, लाचारी, जुल्म, बेगारीका प्रतीक रहा, उसे हमने आधुनिक ससारकी सबसे बड़ी अहिंसक शक्ति, संगठन तथा अर्थ-व्यवस्थाका प्रतीक बनानेका

बीड़ा उठाया है। हमने उलटी बात गुत्थी बना दी है। और यह सब मैं आपसे मालूम करना चाहता हूं।

ये सब बातें समझकर भी यदि आप ऐसा नहीं मानते कि चरखे-में स्वराज्य पानेकी शक्ति है, तो आप मुझे छोड़ दें। इसमें आपकी परीक्षा है। श्रद्धा न होते हुए भी अगर आप मुझे धोखा देंगे, तो देशका बड़ा अकल्याण करेंगे। मेरे अंतके दिनोंमें आप मुझे धोखा न दें, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।

यदि आज तककी कार्य-प्रणालीमें दोष रहा हो, तो उसका जिम्मेदार मैं हूं। क्योंकि यह सब जानते हुए भी मैं उसका प्रमुख रहा हूं। लेकिन हम अब गई-गुजरी सब छोड़ दें। क्या आज हम सच्चे दिलसे मानते हैं कि चरखा अहिंसाका प्रतीक है? जो लोग दिलकी तहसे मानते हैं कि चरखा अहिंसाका प्रतीक है, ऐसे हममें कितने हैं?

यह जो आपका तिरंगी झंडा है, वह क्या है? इतने गज चौड़ा, इतने गज लम्बा एक खादीका टुकड़ा है? इसके बदलेमें आप दूसरा भी तो लगा सकते हैं। लेकिन इसमें भावना भरी पड़ी है, इसने भावना पैदा की है, इसके पीछे मरनेकी आपकी ख्वाहिश रही है। वह स्वराज्य-का प्रतीक है, जातीय समझौतेका वह प्रतीक है। उसे हम नहीं भुला सकते, नहीं मिटा सकते। उसी प्रकार अहिंसाका प्रतीक यह चरखा है।

इस चरखेके नाम पर मेरे विचारका स्रोत आप लोगों पर बहा रहा हूं। इसे स्वावलम्बन कहो या जो कुछ कहो। राष्ट्रीय संगठन और स्वावलम्बनके नाम पर खुद पश्चिमी मुल्कोंमें और उन मुल्कोंकी ओरसे करोड़ों लोगोंका रक्त-शोषण हो रहा है। वैसा स्वावलम्बन हमारा नहीं है। यह तो अशोषणका, शोषणसे और जोर-जबरदस्तीसे मुक्ति पानेका तरीका है। मेरा मतलब शब्दोंसे नहीं है, चीजसे है। फिर भी शब्दोंमें चमत्कार भरा होता है। शब्द भावनाको देह देता है और भावना शब्दके सहारे साकार बनती है। हमारे धर्ममें साकार-निराकारका झगड़ा हमेशा चलता आया है। साकारवादी सगुण भक्तिको श्रेष्ठ मानता है। इस भावनाके अनुसार यदि अहिंसाकी उपासना करनी है, तो चरखेको उसकी साकार मूर्ति — उसका प्रतीक — मान कर उसे आंखोंके सामने रखना

चाहिये। मैं अहिंसाका दर्शन करता हू तब चरखेका ही दर्शन पाता हूं। जो निराकारवादी है वह तो कहेगा कृष्ण कौन है? वह तो पहाड़ोंकी चोटी पर और आसमानके बादलों पर पैर रख कर चलनेवाला है। हम पृथ्वी पर चलनेवाले हैं। हम हमारी मर्यादाको समझकर चुन लेते हैं कि ऐसी कौनसी चीज है, जो हमारे लिए साकार ईश्वरका — हमारी अमूर्त श्रद्धा और भावनाका — प्रतीक हो सकती है। यदि आप इस सत्यका दर्शन कर सकते है, तो मेरे कथनकी दृढ़ताको समझ जायगे। जाजूजीसे भी इतनी दृढ़तासे मैंने आगे कभी बातें नहीं की थी। जेराजानी कहते हैं, मैं जल्दबाजी कर रहा हू। किन्तु चरखेकी मेरी उपासनाके पीछे जो भावना है उसको अपने दिलोंमें स्थान दिये बिना सौ वर्षमें भी अहिंसाका दर्शन न होगा। मुझे चरखेमें अहिंसाकी शक्तिका जो दर्शन हुआ है वह आप जब मेरे जैसा हृदय लेकर उसके पास जायेंगे, उसे घुमायेंगे, तभी न होगा? इसलिए मैं कहता हू कि या तो मुझे छोड दो या मेरा साथ दो। अगर मेरे साथ चलना है तो मैं आपको योजना दूगा, सब कुछ करूगा। अगर अभी आप यह सब समझ नही पाये हैं, तो सारा दिन आपके साथ बैठूगा। बिना समझे आप कहेंगे कि समझ गये, तो आप धोखा खायेंगे और मुझे धोखा देंगे। हमने कोई शिवजीकी बरात जमा नहीं की है। हम ऐसे पामर थोड़े ही बन गये हैं जो कैसे भी रूखे-सूखे टुकडेके लिए पड़े रहेंगे। देशमें सेवाके काम ढेरों पडे है, अनेकों मार्ग मौजूद है। मेरी श्रद्धा मुझे ऊचे ले जायगी, आपको नहीं। इसलिए धोखेमें मत रहिये। मुझे अपना रास्ता काटने दीजिये। यदि यह साबित हुआ कि मैं धोखेमें रहा, मेरी चरखेके विषयकी मान्यता निरी मूर्तिपूजा थी, तो या तो आप उसी चरखेकी लकड़ियोंसे मुझे जलायेंगे, या मैं ही खुद उस चरखेको अपने हाथोंसे जलाऊगा।

अगर चरखा-संघको मिटना है तो अपने ही हाथों उसे बन्द कर दीजिये। इससे सारी झंझट अपने-आप मिट जायगी, जैसे सूरजके सामने ओस। फिर जिस चरखेने हमें रौंध रखा है — फंसा रखा है, वह चंद लोगोंके हाथमें रह जायगा। तब शायद उनके हाथों वह एक बड़ा शस्त्र भी साबित हो। अगर आप उसे मूर्खताभरी चीज मानते,

हैं, तो मैं एक मूर्खोंका संघ चलाना और हिन्दुस्तानको गिराना नहीं चाहता। अगर आप इस चरखेमें से अहिंसाका दर्शन करा सकेंगे, तो फिर आपका चरखा सिर्फ चलेगा नहीं वल्कि दौड़ने लगेगा। तव आपको उसे जिन्दा रखनेकी फिक्र करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

आपसे मैं फिर कहता हूं कि या तो मेरा साथ आप छोड़ दें, या नई चीजको ग्रहण करके मेरे साथ चलें। दो वर्षकी तपश्चर्याके बाद यह नई चीज लेकर मैं आया हूं। वह आपको दे सकूंगा या नहीं इसका मुझे पता नहीं है। लेकिन देनेकी चेष्टा तो कर ही रहा हूं। अव आपको मेरा साथ देना कठिन हो रहा है। अगर मैं आपको समझा सका हूं तो एक चीज कीजिये। आजकी तारीखसे जो मेरे साथ रहना चाहते हैं वे मुझको लिख दें कि चरखेको हम अहिंसाका प्रतीक मानते हैं। आज आपको निर्णय करना ही है। अगर आप चरखेको अहिंसाका प्रतीक नहीं मानते, नहीं मान सकते, तथापि आप मेरा साथ देते रहेंगे, तो खुद तो खतरेमें पड़ेंगे ही और मुझे भी डुबो देंगे। २२

खादीका एक युग समाप्त हो गया। खादीने गरीवोंके लाभके लिए कुछ करके दिखा दिया। अव हमें यह दिखाना होगा कि गरीब स्वावलम्बी कैसे बन सकते हैं। २३

मैंने देखा कि जव तक चरखेका संदेश हम घर घर नहीं पहुंचाते तव तक हमारा काम अधूरा ही रहेगा। २४

हम सव यही मानें कि चरखा ही अन्नपूर्णा है। अगर चालीस करोड़ जनता यह समझ जाय, तो फिर चरखेकी प्रवृत्तिके लिए एक कौड़ी भी लगानेकी जरूरत नहीं। फिर सल्तनतकी ओरसे निकलनेवाले फरमानोंसे घवड़ानेका कोई कारण नहीं। पूंजीपतियोंके मुंहकी ओर ताकनेकी जरूरत नहीं। हम खुद ही केन्द्र वन जायेंगे और लोग दौड़ते हुए हमारे पास आयेंगे। काम ढूंढ़नेके लिए उन्हें कहीं जाना न होगा। हरएक गांव आजाद हिन्दुस्तानका एक एक चक्रविन्दु वन जायगा। वम्वई, कलकत्ता जैसे शहरोंमें नहीं, किन्तु सात लाख देहातोंमें, चालीस करोड़ जनतामें, आजाद हिन्दुस्तान विभक्त हो जायगा। फिर हिन्दू-मुसलमानका मसला, अस्पृश्यताकी समस्या, झगड़े-फसाद, गलतफहमियां, प्रतिस्पर्धा

कुछ न रहेगी। इसी कामके लिए सबकी हस्ती है। इसीलिए हमको जीना है और मरना भी है। २५

पहला स्थान चरखेका है। उसकी साधनासे ही ग्रामोद्योग, नई तालीम आदि अन्य दूसरी चीजें पैदा हुई हैं। अगर हम बुद्धिपूर्वक चरखे-को अपना लेंगे, तो देहातोंको फिरसे जिन्दा कर सकते हैं। २६

चरखेके द्वारा हम इतने सालोंमें देहातके लोगोंके बीच काफी पैसा भी पहुँचा पाये हैं। क्या आज भी हम कह सकते हैं कि चरखेके बिना स्वराज्य नहीं आ सकता? जब तक हम अपना यह दावा सिद्ध नहीं कर सकते तब तक चरखा चलाना हमारे लिए एक लाचारीका सहारा मात्र बन जाता है। वह मुक्तिमंत्र नहीं हो पाता। २७

अब मैं देखता हूं कि अकेली खादी ग्रामोंका उत्थान नहीं कर सकती। सारे ग्राम-जीवनको, सारे ग्रामोद्योगोंको जीवित करके ही ग्राम-वासियोंको हम उद्यमशील बना सकेंगे। और तब ही ग्रामोंका उत्थान होगा। २८

खादी केवल रोजी देनेवाला एक उद्योग भर है, इस खयालको हम छोड़ दें। २९

खादीको आगे बढ़ानेके पीछे कारण यह है कि आज लोगोंमें जो आलस्य घर कर बैठा है उसे हटानेका खादी एक बड़ा साधन है। वह जनतामें स्वराज्यकी शक्ति पैदा करनेवाली चीज है। दूसरी चीजोंको भी वैसी ही बना लेंगे तभी गाव स्वावलंबी बनेंगे। ३०

लेकिन हमें जो सिद्ध करना है वह तो खादीके पूरे, समूचे अर्थ-शास्त्रकी अनिवार्यता है। ३१

सच्चा उत्सव (चरखा-जयन्तीका) तो तभी मनाया जायगा, जब अहिंसा और आजादीके प्रतीकके रूपमें यह चरखा घर घर गूंजेगा। अगर कुछ गरीब बहनें, चाहे वे एक करोड़ ही क्यों न हों, दो पैसे कमानेके लिए कातती हैं, तो उसका उत्सव क्या मनाया जाय? उसमें ऐसा बड़ा भारी — भगीरथ — काम भी क्या हुआ? ऐसा तो अत्याचारी राज्यमें भी हो सकता है। पूंजीवादमें तो ऐसा दिखावा नजर आता ही है।

करोड़पतिको अपना बड़प्पन बनाये रखनेके लिए गरीबोंको थोड़ा दान देना ही पड़ता है, फिर वह दान किसी मजदूरीके रूपमें ही क्यों न हो?

उत्सव तो तभी शोभा देगा जब गरीब और अमीर सब समझेंगे कि ईश्वरकी नजरमें सब समान हैं, ऊंची जगह पानेके लिए सबको मजदूरी करनी है और सबकी आजादीकी रक्षा गोला-बारूद नहीं, बल्कि सूतकी गोली करेगी — हिंसा नहीं, अहिंसा करेगी। ३२

देशी और विदेशी दोनों प्रकारके मिलके कपड़ेकी कीमत तीन सौ करोड़ तक पहुंचती है। अगर ३०० करोड़ रुपयेका यह कपड़ा हम यहां हिन्दुस्तानके गांवोंमें अपने हाथों पैदा कर लें, तो आप सब सोचिये और समझिये कि हिन्दुस्तानको कितना धन मिल जायगा! हमारे लिए तो यह सोनेके सिक्कोंकी एक टकसाल ही है। अगर सब लोग खादी बरतने लग जायं, तो हमारे गांवोंकी वह तरक्की हो जो आज तक कभी न हुई थी। आज हमारी आम जनता अपार गरीबीमें फंसी है, और उसकी आंखोंमें वृद्धि या आशाकी कोई चमक नजर नहीं आती। कातनेवालोंके शुद्ध हाथ उनके लिए यह चमत्कार पैदा कर सकते हैं। और उसमें सब कोई मदद कर सकते हैं। मोटी और खुरदरी होने पर भी खादीके लिए आपको अपने भीतर इतनी सहृदयता और समझदारी पैदा करनी होगी कि आप अपने दिलसे और अपनी आंखोंसे उसकी सुन्दरताको अनुभव कर सकें और उसकी प्रशंसा कर सकें। अगर ऐसा हुआ तो आप मिलोंके उस महीन और मुलायम कपड़ेके मोहमें हरगिज न फंसेंगे, जो सच्चे मानोंमें आपकी लाज कभी ढंक नहीं पाता। अपनी लाज ढंकने और अपने देशसे भुखमरीको देशनिकाला देनेका एक ही उपाय है, और वह यह है कि आप अपनी जरूरतका अनाज स्वयं पैदा कर लें और अपना कपड़ा अपने हाथों बना लें। अगर यह अत्यंत सुखद सफलता हम प्राप्त कर लें, तो सारी दुनियाकी आंखें हिन्दुस्तानकी तरफ मुड़ जायें। ३३

यहां जो चरखा-क्लास जोर-शोरसे चल रहा है, उसके सामने मुझे और सब बातें बेजान और फीकी मालूम होती हैं। क्योंकि उसमें चरखे पर कतनेवाले एक एक तार पर मुझे मेरा राम नाचता दिखाई पड़ता है। उसमें मुझे स्वराज्यके दर्शन होते हैं। जब मैं चालीस करोड़ हाथोंसे

काते गये सूतके तारकी शक्ति और उसके प्रभावकी कल्पना करता हूं, तो मेरा हृदय आनन्दसे उछलने लगता है। लेकिन आप हमसे और कहेंगे कि जाने भी दीजिये इस बातको! यह कभी हो ही नहीं सकता कि बीस करोड़ हिन्दुस्तानी कातने लगें। लेकिन क्या इस चीजको माननेसे इनकार करके हम अपना अज्ञान प्रकट नहीं करते? क्या इससे हमारी श्रद्धाकी कमी सिद्ध नहीं होती? क्या यह आशा नहीं रखी जा सकती कि हमारी समूची आबादीका आधा भाग रोज एक घंटा कातेगा? अगर अपनी मातृभूमिके लिए इतना त्याग करनेकी भी हमारी तैयारी और शक्ति न हो, तो हम उसके प्रेमकी जो डींगें हांकते हैं उनका आखिर क्या मतलब है? ३४

२०

अन्य ग्रामोद्योग

ग्रामोद्योग क्यों?

१९२० में जब मैं स्वदेशी-आन्दोलनका श्रीगणेश करने जा रहा था तब मेरी श्री फजलभाईसे चर्चा हुई थी। वे चतुर आदमी थे, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा, 'यदि आप कांग्रेसी लोग हमारे मालका विज्ञापन करनेवाले एजेंट बनेंगे, तो हमारे मालकी कीमत बढ़ानेके सिवा आप देशका और कोई लाभ न कर सकेंगे।' उनकी दलील ठीक थी। लेकिन मैंने उनसे कहा, 'मैं तो केवल हाथकती और हाथबुनी खादीको ही बढ़ावा देनेवाला हूं। यह उद्योग लगभग नष्ट जैसा हो गया है। लेकिन अगर करोड़ों भूखसे पीड़ित और बेकार लोगोंको काममें लगाना हो, तो इस उद्योगको फिरसे सजीव किये बिना चारा नहीं।' मेरी यह बात सुनकर वे शांत हो गये।

परन्तु केवल खादी ही ऐसा उद्योग नहीं है, जो जीनेके लिए संघर्ष कर रहा हो। इसलिए मैं आपको यह सुझाता हूं कि छोटे और अव्यवस्थित उन सारे ग्रामीण उद्योगोंकी ओर आपको ध्यान देना चाहिये, जिन्हें

प्रजाके प्रोत्साहनकी जरूरत है। अगर इनको बढ़ावा देने और टिकाये रखनेके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया, तो ये नष्ट हो जायंगे। आज बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योग अपने मालको तेजीसे बाजारोंमें पहुंचा रहे हैं और इन छोटे उद्योगोंमें से कुछको पीछे धकेल रहे हैं। वास्तवमें इन्हीं छोटे उद्योगोंको आपकी मददकी जरूरत है। १

यदि हम छोटे पैमाने पर चलनेवाले उद्योगोंकी मदद करते हैं, तो हम राष्ट्रीय सम्पत्तिमें वृद्धि करते हैं, इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। इन गृह-उद्योगोंको प्रोत्साहन और संजीवन देनेमें ही सच्चा स्वदेशीपन है, इसमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं है। करोड़ों मूक लोगोंकी मदद करनेका यही एकमात्र मार्ग है। इसीसे लोगोंकी सर्जन-शक्ति और कला-कारीगरीके विकासका द्वार खुल सकता है। देशमें जो सैकड़ों युवक बेकार पड़े हैं, उन्हें इससे अनेक उपयोगी व्यवसाय मिल सकते हैं। आज हमारी जो शक्ति व्यर्थ ही बरबाद हो रही है, उसका इस काममें उपयोग हो सकता है। मैं ऐसा नहीं चाहता कि आज जो लोग दूसरे उद्योग-धंधोंमें अधिक कमाते हों, वे अपने धंधोंको छोड़कर इन छोटे उद्योगोंको अपना लें। जो बात मैंने चरखेके विषयमें कही थी वही इसके बारेमें भी कहता हूं कि जो लोग बेकारी और गरीबीसे पीड़ित हैं, वे इनमें से किसी उद्योगको अपना लें और अपनी मामूली-सी आमदनीमें थोड़ी वृद्धि करें।

इस परसे देखा जा सकता है कि मैं आपको अपनी प्रवृत्तिमें जो परिवर्तन करनेकी बात सुझाता हूं, उसमें बड़े उद्योगोंके हितके साथ किसी प्रकारका संघर्ष नहीं रहता। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि आप राष्ट्रीय सेवक अपनी प्रवृत्ति केवल छोटे उद्योगों तक ही सीमित रखें और बड़े उद्योग जिस प्रकार आज तक अपनी संभाल रखते आये हैं उसी प्रकार उन्हें रखने दें। मेरी कल्पना तो यह है कि छोटे गृह-उद्योग बड़े उद्योगोंको हटाकर उनकी जगह नहीं लेंगे, बल्कि उसमें पूर्ति करेंगे। २

कपड़ेकी, शक्करकी और चावलकी मिलोंको हमारी मददकी जरूरत नहीं है। किन्तु यदि हम बिनमांगी मदद इन मिलोंको देते रहेंगे, तो चरखा, करघा, खादी, गन्ना पेरनेका कोल्हू, जीवनप्रद तथा पोषक तत्त्वोंसे

भरा हुआ गुड़ और इसी तरह ओखली-मूसलका कुटा चावल — गावकी इन सब चीजोंका हम नाश कर देंगे । इसलिए यह शोध करते रहना हमारा स्पष्ट कर्तव्य है कि गांवके चरखेको, गावके कोल्हूको और गावकी ओखलीको किस रीतिसे जिन्दा रखा जा सकता है। चरखे, कोल्हू और ओखलीके ही मालका प्रचार किया जाय, उसके गुणोको बतलाया जाय, उनमें काम करनेवाले लोगोकी स्थितिकी जाच की जाय और बिजलीसे चलनेवाली मिलो द्वारा बेकार बनाये हुए कारीगरोंकी गणना की जाय, इन साधनोंमें उनके ग्रामीण रूपको कायम रखकर सुधार करनेके तरीके ढूंढे जायं तथा मिलोकी प्रतिस्पर्धाका मुकाबला करनेमें उनको मदद पहुचाई जाय । गांवके इन उद्योग-धंधोंके सम्बन्धमें हमने कितनी भयकर और अक्षम्य उपेक्षा दिखाई है! इन उद्योगोंको जिन्दा रखनेके प्रयासमें कपड़े, शक्कर या चावलकी मिलोंके साथ कोई झगड़ा नही है। विदेशी कपड़ा, विदेशी शक्कर या विदेशी चावलकी अपेक्षा अपने देशकी मिलोंमें बना हुआ कपडा, शक्कर या चावल हमें काममें लाना चाहिये। अगर विदेशी स्पर्धाके मुकाबलेमें खड़े रहनेकी उनमें शक्ति न हो, तो उन्हें पूरी मदद भी मिलनी चाहिये । परन्तु आज तो ऐसी किसी मददकी जरूरत देशी मिलोके मालको नही है । विदेशी मालसे देशी मिलोका माल अच्छी तरह टक्कर ले रहा है । मददकी आवश्यकता तो आज ग्रामीण उद्योगोको है। बचेखुचे ग्रामोद्योगोंमें लगे हुए लोगोकी हमें रक्षा करनी है और विदेशी या स्वदेशी मिलोके आक्रमणसे उन्हें बचाना है। सभव है कि खादी, गुड़ और ओखलीका कुटा चावल मिलके मालसे घटिया हों और इसीलिए वे उसके मुकाबलेमें न टिक सकते हों। लेकिन असल बात तो यह है कि खादीके उद्योगके बारेमें जितनी खोज हुई है, उतनी गुड और हाथकुटे चावलके धंधेमें लगे हुए हजारों आदमियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें नही हुई है। ३

मैंने बड़े पैमाने पर चलनेवाले संगठित उद्योगोंको इस कारण नही छोड़ दिया है कि वे स्वदेशी नही हैं, लेकिन इसलिए कि उन्हें किसी खास मददकी जरूरत नही है। वे अपने पैरों पर खड़े रह सकते हैं और आजकी जाग्रतिकी अवस्थामें उनका माल आसानीसे बाजारमें खप सकता है।

संक्षेपमें, मैं इतना ही कहूंगा कि हमें अपने नित्यके उपयोगके लिए सिर्फ वे ही चीजें खरीदनी चाहिये जो कि गांवोंमें बनती हों। हो सकता है कि गांवकी बनी चीजें अभी भद्दी या बेडौल हों। तब हमें चाहिये कि हम गांवोंकी कारीगरीको प्रोत्साहन देनेका प्रयत्न करें, न कि यह दलील सामने रखकर उन चीजोंको लेनेसे इनकार कर दें कि विदेशी अथवा बड़े बड़े कल-कारखानोंकी बनी स्वदेशी चीजें गांवकी चीजोंसे कहीं बढ़िया होती हैं। असल बात यह है कि ग्रामवासियोंकी सोई हुई कारीगरी या कला.पूर्ण प्रतिभाको हमें जाग्रत कर देना चाहिये। सिर्फ इसी एक तरीकेसे हम उस भारी ऋणको थोड़ा-बहुत चुका सकेंगे, जो कि गांववालोंका हमारे ऊपर चढ़ा हुआ है। इस विचारसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं कि ऐसे प्रयत्नमें हम कभी कामयाब हो सकेंगे या नहीं। हमें अपने ही युगकी ऐसी मिसालें याद आ सकती हैं जब यह ज्ञान हो जानेके बाद कि अमुक काम देशकी तरक्कीके लिए अत्यंत आवश्यक हैं, हमारे मार्गमें आनेवाली कठिनाइयां हमें जरा भी विचलित नहीं कर सकीं और उन कामोंमें हम असफल भी नहीं हुए। इसलिए अगर हममें से हर-एक इस बात पर विश्वास करने लग जाय कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए भारतीय ग्रामोंका पुनरुद्धार अत्यंत आवश्यक है और अगर हमारा इसमें जीवित विश्वास हो कि ग्रामोंके पुनरुद्धारके द्वारा ही हम व्यापक अस्पृश्यताको निर्मूल करके तथा सम्प्रदाय या धर्मका भेदभाव छोड़कर आत्माकी एकताका अनुभव कर सकते हैं, तो हमें सच्चे हृदयसे गांवोंकी ओर जाना ही होगा। और बजाय इसके कि हम ग्रामवासियोंके सामने उन्हें लुभानेके लिए शहरके कृत्रिम जीवनको रखें, हमें गांवकी बनी हुई चीजोंको नमूनेके रूपमें अपनाना होगा।

अगर यह दृष्टिकोण सही है, तो हमें खुद ही आगे बढ़कर गांवकी बनी चीजोंको व्यवहारमें लाना चाहिये — उदाहरणके लिए, जहां संभव हो फाउन्टनपेन या होल्डरके बजाय हम गांवकी कलमको और बड़े-बड़े कारखानोंकी बनी स्याहीकी जगह गांवकी बनी स्याहीको काममें लावें। मैं ऐसे और भी अनेक उदाहरण दे सकता हूं। नित्यके उपयोगकी शायद ही कोई ऐसी चीज हो, जो आजसे पहले गांववालोंने नहीं बनाई हो

और जिसे वे आज न बना सकते हों। अगर हम इस तरफ पूरी तरहसे अपना मन लगा दें और गांवों पर अपना ध्यान एकाग्र कर लें, तो हम बातकी बातमें लाखों रुपये गांववालोंकी जेबमें पहुंचा सकते हैं। आज तो हम उन्हें कोई मुआवजा दिये बिना उलटे उन गरीबोंको लूट-खसोट रहे हैं। इस भयंकर सर्वनाशको आगे बढ़नेसे अब हमें रोक देना चाहिये। ५

सामान्य ग्रामवासियोंकी आज बहुत अच्छी स्थिति नहीं है। धीरे धीरे अब वहां धरती खरोंच-खरोंच कर दो ग्रास अन्नसे पेट भरनेकी नौबत पहुंच रही है। आज यह बहुत कम लोगोंको मालूम होगा कि हिन्दुस्तानके छोटे छोटे बचे-खुचे खेत-खलिहानोंमें खेती करनेमें किसानको लाभके बदले हानि ही हो रही है। गांवके लोगोंमें आज जीवन नहीं दिखाई देता। उनके जीवनमें न आशा रही है, न उमंग, न उत्साह रहा है, न स्फूर्ति। भूख धीरे धीरे उनके प्राणोंको चूस रही है। ऊपर कर्जके गरदन-तोड़ बोझसे वे दबे जा रहे हैं। ६

ग्रामोद्योगोंका यदि लोप हो गया, तो भारतके सात लाख गांवोंका सर्वनाश ही समझिये। ७

यंत्रोंसे काम लेना उसी अवस्थामें अच्छा होता है जब कि किसी निर्धारित कामको पूरा करनेके लिए आदमी बहुत ही कम हों। परन्तु जहां हिन्दुस्तानकी तरह कोई काम करनेके लिए आवश्यकतासे अधिक आदमी हों वहां यंत्रोंका उपयोग हानिकारक होता है। ८

अगर मिलोंका बना कपड़ा गांवोंके लोगोंको बेकार बना रहा है, तो चावल कूटने और आटा पीसनेकी मिलें हजारों स्त्रियोंकी न केवल रोजी ही छीन रही हैं, बल्कि बदलेमें देशकी तमाम जनताके स्वास्थ्यको हानि भी पहुंचा रही हैं। जहां लोगोंको मांस खानेमें कोई आपत्ति न हो और जहां मांसाहार पुसाता हो, वहां मैदे और पॉलिश किये चावलसे शायद हानि न होती हो; लेकिन हमारे देशमें — जहां करोड़ों आदमी ऐसे हैं जो मांस मिले तो खानेमें आपत्ति नहीं करेंगे, पर जिन्हें मांस मिलता ही नहीं — उन्हें हाथकी चक्कीके पिसे हुए गेहूंके आटे और हाथ-कुटे चावलके पौष्टिक तथा जीवनप्रद तत्त्वोंसे वंचित [illegible]

काम यह होगा कि जो उद्योग-धन्धे आज चल रहे हैं उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय और जहाँ सम्भव और आवश्यक हो वहाँ नष्ट हो चुके या नष्ट हो रहे ग्रामोद्योगोंको गाँवोंकी पद्धतिसे — अर्थात् उस रीतिसे जिससे अनादि कालसे ग्रामवासी अपनी झोंपड़ियोंमें काम करते चले आ रहे हैं — सजीव किया जाय। जिस प्रकार कपासकी ओटाई, धुनाई, कताई और बुनाईकी क्रियाओं और औजारोंमें बहुत उन्नति हुई है, उसी प्रकार ग्रामोद्योगोंकी पद्धतिमें भी काफी सुधार किया जा सकता है। ११

खादी गाँवोंके सौर-मण्डलका सूर्य है। और अन्य विविध उद्योग इस मण्डलके ग्रह हैं। इन उद्योग-रूपी ग्रहोंको खादीरूपी सूर्यसे जो गरमी और प्राणशक्ति मिल रही है, उसके बदलेमें ये खादीको टिकाये हुए हैं। बिना खादीके अन्य उद्योगोंका विकास होना असम्भव है। किन्तु मैंने अपनी गत हरिजन-यात्रामें यह देखा कि अगर दूसरे उद्योग-धन्धे जिन्दा न किये गये, तो खादीकी अधिक उन्नति नहीं हो सकती। ग्राम-वासियोंमें अगर उनके फुरसतके समयका सदुपयोग करनेकी क्रियाशीलता और क्षमता उत्पन्न करनी है, तो ग्राम-जीवनका सभी पहलुओंसे स्पर्श करके उसमें नवचेतनाका संचार करना होगा। १२

ये ग्रामवासी चाहे अनिच्छासे आलसमें बैठे-बैठे दिन काट रहे हों या स्वेच्छासे, तो भी विदेशी तथा देशी लुटेरोंके शिकार तो इन्हें सदा बना ही रहना है। इन्हें लूटनेवाले विलायतके लोग हों या हिन्दुस्तानके शहरोंके लोग हों, इनकी स्थिति तो सदा ऐसी ही रहेगी। इन्हें स्वराज्य मिलने-मिलानेका नहीं। इसलिए मैंने अपने मनमें कहा कि 'ये लोग

अगर खादीमें रस लेना नहीं चाहते, तो इन्हें कोई दूसरा काम करनेके लिए कहना चाहिये। ये लोग कोई ऐसा काम क्यों न करें जो इनके बापदादा करते थे, पर जो कुछ समयसे बन्द हो गया है?' बहुत समय नहीं हुआ जब कि ये लोग अपने नित्यके उपयोगकी अनेक चीजें खुद ही बना लेते थे, पर अब उनके लिए उन्हें बाहरकी दुनियाके आसरे रहना पड़ता है। छोटे छोटे कस्बोंमें रहनेवाले लोगोंके नित्य उपयोगकी ऐसी बहुतसी चीजें थीं, जिनके लिए उन्हें गाववालों पर निर्भर रहना पड़ता था। पर अब वे लोग उन चीजोंको शहरसे मंगा लेते हैं। जिस क्षण गाववाले अपने अवकाशके सारे समयको किसी उपयोगी काममें लगानेका पक्का निश्चय कर लेंगे, साथ ही शहरवाले भी इन गावोंमें बनी चीजोंको बरतनेका संकल्प कर लेंगे, उसी क्षण गाववालों तथा शहरवालोंका जो पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध टूट गया है वह फिरसे जुड़ जायगा। १३

शहरके लोगोंसे मैं यह तो कहता नहीं कि तुम गावोंमें जाकर बस जाओ। मैं तो उनसे इतना ही कहता हूं कि तुम्हारे ऊपर गावोंका जो ऋण है उसे तुम उतार दो। गाववाले न दें तो शहरवालोंको कच्चे मालकी एक भी चीज कहांसे मिल सकती है? पहले तो गावोंके लोग अपनी जरूरतकी चीजें स्वयं तैयार करते ही थे और आज भी तैयार करते होते; परन्तु शहरवालोंकी लूट-खसोटके कारण बेचारे कर ही नहीं पाते। १४

हमें यह भी देखना होगा कि ग्रामवासी सबसे पहले अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति खुद कर लें और इसके बाद ही शहरवालोंकी आवश्यकताओंके लिए माल पैदा करें। १५

इसलिए ये उद्योग खादीके मुख्य काममें सहायक हो सकते हैं। खादीके अभावमें उनकी कोई हस्ती नहीं है और उनके बिना खादीका गौरव या शोभा नहीं है। हाथसे पीसना, हाथसे कूटना और फटकना, साबुन बनाना, कागज बनाना, चमड़ा पकाना, तेल पेरना और इसी तरहके सामाजिक जीवनके लिए जरूरी और महत्त्वके दूसरे धन्धोंके बिना गावोंकी आर्थिक रचना संपूर्ण नहीं हो सकती, यानी गाव स्वयंपूर्ण घटक नहीं बन सकते। कांग्रेसी आदमी इन सब धन्धोंमें दिल-

चस्पी लेगा, और अगर वह गांवका निवासी होगा या गांवमें जाकर रहता होगा, तो इन धन्धोंमें नई जान फूंकेगा और इन्हें नये रास्ते ले जायेगा। हरएक आदमीको, हर हिन्दुस्तानीको, इसे अपना धर्म समझना चाहिये कि जब-जब और जहां-जहां मिलें वहां वह हमेशा गांवोंकी बनी चीजें ही काममें ले। अगर ऐसी चीजोंकी मांग पैदा हो जाय, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हमारी ज्यादातर जरूरतें गांवोंसे पूरी हो सकती हैं। जब हम गांवोंके लिए सहानुभूतिसे सोचने लगेंगे और गांवोंकी बनी चीजें हमें पसन्द आने लगेंगी, तो पश्चिमकी नकलके रूपमें यंत्रोंकी बनी चीजें हमें नहीं जंचेंगी और हम ऐसी राष्ट्रीय अभिरुचिका विकास करेंगे, जो गरीबी, भुखमरी और आलस्य या बेकारीसे मुक्त नये हिन्दुस्तानके आदर्शके साथ मेल खाती होगी। १६

ग्रामोद्योगोंका यह पुनरुद्धार खादी-कार्यका ही एक विस्तृत रूप है। हाथका कता-बुना कपड़ा, हाथका बना कागज, हाथका कुटा चावल, घरकी बनी रोटी और घरका बना अचार-मुरब्बा — ये सब पश्चिमी देशोंके लिए सामान्य चीजें हैं। बात सिर्फ यह है कि हिन्दुस्तानमें इनका जितना महत्त्व है उसका शतांश भी उन देशोंमें नहीं है। कारण यह है कि हमारे लिए तो इन चीजोंका पुनरुद्धार ग्रामवासियोंके जीवनका और इनका विनाश उनकी मृत्युका प्रश्न है। यह यंत्रयुग चाहे जो करे, परन्तु यंत्रोंके इस अंधाधुंध प्रवेशके कारण जो करोड़ों मनुष्य निश्चित रूपसे बेकार हो जायेंगे, उन्हें इससे रोजी तो कभी मिल ही नहीं सकती। १७

इस बातका हम सबको विश्वास हो जाना चाहिये कि चरखा अहिंसक आर्थिक स्वावलम्बनका प्रतीक है। १८

पहला स्थान चरखेका है। उसकी साधनासे ही ग्रामोद्योग, नई तालीम आदि अन्य दूसरी चीजें पैदा हुई हैं। अगर हम बुद्धिपूर्वक चरखेको अपना लेंगे, तो गांवोंको फिरसे जिन्दा कर सकते हैं। १९

कार्यकर्ता ऐसे हों जो गांवमें जाकर इन सभी कामोंमें — यानी गांवके समग्र जीवनमें ओतप्रोत हो जायें और इन सब कामोंका कुछ भी बोझ महसूस न करें। २०

चरखेको मैंने गांवोंके उत्थानका मध्यबिन्दु यानी सूर्य माना है। इसके अलावा अपने गांवमें कौनसे देहाती उद्योग चल सकते हैं, यह भी कार्यकर्ताको देखना होगा। इसमें प्रथम आयेगी तेलघानी। मगनवाड़ीके झवेरभाई पटेलने इसका पूरा शास्त्र बना लिया है, उसे भी जानना होगा। तीसरा उद्योग है हाथ-कागजका। इसे सारे हिन्दुस्तानको कागज पूरा करनेकी दृष्टिसे नहीं, लेकिन अपने गांवको स्वावलम्बी बनाने और कुछ आमदनी बढ़ानेकी दृष्टिसे सीखना है।

तेल और हाथ-कागजके उपरांत आटेकी हाथचक्की हर देहातमें सजीवन करनी चाहिये। यह न हुआ तो आटेकी मिल हमारे नसीबमें लिखी है ही। इस बातको लेकर मेरे दिलमें कई वर्षोंसे घबराहट-सी है। जैसे आटेका वैसे ही चावलका। यदि पूरे चावल (*whole rice*) खानेकी आदत हम देहाती लोगोंमें फिरसे न डालेंगे, तो युगकी समस्याको हम हल न कर पायेंगे। मिल-कुटा चावल (polished rice), सफेद चीनी वगैरा सब मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए बड़े ही हानिकारक हैं, यह तो अब मानी हुई बात है। २१

हमारे यहां तो हम सभीको पूरे गांवके सर्वांगीण विकासका ज्ञान प्राप्त करना होगा। गांवमें थोड़ी सिलाई भी चलेगी। गांवके काश्तकार, लोहार, बढ़ई, चमार आदि सभीका आपसमें सहयोग कराके उनमें मेल बिठाना इसके मानी हुए ग्रामोंका संगठन। ये सब बातें दीखनेमें बहुत कठिन हैं, परन्तु असलमें वैसी नहीं हैं। निश्चयी तथा शरीर *और बुद्धि* दोनोंसे पूरा काम लेनेवाले कार्यकर्ताको ये बहुत कठिन नहीं लगनी चाहिये। २२

हमको अब सारा काम समूचे ग्रामोत्थानकी कल्पनाके ढांचेमें ढालकर नये सिरेसे करना है। देखें, कहां तक हम इसे कर पाते हैं। एक कदम आगे जाकर भी मैं जो करनेको कहता हूं सो यह है कि इन परिवर्तनोंके कारण कुछ समयके लिए यदि हमारा काम मंद हो जाय, शून्यवत् भी हो जाय, तब भी हमें इसे करना है। खादीके बारेमें जो भावना हमने लोगोंमें पैदा की है, वह सही होने पर भी उसकी शक्तिके विषयमें जो खयाल हमने लोगोंमें पैदा किया है, उसमें यदि कहीं भूल थी

फिरसे उस पर सोचना चाहिये। हमारा दावा यदि गलत था तो घोषणा करके हमें उसे वापिस खींचना होगा।

शहरवालोंसे मैं कहूंगा कि आप अपने लिए खादी स्वयं पैदा कर लें। इधर-उधरसे जुटाकर शहरवासियोंको खादी पहुंचानेका लोभ मैं छोड़ दूंगा और फिर हम ग्रामोंमें डट कर बैठ जायेंगे। इस परिवर्तनके कारण कार्यकर्ता भाग जायेंगे तो हम उन्हें जाने देंगे। हमारे दिल और दिमागका परिवर्तन जब इस हद तक होगा तब ही हम जो चाहते हैं वह परिणाम मिलनेवाला है। चरखा-संघ नीतिमात्रका संरक्षक रहेगा और कामको हम जितना विभक्त कर सकेंगे कर देंगे और सारे बोझ हलके हो जायेंगे। फिर हम अपनी सारी शक्ति और सारा ध्यान जिस देहातमें हम डटे होंगे वहींके इर्दगिर्दके पंचकोशीमें चलनेवाले कामोंके निरीक्षणके पीछे लगायेंगे। तब ही हमको पता चलेगा कि हमारे कामोंमें तथ्यांश कितना है। . . . आज तो इस कामकी जितनी गहरी जड़ जा सके उतनी गहरी हमें डालनी है। २३

अब मैं यही सोचता हूं कि खेती, गोपालन और अन्य सब ग्रामीण उद्योगोंको किस तरह गांवोंमें फिरसे खड़ा करूं, जिससे लोगोंकी स्थिति अच्छी हो। यदि मैं दो-चार गांवोंमें भी यह कर सका, तो मेरी समस्या हल हो जायगी। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे।' २४

श्रीगणेश अपनेसे ही करें

बहुतसे सज्जन पत्र लिखकर और अनेक मित्र खुद मुझसे मिलकर यह प्रश्न पूछ रहे हैं कि हम किस प्रकार ग्रामोद्योग-कार्यका आरम्भ करें और सबसे पहले किस चीजको हाथमें लें?

इसका स्पष्ट उत्तर तो यही है कि "इस कार्यका श्रीगणेश आप अपनेसे ही करें; और सबसे पहले उसी कामको हाथमें लें, जो आपको आसानसे आसान जान पड़े।" पर इस सूत्रात्मक उत्तरसे पूछताछ करनेवालोंको सन्तोष थोड़े ही होता है। इसलिए मैं इसे जरा और स्पष्ट कर दूं।

हममें से हरएक आदमी खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और अपने नित्यके उपयोगकी चीजोंको जांच-परख सकता है और विलायती अथवा शहरकी

बनी चीजोंकी जगह ग्रामवासियोंकी बनाई हुई उन चीजोंको काममें ला सकता है, जिन्हें वे अपनी मढ़ैयामें या खेत-खलिहानमें चार-छह पैसेके मामूली औजारोंसे सहज ही तैयार कर सकते हैं। इन औजारोंको वे लोग आसानीसे चला सकते हैं और बिगड़ जायें तो उन्हें सुधार भी सकते हैं। विदेशी या शहरकी बनी चीजोंकी जगह गांवोंकी बनी चीजोंको आप काममें लाने लगें, तो ग्रामोद्योग-कार्यका यह बड़ा अच्छा आरम्भ होगा और आपके लिए यह अपने आपमें एक महत्त्वकी चीज होगी। इसके बाद फिर क्या करना होगा, यह तो आप ही मालूम हो जायगा। मान लीजिये कि आज तक कोई आदमी बम्बईके किसी कल-कारखानेके बने टूथब्रशसे दांत साफ करता आ रहा है। अब उसकी जगह वह गांवका बना टूथ-ब्रश चाहता है। तो उसे आप बबूल या नीमकी दतौनसे दांत साफ करनेकी सलाह दें। अगर उसके दांत कमजोर हैं या दांत हैं ही नहीं, तो वह दतौनका एक सिरा तो लोढ़ी या हथौड़ीसे कुचल ले और दूसरे सिरेको चीरकर उसकी फांकोंसे जीभीका काम ले। दतौनका यह ब्रश सस्ता भी काफी पड़ेगा और कारखानोंके बने हुए अस्वच्छ ब्रशसे स्वच्छ भी अधिक होगा। शहरोंके बने दंत-मंजनोंको वह छुएगा ही नहीं। वह तो लकड़ीके कोयलेको खूब महीन पीसकर और उसमें थोड़ासा साफ नमक मिलाकर अपने घरमें ही बढ़िया मंजन तैयार कर लेगा। मिलके बने कपड़ेके बजाय वह गांवकी बुनी खादी पहनेगा, मिलके कुटे चावलकी जगह हाथके कुटे तथा बिना पॉलिश किये चावलका और सफेद शक्करके स्थान पर गांवके बने गुड़का उपयोग करेगा। . . . इस विषय पर मेरे साथ जिन लोगोंकी लिखा-पढ़ी या बातचीत चल रही है, उनकी बताई हुई कठिनाइयोंको दृष्टिमें रखकर मैंने पुनः खादी, चावल और गुड़का यहां उल्लेख किया है। २५

दूधका उद्योग

हमारे ढोरोंकी दुर्दशाका एकमात्र कारण हमारी निर्दय लापरवाही है। हालांकि हमारे पिंजरापोल हमारी दयावृत्ति पर खड़ी हुई संस्थाएं हैं, तो भी वे उस वृत्तिका अत्यन्त भद्दा अमल करनेवाली संस्थाएं ही

न मुनाफेका हिस्सा मांगा जायगा; साथ ही कोई नुकसान भी नहीं उठाना होगा। कुछ समय बाद जब सारे हिन्दुस्तानमें जगह जगह ऐसी गोशालायें बन जायेंगी तब वह समय हिन्दू धर्मकी सम्पूर्ण सफलताका समय होगा। और यह गोरक्षा अर्थात् गोगायोंकी रक्षाके सम्बन्धमें हिन्दुओंकी सच्ची भावनाका प्रमाण होगा। इससे हजारों आदमियोंको, शिक्षित मनुष्योंको भी प्रामाणिक रोजी मिलेगी; क्योंकि डेरी और चमड़ेके काममें बड़े ही ऊंचे प्रकारके वैज्ञानिक ज्ञानकी आवश्यकता होती है। डेरी-सम्बन्धी उत्तमसे उत्तम अनुभवोंके लिए हिन्दुस्तान ही आदर्श राज्य हो सकता है, डेन्मार्क नहीं। हिन्दुस्तानको सालाना ९ करोड़ रुपयोंका मरे ढोरोंका चमड़ा विदेशोंको नहीं भेजना चाहिये और कतल किये हुए ढोरोंका चमड़ा अपने उपयोगमें नहीं लाना चाहिये, क्योंकि यह उसके लिए लज्जाकी बात है। और यदि यह भारतके लिए लज्जाकी बात है, तो हिन्दुओंके लिए तो ओर भी अधिक लज्जाकी बात है। मैं चाहता हूं कि गिरीडीहके अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए मैंने जो कुछ कहा है, उस पर सभी गोशाला-समितियां ध्यान दें और वे अपनी गोशालाओंको सभी प्रकारकी बूढ़ी तथा निकम्मी गायोंके आश्रय-स्थानोंमें, आदर्श डेरियोंमें और चमड़ेके कारखानोंमें बदल दें। २७

हरएक गोशाला या पिंजरापोलमें — गोरक्षिणी संस्थामें — ऐसा चर्मालय होना ही चाहिये जो उसके लिए काफी हो, अर्थात् जो ढोर मरे उनका प्रारंभिक उपयोग करना व्यवस्थापकको आना चाहिये। अगर ऐसा किया जाय तो यह प्रश्न उठता ही नहीं है कि प्रत्येक गोशालामें कितने जानवर होने चाहिये।

मुझे मालूम नहीं कि गोशालाओंमें पशुओंकी मृत्युसंख्या कितनी है। मगर चर्मालयकी आवश्यकता प्रमाणित करनेके लिए यह संख्या जानना जरूरी नहीं है। चाहे एक ही ढोर मरे, तो भी जैसे ढोरके जीते-जी उसे दाना-चारा देकर उसकी सार-संभालकी क्रिया गोसेवक जानता है, वैसे ही मरनेके बादकी क्रिया भी उसे जान ही लेना चाहिये।

गांवमें मरनेवाले पशुओं पर भी स्वभावत. ऐसी धार्मिक संस्थाका ही अधिकार होना चाहिये। इसमें चमारों, ढोरों और जनता तीनोंकी रक्षा है। जहां गोशाला या चर्मालय न हो वहां ढोर मरे तो गोरक्षाका धर्म स्वीकार करनेवाले नागरिकों द्वारा उसे नजदीकसे नजदीककी गोशालामें पहुंचा दिया जाय, या उस ढोरकी लाश पर प्रारंभिक क्रिया करके बाकीके भाग वहां पहुंचा दिये जाय।

मेरे सुझाये हुए चर्मालयके लिए बड़ी पूंजीकी आवश्यकता नहीं है। हां, इस शास्त्रको जाननेवाले गोसेवक तैयार करनेमें जो खर्च हो उसकी आवश्यकता है। २८

हाथकुटा चावल और हाथपिसा आटा

अपने शत-प्रतिशत स्वदेशीके लेखमें मैंने यह बताया है कि उसके कुछ अंग तो तुरन्त हाथमें लिये जा सकते हैं और इस तरह देशके करोड़ों भूखों मरनेवाले लोगोंको आर्थिक तथा आरोग्यकी दृष्टिसे लाभ पहुंच सकता है। देशके धनाढ्यसे धनाढ्य लोगोंको इस लाभमें भाग मिल सकता है। चावलको ही लीजिये। अगर धानको गांवोंमें उसी पुरानी रीतिसे ऊखली और मूसलसे कूटा जाय, तो कूटनेवाली बहनोंको तो रोजी मिलेगी ही; साथ ही करोड़ों मनुष्योंको, जिन्हें मशीनका कुटा चावल खानेसे निरा 'स्टार्च' मिलता है, हाथके कुटे चावलसे कुछ पौष्टिक

तत्त्व भी मिलने लगेंगे। हमारे देशके जिन भागोंमें धानकी फसल होती है, वहां प्रायः सब जगह धान कूटनेके बड़े बड़े कारखाने खुल गये हैं। इसका कारण है मनुष्यकी लोभवृत्ति। मनुष्यकी भयानक लोभवृत्ति न तो प्रजाके स्वास्थ्यका विचार करती है, न सम्पत्तिका। अगर लोकमत प्रबल हो तो वह हाथकुटे चावलके उपयोगका ही आग्रह कायम रखेगा। चावलके मिल-मालिकोंसे वह अनुरोध करेगा कि ऐसे हानिकारक धंधेको वे बन्द कर दें, जो राष्ट्रके स्वास्थ्यको चौपट कर रहा है और गरीब लोगोंके हाथोंसे ईमानदारीसे गुजर-बसर करनेका एक जरिया छीन रहा है; और इस तरह वह धान कूटनेकी मिलोंका चलना असम्भव कर देगा। २९

अगर हजारों गांवोंमें आटा पीसनेकी चक्कियां हैं और वे एन्जिनसे चलती हैं, तो मैं इसे हमारी लाचारीकी सीमा समझता हूं। मेरा खयाल है कि हिन्दुस्तानमें कहीं इतनी चक्कियां या इतने एन्जिन नहीं बनते।... ये इतने ज्यादा एन्जिन और चक्कियां गांवोंमें डालना इनके मालिकोंके अतिलोभका सूचक है। क्या गरीब लोगोंको इस हद तक मोहताज बनाकर धन कमाना मुनासिब होगा? फिर, इस तरहकी एन्जिनवाली चक्कियोंको रखनेसे आज देहातमें चलनेवाली पत्थरकी चक्कियां बेकार हो जायेंगी। चक्की बनानेका उद्योग करनेवाले लोग भी बेकार हो जायेंगे। इस तरह तो गांवके उद्योगोंका और उनके साथ कलाका भी लोप हो जायेगा। एक उद्यमका लोप होकर अगर दूसरा उपयोगी उद्यम शुरू हो जाय, तब तो शायद बहुत कहनेको न रहे। मगर मैं नहीं जानता कि कहीं ऐसा हुआ है। इसके सिवा, हाथकी चक्की चलानेवाले बड़े तड़के प्रभातियों और भजनोंका जो मधुर संगीत बहाते हैं, उसका भी लोप हो जायेगा। ३०

मिलका तेल और घानीका तेल

श्री झवेरभाईने गांवकी घानीकी गिरावटके कारणोंकी भी जांच की है। सबसे जबरदस्त कारण तो उन्होंने यह बताया है कि तेलीमें अपने धन्धेके लिए जरूरी तिलहन नियमित रूपसे प्राप्त करनेकी क्षमता नहीं होती। मौसम समाप्त होने पर गांवोंमें तिलहन देखनेको भी नहीं

मिलता। तेलीके पास इतने रुपये नहीं होते कि वह तिलहनका संग्रह कर सके; शहरोंमें जाकर तो वह तिलहन खरीद ही नहीं सकता। इसलिए तेलीका गांवमें लोप हो गया है अथवा बड़ी तेजीसे लोप होता जा रहा है। लाखों घानियोंके आज बेकार पड़े होनेसे देशकी साधन-सामग्रीकी भयानक बरबादी हो रही है। तिलहनके उत्पादन-क्षेत्रोंमें उसे सुरक्षित रखकर और उचित भाव पर गांवके तेलियोंको मुहैया करके गांवकी घानियोंको फिरसे जिलानेका कार्य निश्चित रूपसे सरकारका है। इस प्रकारकी मदद करनेसे सरकारको कोई नुकसान नहीं होता है। श्री झवेरभाईका कहना है कि यह मदद सहकारी समितियों या ग्राम-पंचायतोंके जरिये दी जा सकती है। घानी-उद्योगकी खोजके आधार पर श्री झवेरभाईका यह मत है कि यदि ऐसा किया जाय तो गांवकी घानीका तेल मशीनके तेलसे प्रतिस्पर्धा कर सकेगा और गांवके लोगोंको आज जो मिलावटी तेल मिलता है उसके कष्टसे उन्हें बचाया जा सकता है। यह याद रखना जरूरी है कि गांववालेको जो एकमात्र चिकनाई मिलती है वह तेलसे ही मिलती है। घी तो उस बेचारेको आम तौर पर देखनेको भी नहीं मिलता।

मिलका तेल घानीके तेलसे क्यों सस्ता पड़ता है, इसका पता भी श्री झवेरभाईने लगाया है। उन्होंने इसके तीन कारण दिये हैं, जिनमें से दो कारण अनिवार्य हैं। पहला तो है पूंजी; और दूसरा है तिलहनमें से आखिरी बूंद तक तेल निकालनेकी मशीनकी शक्ति — वह भी घानीसे कम समयमें। ये लाभ तेल-मिलके मालिकको आढ़तियोंको जो दलाली देनी पड़ती है उससे बराबर हो जाते हैं। लेकिन श्री झवेरभाई तीसरी बुराईका — मिलावटका — सामना नहीं कर सकते, सिवा इसके कि वे खुद भी इस बुराईको अपना लें। यह स्वाभाविक है कि वे ऐसा नहीं करेंगे। इसलिए उन्होंने सुझाया है कि मिलावटकी बुराई कानून द्वारा दूर की जाय। यह काम दो तरहसे किया जा सकता है: या तो कोई मिलावट-विरोधी कानून बन चुका हो तो उस पर अमल किया जाय; या ऐसा कानून बनाया जाय और तेल-मिलोंको परवाने लेनेके लिए बाध्य किया जाय। ३१

गुड़ और खांड़सारी

कपड़ेके उद्योगके बाद दूसरे नम्बरका बड़ा उद्योग शक्करका है। इस उद्योगको हमारी मददकी बिलकुल जरूरत नहीं है। शक्करके कारखानोंकी संख्या बड़ी तेजीसे बढ़ रही है। इस उद्योगका विकास लोकप्रिय संस्थाओंकी मदद लेनेसे नहीं हुआ है। इसका विकास तो अनुकूल कायदे-कानूनके कारण हुआ है। और आज यह उद्योग इतना समृद्ध हो गया है और इतना फैल रहा है कि गुड़का उत्पादन भूतकालकी वस्तु होता जा रहा है। यह तो निर्विवाद बात है कि गुड़में शक्करकी अपेक्षा अधिक पोषक तत्त्व हैं। यह अतिशय मूल्यवान ग्रामोद्योग आपकी मददके लिए पुकार मचा रहा है। इस एक ही उद्योगमें शोध और ठोस मददके लिए काफी गुंजाइश है। हमें उन तरीकों और साधनोंकी शोध करना है, जिनसे इस उद्योगको जीवित रखा जा सके। यह तो जो कुछ मैं कहना चाहता हूं उसे समझानेके लिए एक उदाहरणमात्र है। ३२

ताड़ीमें जो गुण माने जाते हैं, वे सब हमें दूसरी खुराकमें मिल जाते हैं। ताड़ी खजूरीके रससे बनती है। खजूरीके शुद्ध रसमें मादकता बिलकुल नहीं होती। उसे नीरा कहते हैं। ताजी नीरा पीनेसे कई लोगोंको दस्त साफ आता है। मैंने खुद नीरा पीकर देखी है। लेकिन मुझ पर उसका ऐसा असर नहीं हुआ। परन्तु वह खुराकका काम तो अच्छी तरहसे देती है। चाय इत्यादिके बदले मनुष्य सबेरे नीरा पी ले, तो उसे दूसरा कुछ पीने या खानेकी आवश्यकता नहीं रहनी चाहिये। नीराको गन्नेके रसकी तरह पकाया जाय, तो उससे बहुत अच्छा गुड़ तैयार होता है। खजूरी ताड़की एक जाति है। हमारे देशमें अनेक प्रकारके ताड़ कुदरती तौर पर उगते हैं। उन सबमें से नीरा निकल सकती है। नीरा ऐसी चीज है जिसे निकालनेकी जगह पर ही तुरन्त पीना अच्छा है। नीरामें मादकता जल्दी पैदा हो जाती है। इसलिए जहां उसका तुरन्त उपयोग न हो सके, वहां उसका गुड़ बना लिया जाय तो वह गन्नेके गुड़की जगह ले सकता है। कई लोग मानते हैं कि ताड़-गुड़ गन्नेके गुड़से अधिक गुणकारी है। उसमें मिठास कम होती है। इसलिए वह गन्नेके गुड़की अपेक्षा अधिक मात्रामें खाया जा सकता है। ग्रामोद्योग-संघके

द्वारा ताड़-गुड़का काफी प्रचार हुआ है। मगर अभी और ज्यादा मात्रामें इसका प्रचार होना चाहिये। जिन ताड़ोंके रससे ताड़ी बनाई जाती है उन्हींसे गुड़ बनाया जाय, तो हिन्दुस्तानमें गुड़ और खाडकी तंगी कमी पैदा न हो और गरीबोंको सस्ते दाममें अच्छा गुड़ मिल सके। ताड़-गुड़की मिश्री और शक्कर भी बनाई जा सकती है। मगर गुड़ शक्कर या चीनीसे बहुत अधिक गुणकारी है। गुडमें जो क्षार होते हैं वे शक्कर या चीनीमें नहीं होते। जैसे बिना भूसीका आटा और बिना भूसीका चावल होता है, वैसे ही बिना क्षारकी शक्करको समझना चाहिये। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि खुराक जितनी अधिक स्वाभाविक स्थितिमें खाई जाय, उतना ही अधिक पोषण उसमें से हमें मिलता है। ३३

मधुमक्खी-पालन

मुझे ऐसा लगता है कि मधुमक्खियां पालनेके उद्योगका हमारे देशमें बेहद विकास हो सकता है। गावोंकी दृष्टिसे तो इस उद्योगका महत्त्व है ही; पर धनाढ्य युवक और युवतियां इस कामको शौकिया भी कर सकते हैं। इस कामको करते हुए वे देशकी सम्पत्ति बढायेंगे और अपने लिए उत्तमसे उत्तम स्वास्थ्यप्रद शक्कर पैदा करेंगे। अगर उनकी वृत्ति परमार्थकी ओर हो, तो वे शहदको बतौर एक पौष्टिक आहारके अस्वस्थ हरिजन बालकोंमें बाट सकते हैं। शहद श्रीमानोंके शौककी चीज या वैद्य-हकीमोंके हाथमें एक कीमती दवाके ही रूपमें क्यों रहे? इसमें शक नहीं कि अपनी नगण्य जानकारीके आधार पर बनाये हुए अनुमानों पर ही मेरी यह आशा निर्भर करती है। गांवों और शहरोंमें युवक-युवतियां जो प्रयोग करें, उनसे यह मालूम होना चाहिये कि शहद हमारे आहारकी सामान्य वस्तु हो सकता है, या आजकी भांति वह असाधारण या दुर्लभ वस्तु ही बना रहेगा। ३४

चमड़ेका धन्धा

हिसाब लगाकर देखा गया है कि नौ करोड़ रुपयेका कच्चा चमड़ा हर साल हिन्दुस्तानसे बाहर जाता है और वह सबका सब बनी-बनाई

चीजोंके रूपमें फिर वही वापस आ जाता है। यह देशका सिर्फ आर्थिक ही नहीं, परन्तु नैतिक शोषण भी है। चमड़ा कमाने और हमारे निजके उपयोगमें आनेवाली उसकी अनगिनत चीजें बनानेकी शिक्षा हमें आज कहां मिल रही है?

इस हुनरमें काफी वैज्ञानिक दिमाग चाहिये। हजारों रसायन-विशारद चाहें तो इस महान उद्योगमें अपनी आविष्कारक प्रतिभाका उपयोग कर सकते हैं। इसे विकसित करनेके दो मार्ग हैं। एक तो यह है कि जो हरिजन गांवोंमें रहते हैं और गांवकी खास बस्तीसे दूर समाजके संसर्गसे अलग, टूटे-फूटे गंदे झोंपड़ोंमें पड़े सड़ रहे हैं और बड़ी मुश्किलसे किसी तरह अपना पेट पाल रहे हैं, उनको मदद करके उन्हें ऊंचा उठाया जाय। इसका यह अर्थ भी है कि गांवोंको पुनः संगठित करनेमें अर्थात् कला, शिक्षा, स्वच्छता, समृद्धि और प्रतिष्ठाकी वहां फिरसे स्थापना करनेमें हमारे रसायन-विशारदोंकी बुद्धिका उपयोग हो। रसायनशास्त्रियोंको चाहिये कि वे चमड़ा कमानेकी अच्छीसे अच्छी वैज्ञानिक क्रियायें ढूंढ़ निकालें। गांवके रसायनशास्त्रीको नम्रतापूर्वक इस कला पर अधिकार करना है। चमड़ा कमानेकी अनघड़ कला गांवोंमें अभी तक जीवित है, पर प्रोत्साहन न मिलनेसे और दुर्लक्षके कारण वह भी बड़ी तेजीसे लुप्त होती जा रही है। इन रसायनशास्त्रियोंको वह कला सीखनी और समझनी चाहिये। उस अनघड़ पद्धतिको यकायक नहीं छोड़ देना चाहिये; पहले कमसे कम उसकी अच्छी तरह परीक्षा तो होनी ही चाहिये। उस पद्धतिसे सदियों तक बड़ी अच्छी तरह काम चला है। अगर उसमें कोई गुण नहीं होता, तो उससे यह काम नहीं चलता। जहां तक मैं जानता हूं, हमारे देशमें शान्तिनिकेतनमें ही इस विषयकी शोध हो रही है। उसके बाद साबरमती आश्रममें इस कामका आरम्भ किया गया। शान्तिनिकेतनके प्रयोगने कितनी उन्नति की है, इसका पता मैं नहीं लगा सका हूं। साबरमती आश्रमके स्थान पर अब जो हरिजन-आश्रम है, उसमें इस कामको फिरसे आरम्भ करनेकी पूरी संभावना है। यह शोधकार्य तो समुद्रके समान है; उसमें हमारे इन प्रयोगोंको तो आप बिन्दुमात्र ही समझें।

गोरक्षा हिन्दू धर्मका एक अविभाज्य अंग है। कोई भी सच्चा हरिजन खानेके लिए गाय-भैंसको नहीं मारेगा। किन्तु अस्पृश्य बनकर उसने मुर्दार मास खानेकी बुरी आदत सीख ली है। वह गायकी हत्या तो नही करेगा, परन्तु मरी हुई गायका मास बडे ही स्वादसे खायेगा। शारीरिक दृष्टिसे यह मांस शायद हानिकारक न हो, लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे तो मुर्दार मास खाने जैसी घृणा पैदा करनेवाली दूसरी कोई चीज है ही नही। तो भी चमारके घरमें जब मरी हुई गाय आती है, तब उसका सारा कुटुंब आनन्दसे फूला नही समाता। बालक तो लाशके चारों ओर नाचने लगते है और जब उसकी खाल उघेडी जाती है तब हड्डियो और मासके लोथडोको वे एक-दूसरे पर फेंकते हैं। अपना घरबार त्यागकर हरिजन-आश्रममें जो एक चमार रहता है, उसने खुद अपने घरका खाका खीचते हुए मुझसे कहा कि मुर्दार जानवरको देखते ही चमारका सारा कुटुंब आनन्द-विभोर हो जाता है। मैं ही जानता हू कि हरिजनोंके बीच काम करते हुए उनसे मुर्दार मास खानेकी यह आत्मघातिनी कुटेव छुडानेमें मुझे कितनी कठिनाई पडी है। चमड़ा कमानेकी रीतिमें सुधार हो जाय, तो मुर्दार मांसका यह रिवाज आप ही बन्द हो जायगा।

इसमें ऊंची बुद्धि और चीरफाडकी कलाकी जरूरत है। गोरक्षाकी दिशामें भी इस कामके सहारे हम काफी आगे बढ सकते है। अगर हमने गायकी दूध देनेकी शक्ति बढानेकी कला नही सीखी, उसकी संततिमें हमने सुधार नही किया और उसके बछड़ेको खेती तथा गाडी खीचनेके कामके लिए अधिक उपयोगी न बनाया, गायके गोबर व मूत्रका खादमें उपयोग नही किया और गाय तथा उसके बछडोंके मरने पर उनकी खाल, हड्डिया, मास, आंत आदिका अच्छेसे अच्छा उपयोग करनेके लिए अगर हम तैयार नही हुए, तो गायको कसाईके हाथो मरना ही है।

अभी तो मैं सिर्फ ढोरोंकी लाशोंकी ही बात कर रहा हू। यहा हमें इतना भलीभांति स्मरण रखना चाहिये कि ईश्वरकी कृपासे गावोंमें चमारको कतल किये हुए ढोरोंकी नहीं, किन्तु केवल मौतसे मरे हुए ढोरोकी ही खाल उघेड़नी पड़ती है। उसके पास मरे हुए ढोरको अच्छी तरह

उठा कर ले जानेका कोई साधन नहीं होता। वह उसे उठाता है, घसीटता है और इससे ढोरकी खाल खराब हो जाती है। कटे-फटे चमड़ेके दाम भी कम मिलते हैं। चमार जो अनमोल और सुन्दर समाज-सेवा करता है, उसका अगर गांववालों और जनताको भान हो, तो वे लाशको उठा ले जानेका कोई ऐसा आसान और सादा तरीका ढूंढ़ निकालेंगे, जिससे चमड़ेको जरा भी नुकसान न पहुंचने पाये।

इसके बादकी क्रिया है ढोरकी खाल उतारनेकी। इसमें भारी सुघड़ताकी जरूरत है। मैंने सुना है कि गांवका चमार अपनी गांवकी बनी हुई छुरीसे इस चीर-फाड़को जिस कुशलतासे और जितनी जल्दी करता है, उस सुघड़तासे और उतनी जल्दी दूसरा कोई, यहां तक कि डॉक्टर भी नहीं कर सकता। इस विषयका ज्ञान रखनेवालोंसे मैंने इस सम्बन्धमें जब पूछताछ की, तो गांवके चमारके चीर-फाड़के तरीकेसे कोई बेहतर तरीका वे मुझे नहीं बता सके। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इससे बेहतर तरीका दूसरा है ही नहीं। मैं तो पाठकोंको अपने अत्यन्त सीमित अनुभवका लाभ बता रहा हूं। गांवका चमार हड्डियोंका कोई भी उपयोग नहीं कर सकता। हड्डियोंको वह फेंक देता है। खाल उधेड़ते समय लाशके इर्दगिर्द जो कुत्ते घूमते रहते हैं, वे सब नहीं तो कुछ हड्डियां तो उठा ही ले जाते हैं। यह देशके लिए भारी नुकसान है। कुत्तोंकी छीना-झपटीसे बाकी जो हड्डियां बच रहती हैं, वे विदेशोंको भेज दी जाती हैं और वहांसे मूठ, बटन वगैराके रूपमें वे फिर यहीं वापस आ जाती हैं। इन हड्डियोंका अगर अच्छा चूरा बना लिया जाय, तो उसकी बहुत बढ़िया खाद हो सकती है।

दूसरा रास्ता इस महान उद्योगको शहरोंमें ले जानेका है। हिन्दुस्तानमें चमड़ेके कई कारखाने आज यह काम कर रहे हैं। उन सबकी परीक्षा करना इस लेखका उद्देश्य नहीं है। शहरोंमें इस उद्योगको ले जानेसे हरिजनोंको शायद ही कोई फायदा होगा; गांवोंको तो कुछ भी लाभ पहुंचनेवाला नहीं है। इस प्रक्रियासे गांवोंकी दूनी बरबादी होगी। भारतमें उद्योग-धंधोंको शहरमें ले जाने और बड़े-बड़े कारखानोंके द्वारा उन्हें चलानेका अर्थ है गांवोंको और गांवोंकी जनताको धीरे धीरे परन्तु

अचूक रीतिसे मौतके मुंहमें धकेलना । शहरके उद्योग भारतके ७ लाख गांवोंमें बसनेवाली उसकी ९० फीसदी जनसख्याको कभी सहारा नहीं दे सकते । गांवोंसे चमडेके धंधेको तथा ऐसे ही दूसरे उद्योगोंको हटा देनेका अर्थ तो यही होगा कि वहां हाथ और बुद्धिके कौशलको काममें लानेका जो थोड़ासा अवसर अभी किसी तरह बच रहा है वह भी उनसे छीन लिया जाय । और जब गांवके उद्योग-धंधे नष्ट हो जायगे तब ढोरोंके साथ खेतमें मजदूरी करना और बरसके छह या चार महीने आलसमें बैठे बैठे बिताना — बस इतना ही ग्रामवासियोंके नसीबमें रह जायगा। ऐसा हुआ तब तो स्व० मधुसूदन दासके शब्दोंमें यही कहना चाहिये कि गांवके मनुष्य जानवरों जैसे हो जायगे — न तो उन्हे मानसिक पोषण कहींसे मिलेगा, न शारीरिक, और इसके फलस्वरूप उनकी आशा और आनन्द नष्ट हो जायंगे।

यहा शत-प्रतिशत स्वदेशी-प्रेमीके लिए काफी काम पडा हुआ है। साथ ही एक बहुत बड़ा सवाल हल करनेमें जिस वैज्ञानिक ज्ञानकी आवश्यकता है, उसे काममें लानेका क्षेत्र भी मौजूद है । इस एक कामसे तीन अर्थ सधते हैं । एक तो इससे हरिजनोंकी सेवा होती है, दूसरे ग्रामवासियोंकी सेवा होती है और तीसरे मध्यम वर्गके जो बुद्धिशाली लोग रोजगार-धन्धेकी खोजमें बेकार फिरते हैं, उन्हें जीविकाका एक प्रतिष्ठित साधन मिल जाता है। और यह लाभ तो जुदा ही है कि गावकी जनताके सीधे संपर्कमें आनेका भी उन्हें सुन्दर अवसर मिलता है। ३५

साबुन

साबुन जैसी चीजें सज्जी मिट्टीसे घरमें ही बनाकर ग्रामवासी साफ रहेंगे। उस साबुनमें टाटाके या गोदरेज साबुनके कारखानोंकी खुशबू नहीं होगी, न वैसा सुहावना पैकिंग होगा। परन्तु देहातके लिए खादीके जितनी ही उपयोगिता और स्वावलम्बन उसमें भरा होगा। ३६

हाथ-बना कागज

मुझे बतलाया गया था कि अगर काफी मांग हो तो यह कागज उसी भाव पर दिया जा सकता है, जिस भाव पर मिलका बना कागज

विक रहा है। मैं जानता हूं कि हाथका बना देशी कागज नित्यप्रति बढ़ती हुई कागजकी मांगको कभी पूरा नहीं कर सकता। पर सात लाख गांवों और वहांकी दस्तकारियोंके भक्त अगर हाथका बना कागज आसानीसे मिल सके तो उसी कागज पर लिखना पसन्द करेंगे। जो लोग हाथके बने कागजको काममें लाते हैं, उन्हें यह मालूम है कि उसमें अपनी एक खास मनोहरता होती है। अहमदाबादके प्रसिद्ध कागजको कौन नहीं जानता? मिलका कागज अहमदाबादी कागजके टिकाऊपन और चिकनाहटका क्या मुकाबला करेगा?

पुराने ढंगके सब वही-खाते अब भी उसी कागजके बनते हैं। पर दूसरी बहुतसी ऐसी दस्तकारियोंकी तरह संभवतः यह उद्योग भी अब आखिरी सांसें गिन रहा है। थोड़ा ही प्रोत्साहन मिलनेसे यह उद्योग मृत्युके मुखमें जानेसे बच सकता है। अगर ठीक तरहसे देखभाल की जाय, तो इसके बनानेकी रीतियोंमें सुधार हो जाय; और हाथके बने कागजमें जो दोष आज दिखाई देते हैं वे आसानीसे दूर हो जायं। इन अप्रसिद्ध उद्योग-धन्धोंमें जो असंख्य आदमी लगे हुए हैं, उनकी आर्थिक अवस्थाकी भलीभांति जांच-पड़ताल क्यों न की जाय? इस काममें रस लेनेवाले लोग अगर उन्हें सही राह बतावें और कामकी सलाह दें, तो वे निश्चय ही ऐसे लोगोंकी बात मानेंगे और उनके कृतज्ञ होंगे। ३७

स्याही

यह स्याही, जिससे मैं लिखता हूं, टिनाली (मद्रास) की बनी हुई है। इससे १२ आदमियोंकी जीविका चल रही है। कठिनाईसे किसी तरह वे कामको चलाये जा रहे हैं। तीन और नमूने स्याहीके मेरे पास अलग अलग बनानेवालोंने भेजे थे। उन सबका भी हाल टिनालीवालोंके जैसा ही है। मुझे उनका काम अच्छा लगा। मैंने उनसे पत्रव्यवहार किया। पर इससे अधिक मैं उनके लिए कुछ नहीं कर सका। स्वदेशी संघ हो तो वह वैज्ञानिक ढंगसे इन स्याहियोंकी जांच-पड़ताल करे और जो सबसे अच्छी चलनेवाली हों उन्हें प्रोत्साहन दे। स्याहीका यह उद्योग है तो अच्छा और तरक्की भी कर रहा है, पर इसे अच्छे रासायनिक साधनोंकी जरूरत है। ३८

ग्राम-प्रदर्शन

यदि हम चाहते हैं और इसमें विश्वास रखते हैं कि गांव केवल जिन्दे ही न रहें, बल्कि मजबूत और खुशहाल भी बनें, तो इसके लिए ग्रामदृष्टि ही सच्ची दृष्टि है। अगर यह सच हो तो हमारे ग्राम-प्रदर्शनोंमें शहरोंकी तड़क-भड़क और दिखावेके लिए कोई जगह नहीं हो सकती। वहां शहरोंके खेल-तमाशों और दूसरे मनोरंजनोंकी कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। ग्राम-प्रदर्शनको तमाशा नहीं बन जाना चाहिये, न उसे कमाईका जरिया ही बनना चाहिये। उसे व्यापारियोंके विज्ञापनका साधन तो कभी बनना ही नहीं चाहिये। वहां चीजोंकी बिक्रीकी इजाजत नहीं होनी चाहिये। यहां तक कि खादी और ग्रामोद्योगकी चीजें भी नहीं बेची जानी चाहिये। ग्राम-प्रदर्शन शिक्षाका साधन होना चाहिये; वह आकर्षक होना चाहिये और ऐसा होना चाहिये जो ग्राम-वासियोंमें एक या दूसरा ग्रामोद्योग अपनानेकी भावना उत्पन्न करे। उसे आजके ग्राम-जीवनके ज्वलन्त दोष और कमियां बतानी चाहियें और उन्हें दूर करनेके उपाय बताने चाहिये। उसे यह भी बता सकना चाहिये कि जबसे ग्राम-सुधारका विचार प्रचलित हुआ और उस पर अमल किया जाने लगा, तबसे आज तकमें इन दोषों और कमियोंको दूर करनेमें कितनी सफलता मिली है। उसे यह भी सिखाना चाहिये कि ग्राम-जीवनको कलात्मक और सुन्दर कैसे बनाया जाय।

अब हम यह देखें कि ऊपरकी शर्तें पूरी करनेवाला ग्राम-प्रदर्शन कैसा होगा।

१. उसमें गांवोंके दो नमूने होने चाहियें — एक आजके गांवका नमूना और दूसरा सुधरे हुए गांवका नमूना। सुधरा हुआ गांव चारों तरफ बिलकुल साफ-सुथरा होगा। उसके मकान, उसकी सड़कें, उसके आसपासका वातावरण और उसके खेत सब साफ-स्वच्छ होंगे। मवेशीकी हालत भी सुधरनी चाहिये। कौनसे ग्रामोद्योग अधिक आमदनी देते हैं और कैसे, यह बतानेके लिए पुस्तकों, चित्रों और नकशोंका उपयोग किया जाना चाहिये।

२. प्रदर्शनको यह दिखाना चाहिये कि विभिन्न ग्रामोद्योग कैसे चलाये जायं, उनके लिए आवश्यक औजार कहांसे प्राप्त किये जायं और उन औजारोंको कैसे तैयार किया जाय। प्रत्येक उद्योगकी सारी प्रक्रियाएं प्रत्यक्ष करके दिखाई जायं। इनके साथ नीचेकी बातोंको भी प्रदर्शनमें स्थान मिलना चाहिये :

(क) आदर्श ग्राम-आहार।
(ख) ग्रामोद्योग और यंत्रोद्योगकी तुलना।
(ग) पशुपालनके प्रत्यक्ष पाठ।
(घ) कला-विभाग ।
(ङ) गांवके पाखानेका नमूना।
(च) सजीव खाद बनाम रासायनिक खाद।
(छ) पशुओंके चमड़े, हड्डियों वगैराका उपयोग।
(ज) ग्राम-संगीत, तरह-तरहके ग्रामवाद्य, ग्राम-नाटक।
(झ) गांवके खेलकूद, अखाड़े और विभिन्न कसरतें।
(ञ) नई तालीम।
(ट) गांवकी दवाइयां।
(ठ) गांवका प्रसूति-गृह।

आरम्भमें सूचित की गई नीतिके आधार पर इस सूचीको और भी बढ़ाया जा सकता है। इतनी बातें तो मैंने यहां उदाहरणके तौर पर दे दी हैं। यह सूची अपने-आपमें पूर्ण नहीं मानी जानी चाहिये। इसमें मैंने चरखे और अन्य ग्रामोद्योगोंका कोई उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि उनका अस्तित्व तो मैं मानकर ही चला हूं। उनके बिना ग्राम-प्रदर्शन बिलकुल निकम्मा होगा। ३९

२१

गांवोंका यातायात

गांवकी गाड़ीकी हिमायत

बड़ोदाके श्री ईश्वरभाई एस० अमीनने मशीनके मुकाबले पशुओंके सामर्थ्यके विषयमें एक लम्बा पत्र मेरे पास भेजा है। उसमें से प्रस्तुत बातें मैं यहां देता हूं:

"खेतोंमें या थोड़ी दूरके काममें पशुओंका उपयोग करना मशीनकी ताकतसे काम लेनेके बनिस्वत महंगा नहीं पड़ता और इसलिए अधिकांश बातोंमें पशु मशीनका मुकाबला कर सकते हैं। लेकिन इस समय प्रवृत्ति यह है कि पशुओंकी तुलनामें हम मशीनकी शक्तिको ही ज्यादा पसन्द करते हैं।

"उदाहरणके लिए, बैलगाड़ीको लीजिये। १०० रुपये गाड़ीके दाम हुए और २०० रुपये बैलोंके। यह बैलगाड़ी गांवोंकी ऊबड़-खाबड़ और रेतीली सड़कों पर १६ बंगाली मनका बोझ १५ मील प्रतिदिनके हिसाबसे ढो सकती है। इसमें १२ आने दो बैलोंका, ६ आने गाड़ीवानका और ४ आने टूट-फूटका — इस तरह कुल रु० १–६–० रोज खर्च पड़ेगा। इसके विरुद्ध एक टनवाली मोटर-लारी पर १५ मीलके लिए कमसे कम एक गैलन पेट्रोल और कुछ लुब्रिकेटिंग ऑइल खर्च होगा। उसकी मरम्मत व सार-सभाल पर भी भारी खर्च आयगा और उसके लिए बड़ी तनखाहका ड्राइवर रखना पड़ेगा। इस तरह १५ मीलकी मोटर-लारीकी यात्रामें लुब्रिकेटिंग ऑइल सहित पेट्रोल पर रु० १–१२–० खर्च होंगे, १२ आने रोज (८ घंटेके कामके रु० ६ प्रतिदिनके हिसाबसे) सार-संभालके पड़ेंगे और ८ आने ड्राइवर, क्लीनर व लारीमें सामान चढ़ाने-उतारनेके लिए एक और आदमी रखने पर खर्च होंगे, जब

कि १६ बंगाली मन बोझा ढोनेवाली दो गाड़ियों पर रु० १-६-० फी गाड़ीके हिसाबसे कुल रु० २-१२-० खर्च होगा। एक बैलगाड़ी एक दिनमें ७ से ८ गाड़ी तक खाद लादकर गांवसे खेत तक, जो लगभग आधे मील पर होता है, ले जा सकती है। इसमें रु० १-६-० + ६ आने गाड़ीको भरने व खाली करनेमें गाड़ीवानकी मदद करनेवाले एक और व्यक्तिकी मजदूरीका खर्च पड़ेगा, जब कि मोटर-लारी यह काम करे तो उसमें भी इससे कम खर्च नहीं पड़ेगा। हां, बढ़िया पक्की सड़क हो और लगातार काफी लम्बी दूर तक वजन ले जाना हो, तब जरूर मोटर-लारी बाजी मार ले जायगी और बैलगाड़ी धीमी और आर्थिक दृष्टिसे अनुपयोगी मालूम पड़ेगी। बैलोंको लगातार लम्बी दूर तक भगाना भी वांछनीय नहीं है, क्योंकि इससे उनकी शक्ति और सामर्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। पर इतने पर भी रेलवे स्टेशनसे लेकर दूर-दूरके गांवों तक बैलगाड़ियां मोटर-लारियोंके मुकाबलेमें रात-दिन लम्बी दूरीका सफर तय करती पाई जाती हैं। यह जरूर है कि इन बैलगाड़ियोंके बैलोंकी शारीरिक दशा दयनीय होती है, क्योंकि थोड़ी कमाईके कारण गाड़ीके मालिक उन्हें खानेको कम देते हैं। इस प्रकार मालको शीघ्रतासे ले जाने या आदमीके एक जगहसे दूसरी जगह जानेके महत्त्व पर विचार करें, तो सिर्फ धीमी चाल ही एक ऐसी चीज है, जो बैलगाड़ीके विरुद्ध जाती है। परन्तु जो गांववाले खाली वक्तमें कोई कमाई नहीं करते और जिनके लिए मोटरके कारण बचनेवाले समयका कोई महत्त्व नहीं है, उन्हें तो यही सोचना चाहिये कि थोड़ी दूरका काम वे पैदल चलकर ही निकालें और लम्बे सफरके लिए बैलगाड़ीका उपयोग करें। अगर कोई किसान अपनी खुदकी गाड़ी रखे और उसमें सफर करे, तो नकद पैसेके रूपमें उसे कोई रकम खर्च नहीं करनी पड़ेगी, बल्कि अपने खेतमें पैदा हुई चीजें खिलाकर ही वह बैलोंसे काम लेगा। सच तो यह है कि किसान चारे व अनाजको ही अपना पेट्रोल, गाड़ीको अपनी मोटर-लारी और बैलोंको

घाससे शक्ति उत्पन्न करनेवाला अपना एंजिन समझें। मशीन न तो घास खाती और न उससे गोबर ही निकलता, जो कि खादके लिए बड़ा उपयोगी है। गांवमें बैल तो रखने ही पड़ते हैं और घास भी हर हालतमें होती है। अगर गाड़ी भी रहे तो उसके कारण गावके बढ़ई और लुहारका धन्धा चलेगा। और अगर गायको पालें तो वह कल्पतरुका काम देगी। घास-चारेसे वह मक्खन या घी बनायेगी और साथ ही वह बैल पैदा करनेवाली मशीन भी होगी। इस प्रकार एक पंथ दो काज सधेंगे।"

मोटर-लारीका आक्रमण सफल हो या न भी हो। बुद्धिमान कार्यकर्ता इसके हानि-लाभका अध्ययन करके निश्चित रूपसे गांववालोंका पथ-प्रदर्शन करें, तो यह समझदारीकी बात होगी। अत श्री ईश्वरभाईने जो कुछ लिखा है और जो दिशा सुझाई है, उस पर सब ग्रामसेवकोंको विचार करना चाहिये और देखना चाहिये कि ऐसा करना कहा तक ठीक है। १

मोटर-लारी बनाम बैलगाड़ी

गावोंमें प्रचारकार्य करनेके लिए मोटर-लारिया उपयोगी होगी या बैलगाडियां — इस विषय पर अगस्त १९३९ की 'ग्रामोद्योग पत्रिका' में एक सुन्दर तर्कपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है :

> "हमसे पूछा गया है कि जिला बोर्ड और अन्य इसी प्रकारकी स्थानीय संस्थाएं, जो ग्रामोद्धारके लिए कुछ धनराशि अलग रखना चाहती हैं, उस रकमको गावोमें विभिन्न प्रकारके प्रचारकार्यके लिए मोटर-लारी खरीदनेमें लगायें तो कैसा हो। यह शुभ चिह्न है कि इस प्रकारकी संस्थायें ग्रामोके प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस करने लगी हैं और गावों तथा शहरों और शिक्षितो तथा अशिक्षितोंके बीचकी मौजूदा खाईको पूरनेके लिए प्रयत्नशील हो रही हैं। यहा सवाल यह उठता है कि मोटर-लारियोंका, जो एक रातमें कई गांवोंका चक्कर लगा सकती हैं, इस कामको जल्दी करनेके लिए उपयोग किया जा सकता है या नहीं?

"इन मामलोंमें, विशेषकर उन मामलोंमें जो विशुद्ध ग्रामीणोंकी भलाईके लिए किये जाते हैं, हमें यह देखना जरूरी है कि खर्च हुई धनराशि लौटकर गांवोंमें जाती है या नहीं। जिला और स्थानीय बोर्ड लोगोंसे धन प्राप्त करते हैं। अतः उन्हें ऐसी चीजें खरीदनी चाहिये, जिनसे लोगोंमें धनका प्रचलन और तेजीसे हो। यदि जिला और स्थानीय बोर्ड लोगोंसे टैक्स आदिके रूपमें जो रुपया वसूल करते हैं उसे वे बाहर भेज दें, तो इससे वहांके लोगोंकी गरीबी बढ़ेगी और इसका जिला और स्थानीय बोर्डोंकी कोष पर अवश्य असर पड़ेगा।

"कोई स्थानीय संस्था कुछ हजार रुपयोंसे अधिक धन ग्रामोद्धारके लिए अलग नहीं रखती। अगर वह इस प्रयोजनके लिए एक भी मोटर-लारी खरीदती है, तो इसका अर्थ यह होता है कि वह ५००० रुपये जिलेसे बाहर भेज देती है; इसके सिवा टायरों आदिके स्थायी खर्चके साथ पेट्रोल आदि पर वह रोजाना जो खर्च करती है वह भी गांववालोंके पास लौटकर नहीं आता बल्कि बाहर ही जाता है। इस खर्चका स्पष्ट उद्देश्य गांववालोंकी बेहतरी और खुशहाली है। किन्तु खेती, स्वास्थ्य, बालरक्षा और इसी प्रकारके अन्य विषयों पर कभी-कभी होनेवाले भाषण सुन सकने या ग्रामोफोन व रेडियो सुन सकनेके लिए ग्रामवासियोंको यह भारी खर्च उठाना पड़ता है, जब कि उन्हें अपना और अपने परिवारका गुजारा केवल २ रुपये माहवारमें करना पड़ता है। इस समय गांववालोंको सबसे अधिक जिस चीजकी जरूरत है, वह है रोजगार और काम। हम बाहरसे चीजें मंगाकर उन्हें कामसे वंचित कर देते हैं और उसके मुआवजेमें उन्हें भाषण सुनाते, मैजिक लेन्टर्नके खेल दिखाते और संगीत सुनाते हैं, जिसके लिए वे स्वयं खर्च करते हैं, और हम अपनी पीठ ठोंकते हैं कि हम उनकी बेहतरीके लिए काम कर रहे हैं। क्या इससे ज्यादा बेहूदी और कोई बात हो सकती है?

"अब तुलना कीजिये कि मोटर-लारीकी जगह बहुत नफरतसे देखी जानेवाली बैलगाड़ीका उपयोग किया जाय तो क्या

होगा। इससे बहुत तहलका शायद न मचे और न वह उतने जोरसे ऐलान कर सके कि कुछ आश्चर्यकारक चीज दुनियामें गावो-के लिए की जा रही है। लेकिन अगर हमे सिर्फ अभिनय करना और ढोल पीटना अभीष्ट नही है, बल्कि वास्तविक शांत रचना-त्मक कार्यकी जरूरत है, तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बैलगाड़ी मोटर-लारीसे ग्रामीणोका कहीं अधिक भला कर सकती है। वह दूर-दूरके गावोंमें पहुंच सकती है, जहां मोटर-लारीका जाना कठिन है। उसकी कीमत मोटर-लारीकी कीमतका बहुत छोटा भाग होनेके कारण उतनी ही रकममें कई बैलगाडियां खरीदी जा सकती हैं, जो मिलके कई ग्राम-समूहोका भला कर सकती हैं। इन पर खर्च किया हुआ पैसा गावके बढ़ई, लुहार और गाडीवानके जेबमें जाता है। बैलगाडी भी देखनेके लायक सुन्दर बनाई जा सकती है, बशर्ते उसे वैज्ञानिक तरीकेसे बनाया जाय और उसमें बढ़िया पहियें, स्टीलकी हाल और धुरी वगैरा काममें लिये जायं। इन पर किया गया व्यय गावमें से सम्पत्तिको बाहर ले जानेके बनिस्बत उसे गावकी ही ओर मोडेगा। मोटरकी तो वहा जरूरत समझी जा सकती है, जहां किसी भी कामकी सफलताकी कसौटी कामका जल्दी होना माना जाय। मगर गावो-में प्रचारके लिए, जिसका उद्देश्य ग्रामीणोकी बेहतरी है, ऐसी किसी चीजकी जरूरत नही। इसके विपरीत, धीमे और स्थायी उपाय अधिक फायदेमन्द साबित होंगे। एक गावसे दूसरे गावमें भागनेके बनिस्बत एक ही गावमें कुछ समय बिताना अधिक लाभप्रद कहा जा सकता है। इसी प्रकार इससे मनुष्योंके जीवन तथा उनकी समस्यायें अच्छी तरह समझी जा सकती हैं और उन समस्याओको सुलझानेके लिए किया जानेवाला काम प्रभावात्मक हो सकता है।

"इसलिए मोटर-लारियों और ग्रामकार्यका एक साथ चलना बहुत बेतुका मालूम होता है। हमें जरूरत है स्थिर रचनात्मक प्रयत्नकी, न कि बिजली जैसी तेज रफ्तार और ऊपरी तडक भड़ककी। हम स्थानीय बोर्डों और सार्वजनिक सस्थाओको, अ

२२

मुद्रा, विनिमय और कर

मेरी योजनामें नकद (प्रचलित) सिक्का धातु नहीं, परन्तु श्रम है। जो व्यक्ति श्रम कर सकता है उसे वह सिक्का मिलता है, उसे धन प्राप्त होता है। वह अपने श्रमका रूपान्तर कपड़ेमें करता है, अनाज-में करता है। यदि उसे पेरेफीन तेल चाहिये जिसे वह स्वयं पैदा नहीं कर सकता, तो वह अपने पासका अतिरिक्त अनाज देकर यह तेल प्राप्त कर सकता है। इससे श्रमका स्वतंत्र, न्यायसंगत और समान स्तर पर विनिमय होता है — इसलिए वह लूट नहीं है। आप आपत्ति कर सकते हैं कि यह तो वस्तुके बदले वस्तु बदलनेकी पुरानी पद्धतिकी ओर लौटना है। लेकिन क्या सारा अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार इसी पद्धति पर आधारित नहीं है? १

भारतका हरएक गांव पोषण और रक्षणके लिए अपने ऊपर आधार रखनेवाला बनेगा और जिन वस्तुओंका स्थानीय उत्पादन नहीं होगा उनका ही दूसरे गावोंसे लेन-देन रहेगा। २

मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि यदि खादीको शहरों और गावों दोनोंमें सार्वत्रिक बनाना हो, तो वह सिर्फ सूतके बदलेमें ही सुलभ होनी चाहिये। मुझे आशा है कि जैसे जैसे समय बीतता जायेगा, लोग खुद ही सूतके सिक्केसे खादी खरीदनेका आग्रह करेंगे। ३

तब वास्तवमें, श्रम भी धातुके सिक्केके जितना ही द्रव्य है। यदि कुछ लोग किसी कारखानेमें अपनी पूंजी लगाते है, तो आप उसमें अपना श्रम लगाते हैं। जिस तरह पूंजीके बिना आपका श्रम बेकार हो जायगा, उसी तरह आपके श्रमके बिना दुनियाकी पूंजी भी पूरी तरह बेकार हो जायगी। ४

स्वावलम्बनका अर्थ कूपमण्डूकता नहीं है। किसी भी हालतमें हम सभी चीजें पैदा कर भी नहीं सकते और न हमें करना है। हमको तो

गांववालोंकी भलाईके कार्योंमें वस्तुतः बहुत दिलचस्पी रखती है, सलाह देंगी कि वे ग्रामोद्धारके कार्यको गांवकी बनी हुई चीजोंके इस्तेमालसे प्रारम्भ करें और उन हालतोंका अध्ययन करें, जिनके देशमें लगातार गरीबी बढ़ती जा रही है, और उन्हें एक एक करके हटानेमें अपनी सारी शक्ति लगा दें। जब ग्रामीण जीवनके लिए चारों तरफसे गहरे और खूब सोच-विचारकर प्रयत्न करने की जरूरत है, तब ऐसे उपायों पर, जो एक रातमें ग्रामोद्धारका सब्जबाग दिखाना चाहते हैं, सार्वजनिक धन खर्च करना उसका नाश ही करना है।"

आशा है कि जो लोग ग्रामसेवाके कार्यमें दिलचस्पी रखते हैं, वे बैलगाड़ीके पक्षमें दी हुई इन स्पष्ट दलीलों पर ध्यान देंगे। जो गांवोंकी भलाई करना चाहते हैं उन्हींके द्वारा गांवोंके पैसेका नाश हो, यह बड़ी निर्दयताकी बात है। २

बैल यातायातके साधनके रूपमें

बैल हमारे गांवोंमें हर जगह यातायातके साधन हैं; शिमला जैसी जगहमें भी उनका इस रूपमें उपयोग बन्द नहीं हुआ है। रेल और मोटर-लारियां वहां जाती हैं, लेकिन सारे पहाड़ी रास्ते पर मैंने बैलोंको भारी बोझसे लदी हुई गाड़ियां खींचते देखा है। ऐसा लगता है कि यातायातका यह साधन मानो हमारे जीवन और सभ्यताका अंग बन गया है। और अगर हमारी हाथ-उद्योगोंकी सभ्यताको जिन्दा रहना है, तो बैलोंको जिन्दा रहना ही होगा।

आपको इस बातका पता लगाना चाहिये कि गांवमें किसके ढोर सबसे अच्छे हैं और फिर इस बातकी खोज करनी चाहिये कि वह उन्हें इतनी अच्छी हालतमें कैसे रख सकता है। आप इसका पता लगावें कि गांवमें किसकी गाय सबसे ज्यादा दूध देती है और यह जानें कि वह उसे किस तरह पालता और खिलाता है। आप गांवके सबसे अच्छे बैल और सबसे अच्छी गायके लिए इनाम रख सकते हैं। आदर्श ढोरोंके बिना हमारे गांव आदर्श नहीं बन सकते। ३

२२

मुद्रा, विनिमय और कर

मेरी योजनामें नकद (प्रचलित) सिक्का धातु नहीं, परन्तु श्रम है। जो व्यक्ति श्रम कर सकता है, उसे वह सिक्का मिलता है, उसे धन प्राप्त होता है। वह अपने श्रमका रूपान्तर कपड़ेमें करता है, अनाजमें करता है। यदि उसे पेरेफीन तेल चाहिये जिसे वह स्वयं पैदा नहीं कर सकता, तो वह अपने पासका अतिरिक्त अनाज देकर यह तेल प्राप्त कर सकता है। इसमें श्रमका स्वतंत्र, न्यायसंगत और समान स्तर पर विनिमय होता है — इसलिए वह लूट नहीं है। आप आपत्ति कर सकते हैं कि यह तो वस्तुके बदले वस्तु बदलनेकी पुरानी पद्धतिकी ओर लौटना है। लेकिन क्या सारा अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार इसी पद्धति पर आधारित नहीं है? १

भारतका हरएक गांव पोषण और रक्षणके लिए अपने ऊपर आधार रखनेवाला बनेगा और जिन वस्तुओंका स्थानीय उत्पादन नहीं होगा उनका ही दूसरे गांवोंसे लेन-देन रहेगा। २

मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि यदि खादीको शहरों और गांवों दोनोंमें सार्वत्रिक बनाना हो, तो वह सिर्फ सूतके बदलेमें ही सुलभ होनी चाहिये। मुझे आशा है कि जैसे जैसे समय बीतता जायेगा, लोग खुद ही सूतके सिक्केसे खादी खरीदनेका आग्रह करेंगे। ३

तब वास्तवमें, श्रम भी धातुके सिक्केके जितना ही द्रव्य है। यदि कुछ लोग किसी कारखानेमें अपनी पूंजी लगाते हैं, तो आप उसमें अपना श्रम लगाते हैं। जिस तरह पूंजीके बिना आपका श्रम बेकार हो जायगा, उसी तरह आपके श्रमके बिना दुनियाकी पूंजी भी पूरी तरह बेकार हो जायगी। ४

स्वावलम्बनका अर्थ कूपमण्डूकता नहीं है। किसी भी हालतमें हम सभी चीजें पैदा कर भी नहीं सकते और न हमें करना है। हमको तो

पूर्ण स्वावलंबनके नजदीक पहुंचना है। जो चीजें हम पैदा नहीं कर सकते उन्हें पानेके लिए उनके बदलेमें देनेको हमें अपनी आवश्यकतासे अधिक चीजें पैदा करनी ही होंगी। ५

जिस तरह टकसालमें सोना-चांदी आता है, लेकिन बाहर तो सोने-चांदीके सिक्के ही जाते हैं; उसी तरह सूतके भंडारमें से भी सिर्फ खादी-रूपी सिक्के ही बाहर जा सकते हैं। ६

आजतक मेरे प्रदेशमें कौड़ियों और गुने हुए थोथे बादामोंका आपस-में लेन-देनके लिए और सरकारी खजानेमें भरनेके लिए नकदीके रूपमें उपयोग होता था। उपयोगिताकी दृष्टिसे इन चीजोंका कोई मूल्य नहीं था। यह लोगोंकी दरिद्रताका सूचक था। इसका मतलब यह था कि छोटेसे छोटा नकद सिक्का रखनेकी भी उनकी ताकत न थी। पांच कौड़ीसे वे एक सूई या थोड़ीसी साग-सब्जी खरीदते थे। मैंने एक ऐसे नापकी सूचना की है, जो प्रतीकमात्र नहीं, बल्कि जिसकी हमेशा अपनी स्वतंत्र कीमत रहेगी और वह भी उसके बाजार-भावके बराबर। इस लिहाजसे वह एक आदर्श द्रव्य होगा। हालके लिए मेरी यह सूचना है कि प्रयोगके रूपमें कातनेवालोंके लिए विशेषतया और खादीप्रेमियोंके लिए सामान्य तौर पर आपसी व्यवहारके लिए तानेका एक तार छोटेसे छोटे सिक्केकी तरह उपयोग किया जाय। कातनेवाले सूतके बदलेमें अपनी सामान्य दैनिक आवश्यकताकी चीजें निश्चित भाव पर खरीद सकेंगे। शुरूमें चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघको साथमें मिलकर भंडार खोलने होंगे। आगे चलकर जो कोई सहकार देना चाहे उसकी सहायता इन भंडारोंके खोलनेमें ली जाय। जिस तरह मैंने इस योजनाकी कल्पना की है उसके अनुसार यह तभी सफल होगी, जब इसे विकेन्द्रित करके चलाया जाय। वह इसका अवगुण नहीं, बल्कि विशेष गुण है। ७

परिश्रम-रूपी कर प्रजाको पुष्ट तथा बलवान बनाता है। जहां प्रजाजन स्वेच्छापूर्वक समस्त प्रजाके कल्याणके लिए परिश्रम करते हैं, वहां रुपयेका लेनदेन करनेकी कम जरूरत रहती है और कर वसूल करने तथा उसका हिसाब रखनेकी मेहनत बच जाती है; इतने पर भी परिणाम कर अदा करने जितना ही होता है। ८

२३

गांवोंकी सफाई

श्रम और बुद्धिके बीच जो अलगाव हो गया है, उसके कारण हम अपने गांवोंके प्रति इतने लापरवाह हो गये है कि वह एक गुनाह ही माना जा सकता है। नतीजा यह हुआ है कि देशमें जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गावोंके बदले हमें घूरे जैसे गदे गाव देखनेको मिलते हैं। बहुतसे या यों कहिये कि करीब-करीब सभी गावोंमें घुसते समय जो अनुभव होता है, उससे दिलको खुशी नही होती। गावके बाहर और उसके आसपास इतनी गदगी होती है और वहा इतनी बदबू आती है कि अकसर गावमें जानेवालेको आख मूदकर और नाक दबाकर ही जाना पड़ता है। ज्यादातर कांग्रेसी गावके निवासी होने चाहिये, अगर ऐसा हो तो उनका कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने गांवोंको सब तरहसे सफाईके नमूने बनायें। लेकिन गाववालोंके हमेशाके यानी रोज-रोजके जीवनमें शरीक होने या उनके साथ घुलने-मिलनेको उन्होंने कभी अपना कर्तव्य माना ही नहीं। हमने राष्ट्रीय या सामाजिक सफाईको न तो जरूरी गुण माना, और न उसका विकास ही किया। यों रिवाजके कारण हम अपने ढंगसे नहा भर लेते है, परन्तु जिस नदी, तालाब या कुएके किनारे हम श्राद्ध या वैसी ही दूसरी कोई धार्मिक क्रिया करते हैं और जिन जलाशयोंमें पवित्र होनेके विचारसे हम नहाते हे, उनके पानीको बिगाड़ने या गन्दा करनेमें हमें कोई हिचक नही होती। हमारी इस कमजोरीको मैं एक बड़ा दुर्गुण मानता हू। इस दुर्गुणका ही यह नतीजा है कि हमारे गावोंकी और हमारी पवित्र नदियोंके पवित्र तटोंकी लज्जाजनक दुर्दशा और गन्दगीसे पैदा होनेवाली बीमारिया हमें भोगनी पड़ती हैं। १

गावोंमें करनेके कार्य ये है। उनमें जहा-जहा कूड़े-कर्कट तथा गोबरके ढेर हों वहा-वहासे उनको हटाया जाय और कुओं तथा तालाबोंकी सफाई की जाय। अगर कार्यकर्ता लोग नौकर रखे हुए भंगियोंकी

भांति खुद रोज सफाईका काम करना शुरू कर दें और साथ ही गांववालोंको यह भी बतलाते रहें कि उनसे सफाईके कार्यमें शरीक होनेकी आशा रखी जाती है, ताकि आगे चलकर अन्तमें सारा काम गांववाले स्वयं करने लग जायें, तो यह निश्चित है कि आगे या पीछे गांववाले इस कार्यमें अवश्य सहयोग देने लगेंगे।

वहांके बाजार तथा गलियोंको सब प्रकारका कूड़ा-कर्कट हटाकर स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर उस कूड़ेका वर्गीकरण कर देना चाहिये। उसमें से कुछकी तो खाद बनाई जा सकेगी, कुछको सिर्फ जमीनमें गाड़ देना ही बस होगा और कुछ हिस्सा ऐसा होगा कि जो सीधा संपत्तिके रूपमें परिणत किया जा सकेगा। वहां मिली हुई प्रत्येक हड्डी एक बहुमूल्य कच्चा माल होगी, जिससे बहुतसी उपयोगी चीजें बनाई जा सकेंगी, या जिसे पीसकर कीमती खाद बनाई जा सकेगी। कपड़ेके फटे-पुराने चिथड़ों तथा रद्दी कागजोंसे कागज बनाये जा सकते हैं; और इधर-उधरसे इकट्ठा किया हुआ मल-मूत्र गांवके खेतोंके लिए स्वर्णमय खादका काम देगा।

गांवोंके तालाबोंसे स्त्री और पुरुष सब स्नान करने, कपड़े धोने, पानी पीने तथा भोजन बनानेका काम लिया करते हैं। बहुतसे गांवोंके तालाब पशुओंके काम भी आते हैं। बहुधा उनमें भैंसें बैठी हुई पाई जाती हैं। आश्चर्य तो यह है कि तालाबोंका इतना पापपूर्ण दुरुपयोग होते रहने पर भी महामारियोंसे गांवोंका नाश अब तक क्यों नहीं हो पाया है? यह एक सार्वत्रिक डॉक्टरी प्रमाण है कि पानीकी सफाईके सम्बन्धमें गांववालोंकी उपेक्षा-वृत्ति ही उनकी बहुतसी बीमारियोंका कारण है।

सब इस बातको स्वीकार करेंगे कि इस प्रकारका सेवाकार्य शिक्षाप्रद होनेके साथ ही साथ अलौकिक रूपसे आनन्ददायक भी है और इसमें भारतवर्षके सन्ताप-पीड़ित जन-समाजका अनिर्वचनीय कल्याण भी समाया हुआ है। मुझे उम्मीद है कि इस समस्याको सुलझानेके तरीकेका मैंने ऊपर जो वर्णन किया है, उससे इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि अगर ऐसे उत्साही कार्यकर्ता मिल जायं, जो झाड़ू और फावड़ेको

ही उतनी ही आसानी और गर्वके साथ हाथमें ले लें जैसे वे कलम और पेंसिलको लेते हैं, तो इस कामें खर्चेका कोई सवाल ही नहीं उठेगा। अगर किसी खर्चेकी जरूरत पड़ेगी भी तो वह केवल झाड़, फावड़ा, टोकरी, कुदाली और शायद कुछ कीटाणु-नाशक दवाइया खरीदने तक ही सीमित रहेगा। सूखी राख सभवत उतनी ही अच्छी कीटाणु-नाशक दवा है जितनी कि कोई रसायनशास्त्री दे सकता है। लेकिन यहां तो उदार रसायनशास्त्री हमको यह बतलायें कि गावके लिए सबसे सस्ती और कारगर कीटाणु-नाशक चीज कौनसी है, जिसे गाववाले स्वय अपने गावोंमें बना सकते हैं। २

२४
गांवोंका स्वास्थ्य

जो समाज सुव्यवस्थित है उसमें रहनेवाले सभी लोग — नागरिक — तन्दुरुस्तीके नियमोंको जानते हैं और उन पर अमल करते हैं। अब तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि तन्दुरुस्तीके नियमोंको न जाननेसे और उन नियमोंके पालनमें लापरवाह रहनेसे ही मनुष्य-जातिका जिन जिन रोगोंसे परिचय हुआ है, उनमें से ज्यादातर रोग उसे होते हैं। बेशक, हमारे देशकी दूसरे देशोंसे बढ़ी-चढ़ी मृत्युसंख्याका ज्यादातर कारण गरीबी है, जो हमारे देशवासियोंके शरीरको कुरेदकर खा रही है, लेकिन अगर उनको तन्दुरुस्तीके नियमोंकी ठीक ठीक शिक्षा दी जाय, तो इसमें बहुत कमी की जा सकती है।

मनुष्य-जातिके लिए साधारणत स्वास्थ्यका पहला नियम यह है कि मन चगा है तो शरीर भी चंगा है। नीरोग शरीरमें निर्विकार मनका वास होता है, यह एक स्वयंसिद्ध सत्य है। मन और शरीरके बीच अटूट सम्बन्ध है। अगर हमारे मन निर्विकार यानी नीरोग हों, तो वे हर तरहकी हिंसासे मुक्त हो जाय; फिर हमारे हाथों तन्दुरुस्तीके नियमोंका सहज भावसे पालन होने लगे और किसी तरहकी खास कोशिशके बिना ही हमारे शरीर तन्दुरुस्त रहने लगें। १

शरीरके परिश्रमसे पहले आरोग्य किसे कहते हैं यह समझ लेना ठीक होगा। आरोग्यके मानी है तन्दुरुस्त शरीर। जिसका शरीर व्याधि-रहित है, जिसका शरीर सामान्य काम कर सकता है, अर्थात् जो मनुष्य बगैर थकानके रोज दस-बारह मील चल सकता है, बगैर थकानके सामान्य मेहनत-मजदूरी कर सकता है, सामान्य भोजन पचा सकता है, जिसकी इंद्रियां और मन स्वस्थ हैं, ऐसे मनुष्यका शरीर तन्दुरुस्त कहा जा सकता है। २

तन्दुरस्तीके कायदे और आरोग्यशास्त्रके नियम बिलकुल सरल और सादे हैं और वे आसानीसे सीखे जा सकते हैं। लेकिन उन पर अमल करना कठिन है। नीचे मैं ऐसे कुछ नियम देता हूं:

१. हमेशा शुद्ध विचार कीजिये और तमाम गन्दे और निकम्मे विचारोंको मनसे निकाल दीजिये।

२. दिन-रात ताजी-से-ताजी हवाका सेवन कीजिये।

३. शरीर और मनके कामका तोल बनाये रखें, यानी दोनोंको बेमेल न होने दें।

४. तनकर खड़े रहें, तनकर बैठें और अपने हर काममें साफ-सुथरे रहें; और इन सब आदतोंको अपनी आन्तरिक स्वस्थताका प्रति-बिम्ब बनने दें।

५. खाना इसलिए खाइये कि अपने जैसे अपने मानव-बन्धुओंकी सेवाके लिए ही जिया जा सके। भोग भोगनेके लिए जीने और खानेका विचार छोड़ दीजिये। अतएव उतना ही खाइये जितनेसे आपका मन और आपका शरीर अच्छी हालतमें रहे और ठीकसे काम कर सके। आदमी जैसा खाना खाता है वैसा ही बन जाता है।

६. आप जो पानी पियें, जो खाना खायें और जिस हवामें सांस लें, वे सब बिलकुल साफ होने चाहिये। आप सिर्फ अपनी निजकी सफाईसे सन्तोष न मानें, बल्कि हवा, पानी और खुराककी जितनी सफाई आप अपने लिए रखें, उतनी ही सफाईका शौक आप अपने आसपासके वातावरणमें भी फैलायें। ३

रोगका कुदरती इलाज

कुदरती इलाजके लिए बहुत बड़ी पंडिताईकी या ऊंचे दरजेकी युनिवर्सिटीकी डिग्रियां प्राप्त करनेकी जरूरत नहीं पडती। जो चीज हमें सब तक पहुंचानी है, सादगी उसकी खास निशानी होनी चाहिये। जो चीज करोड़ोंके लाभके लिए है, उसके लिए बड़े-बड़े पोथोंको उलटकर प्राप्त किये गये ज्ञानकी जरूरत नहीं। ऐसा पांडित्य तो बहुत थोड़े लोग पा सकते हैं, इसलिए वह अमीरोंके ही कामका होता है। लेकिन हिन्दुस्तान तो ऐसे ७ लाख गांवोंमें बसा है, जिन्हें कोई जानता तक नहीं, जो बहुत छोटे-छोटे हैं और दूर-दूरके कोनोंमें बसे हुए हैं। उनमें से कई तो ऐसे हैं जिनकी आबादी ५००–६०० से ज्यादा नहीं, और कुछ गांव १०० से भी कम आबादीवाले होते हैं। मेरा बस चले तो मैं ऐसे ही किसी गांवमें जाकर रहूं। वह सच्चा हिन्दुस्तान है, मेरा हिन्दुस्तान है; उसीके लिए मैं जीता हूं। इन गरीबोंके बीच आप बड़ी बड़ी डिग्रियोंवाले डॉक्टरों और अस्पतालोंकी कीमती चीजोंके बड़े काफिलेको किस तरह ले जायंगे? उन्हें तो सादे कुदरती इलाज और रामनामका ही आधार है। ४

मेरी रायमें जिस जगह शरीर-सफाई, घर-सफाई और ग्राम-सफाई हो तथा युक्ताहार और योग्य व्यायाम हो, वहां कमसे कम बीमारी होती है। और, अगर चित्तशुद्धि भी हो तब तो कहा जा सकता है कि बीमारी असंभव हो जाती है। रामनामके बिना चित्तशुद्धि नहीं हो सकती। अगर ग्रामवासी इतनी बात समझ जाय, तो उन्हें वैद्य, हकीम या डॉक्टरकी जरूरत न रह जाय।

कुदरती उपचारके गर्भमें यह बात रही है कि मानव-जीवनकी आदर्श रचनामें गांव या शहरकी आदर्श रचना आ ही जाती है। और उसका मध्यबिन्दु तो ईश्वर ही हो सकता है। ५

कुदरती इलाजके गर्भमें यह बात निहित है कि उसमें कमसे कम खर्च और ज्यादासे ज्यादा सादगी होनी चाहिये। कुदरती उपचारका आदर्श ही यह है कि जहां तक संभव हो, उसके साधन ऐसे होने चाहिये कि उपचार गांवमें ही हो सके। जो साधन नहीं हैं वे उत्पन्न

जाने चाहिये। कुदरती उपचारमें जीवन-परिवर्तनकी बात आती है। यह कोई वैद्यकी दी हुई पुड़िया लेनेकी बात नहीं है, और न अस्पताल जाकर मुफ्त दवा लेने या वहां रहनेकी बात है। जो मुफ्त दवा लेता है वह भिक्षुक बनता है। जो कुदरती उपचार करता है, वह कभी भिक्षुक नहीं बनता। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है और अच्छा होनेका उपाय खुद ही कर लेता है। वह अपने शरीरमें से जहर निकाल कर ऐसा प्रयत्न करता है, जिससे दुबारा बीमार न पड़ सके।

पथ्य खुराक — युक्ताहार — इस उपचारका अनिवार्य अंग है। आज हमारे गांव हमारी ही तरह कंगाल हैं। गांवोंमें साग-सब्जी, फल-दूध वगैरा पैदा करना कुदरती इलाजका खास अंग है। इसमें जो समय खर्च होता है वह व्यर्थ नहीं जाता। बल्कि उससे सारे ग्रामवासियोंको और अंतमें सारे हिन्दुस्तानको लाभ होता है। ६

ग्रामवासियोंके लिए मेरी कल्पनाके नैसर्गिक उपचारका मतलब यह है कि वह गांवमें जितने देहाती साधन मिल सकें, उनसे बिजली और बरफकी मददके बिना जितना किया जा सके उतना ही किया जाय। यह काम तो मेरे जैसेका ही हो सकता है, जो गांवका बन गया है और जिसकी देह शहरोंमें रहते हुए भी मन गांवमें ही रहता है। ७

मेरा कुदरती इलाज तो सिर्फ गांववालों और गांवोंके लिए ही है। इसलिए उसमें खुर्दबीन, एक्स-रे वगैराका कोई स्थान नहीं है। और न ही कुदरती इलाजमें कुनैन, एमिटीन, पेनिसिलीन वगैरा दवाओंकी गुंजाइश है। उसमें अपनी सफाई, घरकी सफाई, गांवकी सफाई और स्वास्थ्यकी रक्षाका पहला और पूरा पूरा स्थान है। इसकी तहमें खयाल यह है कि अगर इतना किया जाय या हो सके, तो कोई बीमारी ही न हो। और बीमारी आ जाय तो उसे मिटानेके लिए कुदरतके सभी कानूनों पर अमल करनेके साथ-साथ रामनाम ही सच्चा इलाज है। यह इलाज सार्वजनिक नहीं हो सकता। जब तक स्वयं इलाज करने-वालेमें रामनामकी सिद्धि न आ जाय, तब तक रामनाम-रूपी उपचारको पलक मारते ही सार्वजनिक नहीं बनाया जा सकता। लेकिन पंचमहाभूतोंमें से यानी पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और हवामें से जितनी शक्ति ली

जा सके उतनी लेकर रोगको मिटानेका यह एक प्रयत्न है। और मेरे विचारसे कुदरती इलाज यही गनम हो जाता है। इसलिए आजकल उरुलीकाचनमें जो प्रयोग चल रहा है, वह गाववालोंको स्वास्थ्यकी रक्षा करनेकी कला सिखाने और बीमारोंकी बीमारीको पचमहाभूतोंकी मददसे मिटानेका प्रयोग है। जरूरत मालूम होने पर उरुलीमे मिलनेवाली जडी-बूटीका उपयोग किया जा सकता है, और पथ्य-परहेज तो कुदरती इलाजका जरूरी अग है ही। ८

जिन तत्त्वोंसे यह मनुष्य-रूपी पुतला बना है, वे ही नैसर्गिक उपचारोंके साधन हैं। यह शरीर पृथ्वी, पानी, आकाश (अवकाश) तेज (सूर्य) और वायुका बना हुआ है। ९

पृथ्वी अर्थात् मिट्टी

जुस्टने अपनी पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' मे खास जोर मिट्टी पर दिया है। मुझे लगा कि उसका उपयोग अपने पर मुझे कर लेना चाहिये। जुस्टने कब्जियतमें मिट्टीको ठडे पानीमें भिगोकर बरीक कपडेके पेडू पर रखनेकी सूचना की है। पर मैंने तो एक बारीक कपडेमें पुलटिसकी तरह मिट्टी लपेट कर सारी रात अपने पेडू पर रखी। सवेरे उठा तो दस्तकी हाजत थी। पाखाने जाते ही बधा हुआ सन्तोषकारक दस्त हुआ। १०

मिट्टीकी यह पट्टी तीन इच चौडी, छह इच लम्बी और बाजरेकी रोटीसे दुगुनी मोटी या यह कहो कि आधा इच मोटी होनी है। ११

मेरा यह अनुभव है कि सिरमें दर्द होता हो, तो मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे ज्यादातर लाभ होता है। यह प्रयोग मैंने सैकडो लोगों पर किया है। मैं जानता हू कि सिरदर्दके अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु सामान्यत' यह कहा जा सकता है कि किसी भी कारणसे सिरमें दर्द क्यों न हो, मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे तात्कालिक लाभ तो होता ही है।

सामान्य फोडे-फुन्सीको भी मिट्टी मिटाती है। मैंने तो बहते हुए फोडे पर भी मिट्टी रखी है। ऐसे फोडे पर मिट्टी रखनेके पहले मैं साफ कपडेको परमॅगनेटके गुलाबी पानीमें भिगोता हूँ, फोडेको साफ करता हू और फिर उस पर मिट्टीकी पुलटिस रखता हू। इससे अधिकाश

मिट ही जाते हैं। जिन लोगों पर मैंने यह प्रयोग किया है, उनमें से एक भी केस निष्फल रहा हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। बर्रे वगैराके डंक पर मिट्टी तुरन्त फायदा करती है। बिच्छूके डंक पर भी मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। मिट्टी दूसरे इलाजोंसे बढ़िया तो साबित नहीं हुई। १२

सख्त बुखारमें मिट्टीका उपयोग पेडू पर रखनेके लिए और सिरमें दर्द हो तो सिर पर रखनेके लिए मैंने किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि उससे हमेशा बुखार उतरा ही है, पर रोगीको उससे शांति जरूर मिली है। टायफाइडमें मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। वह बुखार तो अपनी मुद्दत लेकर ही जाता था, पर मिट्टीसे रोगीको हमेशा शांति मिलती थी। सब रोगी मिट्टी मांगते थे। १३

मिट्टीका उपयोग सेवाग्राममें एन्टीफ्लोजिस्टिनकी जगह छूटसे हुआ है। उसमें थोड़ा सरसोंका तेल और नमक मिलाया जाता है। इस मिट्टीको अच्छी तरह गरम करना पड़ता है। इससे वह बिलकुल निर्दोष बन जाती है। १४

मिट्टी न तो बहुत चिकनी होनी चाहिये और न बिलकुल रेतीली। खादवाली तो हरगिज न होनी चाहिये। वह रेशमकी तरह मुलायम होनी चाहिये और उसमें कंकरी बिलकुल न होनी चाहिये। इसलिए उसे बारीक छलनीसे छान लेना अच्छा है। बिलकुल साफ न लगे तो उसे सेंक लेना चाहिये। मिट्टी बिलकुल सूखी होनी चाहिये। गीली हो तो उसे धूपमें या अंगीठी पर सुखा लेना चाहिये। १५

जुस्ट[1] ने लिखा है कि साफ बारीक समुद्री रेती दस्त लानेके लिए उपयोगमें ली जाती है। मिट्टी किस तरह काम करती है, इसके बारेमें उसने बताया है कि मिट्टी पचती नहीं, उसे कचरेकी तरह बाहर निकलना ही होता है। और अपने साथ वह मलको भी निकालती है। लेकिन इसका मैंने कभी अनुभव नहीं किया है। इसलिए जो लोग यह प्रयोग

---

१. 'आरोग्यकी कुंजी' में यहां क्युनेका नाम दिया गया है। परन्तु इस पुस्तकके अंग्रेजी संस्करणमें जुस्टका नाम है। जुस्ट नाम ही सही मालूम होनेसे यहां क्युनेके बदले जुस्ट कर दिया गया है।

करना चाहें वे सोच-समझकर करें। एक-दो बार आजमा देखनेमें कोई नुकसान होनेकी संभावना नहीं है। १६

पानी

क्युनेके उपचारोंमें मध्यबिन्दु कटिस्नान और घर्षण-स्नान हैं। उनके लिए उसने खास टबकी भी योजना की है। पर उसकी खास आवश्यकता नहीं है। मनुष्यके कदके अनुसार तीससे छत्तीस इंच गहरा टब ठीक काम देता है। अनुभवसे ज्यादा बड़े टबकी आवश्यकता मालूम हो, तो ज्यादा बड़ा ले सकते हैं। उसमें ठंडा पानी भरना चाहिये। गर्मीकी ऋतुमें पानीको ठंडा रखनेकी खास आवश्यकता है। पानीको तुरन्त ठंडा करनेके लिए यदि मिल सके तो उसमें थोड़ी बरफ डाल सकते हैं। समय हो तो मिट्टीके घड़ेमें ठंडा किया हुआ पानी अच्छी तरह काम दे सकता है। टबमें पानीके ऊपर एक कपड़ा ढककर जल्दी-जल्दी पंखा करनेसे भी पानी तुरन्त ठंडा किया जा सकता है।

टबको दीवारके साथ लगाकर रखना चाहिये और उसमें पीठको सहारा देनेके लिए एक लम्बा लकड़ीका तख्ता रखना चाहिये, ताकि उसका सहारा लेकर रोगी आरामसे बैठ सके। रोगीको अपने पैर पानीसे बाहर रखकर बैठना चाहिये। पानीसे बाहरका शरीरका भाग ढका रहना चाहिये, ताकि रोगीको सर्दी न लगे। जिस कमरेमें टब रखा जाय, वह हवा और रोशनीवाला होना चाहिये। रोगीको आरामसे टबमें बैठाकर पेड़ू पर नरम तौलियेसे धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिये। पांच मिनिटसे लेकर तीस मिनिट तक टबमें बैठ सकते हैं। स्नानके बाद शरीरके गीले हिस्सेको सुखाकर रोगीको बिस्तरमें सुला देना चाहिये।

यह स्नान बहुत सख्त बुखारको भी उतार देता है। इस तरह स्नान लेनेमें हानि तो है ही नहीं, जब कि लाभ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। स्नान भूखे पेट ही लेना चाहिये। इससे कब्जियतको भी लाभ होता है और अजीर्ण भी मिटता है। स्नान लेनेवालेके शरीरमें स्फूर्ति आती है। कब्जियतवालोंको स्नानके बाद आधा घंटा टहलनेकी सलाह क्युनेने दी है। इस स्नानका मैंने बहुत उपयोग किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि यह हमेशा ही सफल हुआ है, परन्तु इतना मैं कह सकता हूं कि

[illegible] हुआ है। [illegible] हुआ हो तब [illegible] तो उसे [illegible] और [illegible] मिल जायगा। [illegible]

अब मैं घर्षण-स्नान पर आता हूं। जननेन्द्रिय बहुत नाजुक इंद्रिय है। उसकी [illegible] अद्भुत वस्तु होती है। उसका वर्णन करना मुझे नहीं आता है। [illegible] कहते हैं कि [illegible] (सुपारी पर चमड़ी [illegible]) [illegible] चाहिये और पानी डालते जाना चाहिये। [illegible] पानीके टबमें एक स्टूल रखा जाय। स्टूलकी बैठक पानीकी सतहसे थोड़ी ऊंची होनी चाहिये। इस स्टूल पर पांव टबके बाहर रखकर बैठ जाना चाहिये और इंद्रियके सिरे पर घर्षण करना चाहिये। उसे तनिक भी तकलीफ नहीं पहुंचनी चाहिये। यह क्रिया [illegible] अच्छी लगनी चाहिये। स्नान लेनेवालेको इस घर्षणसे बहुत शांति मिलती है। उसका रोग भले कुछ भी हो, उस समय तो वह शांत हो जाता है। क्हूनेने इस स्नानको कटिस्नानसे ऊंचा स्थान दिया है। मुझे जितना अनुभव कटिस्नानका है उतना घर्षण-स्नानका नहीं है। उसमें मुख्य दोष तो मैं अपना ही मानता हूं। मैंने घर्षण-स्नानका प्रयोग करनेमें आलस्य किया है। जिनको यह उपचार करनेकी मैंने सूचना की थी उन्होंने उसका धीरजसे प्रयोग नहीं किया। इसलिए इस स्नानके परिणामके बारेमें मैं निजी अनुभवसे कुछ नहीं लिख सकता। सबको इसे स्वयं आजमा कर देख लेना चाहिये। टब वगैरा न मिल सके तो लोटेमें पानी भरकर भी घर्षण-स्नान किया जा सकता है। उससे रोगीको शांति तो अवश्य मिलेगी। लोग इस इंद्रियकी सफाई पर बहुत कम ध्यान देते हैं। घर्षण-स्नानसे वह आसानीसे साफ हो जाती है। ध्यान न रखा जाय तो सुपारीको ढंकनेवाली चमड़ीमें मैल भर जाता है। इस मैलको साफ करनेकी पूरी आवश्यकता है। जननेन्द्रियका उपयोग घर्षण-स्नानके लिए करने और उसे साफ-सुथरी रखनेसे ब्रह्मचर्य-पालनमें मदद मिलती है। इससे आसपासके तन्तु मजबूत और शांत

बनते है; और इस इन्द्रियके द्वारा व्यर्थ वीर्य-स्खलन न होने देनेकी सावधानी बढती है। क्योंकि इस तरह स्राव होने देनेमें जो गन्दगी रहती है, उसके प्रति मनमें घृणा पैदा होती है, और होनी भी चाहिये। १८

शरीरमें घमोरी निकली हो, पित्ती (prickly heat) निकली हुई हो, आमवात (urticaria) निकला हो, बहुत खुजली आती हो, खसरा या चेचक निकली हो, तब चद्दर-स्नान उपयोगी सिद्ध होता है। मैंने इन रोगोंमें चद्दर-स्नानका उपयोग छूटसे किया है। चेचक या खसरेका रोग हो तब पानीमें गुलाबी रंग आ जाय इतना परमेंगनेट में डालता था। चद्दरका उपयोग हो जाने पर उसे उबलते पानीमें डाल देना चाहिये और जब पानी कुनकुना हो जाय तब उसे अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिये।

मैंने देखा है कि *जब रक्तकी गति मन्द पड गई हो, पाव टूटते हो*, तब बरफ घिसनेसे बहुत फायदा होता है। बरफके उपचारका असर गर्मीकी ऋतुमें अधिक अच्छा होता है। सर्दीकी ऋतुमें कमजोर मनुष्य पर बरफका उपचार करनेमें खतरा है।

अब गरम पानीके उपचारोंके बारेमें हम विचार करें। गरम पानीका समझदारीसे उपयोग करनेसे अनेक रोग शात हो जाते हैं। जो काम प्रसिद्ध दवा आयोडीन करती है, वही काम काफी हद तक गरम पानी कर देता है। सूजनवाले *भाग* पर हम *आयोडीन लगाते* हैं। उस पर गरम पानीकी पट्टी रखनेसे आराम होनेकी संभावना है। कानके दर्दमें आयोडीनकी बूंदे डालते हैं; उसमें भी गरम पानीकी पिचकारी लगानेसे दर्द शात होनेकी सभावना है। आयोडीनके उपयोगमें कुछ खतरा रहता है, जब कि गरम पानीके उपचारमें कुछ नही। जिस तरह आयोडीन जन्तुनाशक है उसी तरह उबलता गरम पानी भी जन्तुनाशक है। इसका यह अर्थ नही कि आयोडीन बहुत उपयोगी वस्तु नही है। उसकी उपयोगिताके बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शका नही है। पर गरीबके घरमें आयोडीन नही होता। वह महगी चीज है। वह हरएक आदमीके हाथमें नहीं रखा जा सकता। पर पानी तो हर जगह होता है। इसीलिए हम दवाके तौर पर उसके उपयोगकी अवगणना करते

हैं। ऐसी अवगणनासे हमें बचना चाहिये। ऐसे घरेलू उपचारोंको सीखकर और अपनाकर हम अनेक भयोंसे बच जाते हैं। १९

भापके रूपमें पानी बहुत काम देता है। रोगीको पसीना न आता हो तो भापके द्वारा वह लाया जा सकता है। गठियासे जिनका शरीर निकम्मा बन गया हो, या जिनका वजन बहुत बढ़ गया हो, उनके लिए भाप बहुत उपयोगी वस्तु है।

भाप लेनेका पुराना और आसानसे आसान तरीका यह है: सनकी या सुतलीकी खाटका उपयोग करना ज्यादा अच्छा है, लेकिन निवारकी खाट भी चल सकती है। खाट पर एक खेस या कम्बल बिछाकर रोगीको उस पर सुला देना चाहिये। उबलते पानीके दो पतीले या हंडे खाटके नीचे रखकर रोगीको इस तरह ढंक देना चाहिये कि कम्बल खाट परसे लटक कर चारों तरफ जमीनको छू ले, ताकि खाटके नीचे बाहरकी हवा जा ही न सके। इस तरहसे लपेटनेके बाद पानीके पतीलों या हंडों परसे ढंकना उतार देना चाहिये। इससे रोगीको भाप मिलने लगेगी। अच्छी तरह भाप न मिले, तो पानीको बदल देना चाहिये। दूसरे हंडेमें पानी उबलता हो, तो उसे खाटके नीचे रख देना चाहिये। साधारणतया हम लोगोंमें यह रिवाज है कि खाटके नीचे हम अंगारे रखते हैं और उसके ऊपर उबलते हुए पानीका बरतन रखते हैं। इस तरह पानीकी गर्मी कुछ ज्यादा मिल सकती है, लेकिन उसमें दुर्घटनाका डर रहता है। एक चिनगारी भी उड़े और कम्बल या किसी दूसरी चीजको आग लग जाय, तो रोगीकी जान खतरेमें पड़ सकती है। इसलिए तुरन्त गर्मी पानेका लोभ छोड़कर जो उपाय मैंने बताया है उसीका उपयोग करना अच्छा है।

कुछ लोग भापके पानीमें वनस्पतियां डालते हैं, जैसे कि नीमके पत्ते। मुझे स्वयं इसकी उपयोगिताका अनुभव नहीं है, परन्तु भापका उपयोग तो प्रत्यक्ष है। यह हुआ पसीना लानेका तरीका।

किसीके पांव ठंडे हो गये हों या टूटते हों, तो एक गहरे बरतनमें, जिसमें कि घुटने तक पांव पहुंच सकें, सहन होने लायक गरम पानी भरना चाहिये और उसमें राईकी भुक्की डालकर कुछ मिनिट तक पांव

रखने चाहियें। इससे पांव गरम हो जाते हैं, बेचैनी मिट जाती है और पांवोंका टूटना बन्द हो जाता है, खून नीचे उतरने लगता है और रोगीको आराम मालूम होता है। बलगम हो या गला दुखता हो, तो केटलीमें उबलता पानी भरकर गले और नाकको भाप दी जा सकती है। केटलीको एक स्वतंत्र नली लगाकर उसके द्वारा आरामसे भाप ली जा सकती है। यह नली लकड़ीकी होनी चाहिये। इस नली पर रबड़की नली लगा लेनेसे काम और भी आसान हो जाता है। २०

आकाश

आकाशको हम अवकाश कह सकते हैं। २१

हम आकाशमें घिरे हुए न हों तो हमारा दम घुट जाय और हम मर जायें। जहां कुछ नहीं है वहां आकाश है। इसलिए हम दूर-दूर जो आसमानी रंग देख रहे हैं वही केवल आकाश नहीं है। आकाश हमारे पाससे ही शुरू होता है; वह तो हमारे भीतर भी है। अवकाश-मात्रको हम आकाश नहीं कह सकते। सच है कि जो खाली दिखाई देता है वह हवासे भरा हुआ है।

हम हवाको तो नहीं देख सकते, पर वह कहां रहती है? वह आकाशमें ही विहार करती है। इसलिए आकाश हमें छोड़ ही नहीं सकता। परन्तु आकाशको कौन खींच सकता है?

इस आकाशकी मदद हमें आरोग्यकी रक्षाके लिए या आरोग्य खो चुके हों तो उसे पुनः प्राप्त करनेके लिए लेनी है। २२

जिस प्रकार आकाश यहां है उसी तरह आवरणके बाहर भी है। इसलिए सर्वव्यापी तो आकाश ही है। फिर भले वैज्ञानिक सिद्ध करें कि इस आवरणके ऊपर ईथर नामक पदार्थ है अथवा अन्य कोई पदार्थ है। ईथर भी जिसमें रहता है वह आकाश है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ईश्वरका भेद जाना जा सके तो ही आकाशका भेद जाना जा सकता है।

ऐसे महान तत्त्वका अध्ययन और उपयोग हम जितना करेंगे उतना ही अधिक आरोग्य हम भोग सकेंगे।

पहला पाठ तो यह है कि इस सुदूर और अदूर तत्त्वके और हमारे बीचमें कोई आवरण नहीं आने देना चाहिये। अर्थात् यदि घर-वारके बिना या कपड़ोंके बिना हम इस अनन्तके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकें, तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह आरोग्यका अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्श तक हम भले न पहुंच सकें या करोड़ोंमें से कोई एक ही पहुंच सके, तो भी इस आदर्शको जानना, समझना और उसके प्रति आदरभाव रखना आवश्यक है। और यदि वह हमारा आदर्श हो तो जिस हद तक हम उसे प्राप्त कर सकेंगे, उस हद तक हम सुख शांति और सन्तोषका अनुभव करेंगे। २३

इस विचारश्रेणीके अनुसार घरवार, वस्त्रादिके उपयोगमें हम काफी अवकाश रख सकते हैं। कई घरोंमें इतना साज-सामान देखनेमें आता है कि मेरे जैसे गरीब आदमीका तो उसमें दम ही घुटने लगता है। उन सब चीजोंका उपयोग क्या है, यह उसकी समझमें नहीं आता। उसे वे सब धूल और जन्तुओंको इकट्ठा करनेके साधन ही मालूम होंगे। २

मनुष्यके सोनेका स्थान आकाशके नीचे होना चाहिये। ओस और सर्दीसे बचनेके लिए काफी ओढ़नेको रखा जा सकता है। वर्षा ऋतु में एक छातेकी-सी छत भले हो, पर बाकी हर समय उसकी छत अगणित तारागणोंसे जड़ित आकाश ही होगा। जब आंख खुलेगी तो वह प्रतिक्षण नया दृश्य देखेगा। इस दृश्यसे वह कभी ऊबेगा नहीं। इससे उसकी आंखें चौंधियायेंगी नहीं, बल्कि वे शीतलताका अनुभव करेंगी। तारागणोंका भव्य संघ उसे घूमता ही दिखाई देगा। जो मनुष्य उनके साथ सम्पर्क साधकर सोयेगा, उन्हें अपने हृदयका साक्षी बनायेगा, वह अपवित्र विचारों-को कभी अपने हृदयमें स्थान नहीं देगा और शान्त निद्राका उपभोग करेगा।

परन्तु जिस तरह हमारे आसपास आकाश है, उसी तरह हमारे भीतर भी है। चमड़ीके एक-एक छिद्रमें, दो छिद्रोंके बीचकी जगहमें भी आकाश है। इस आकाश — अवकाश — को भरनेका हम जरा भी प्रयत्न न करें। इसलिए हम जितना आवश्यक हो उतना ही आहार लें, तो शरीरको आकाश रहेगा। हमें इस बातका हमेशा भान नहीं रहता कि

हम कम अधिक या अयोग्य आहार कर लेते हैं। इसलिए अगर हम हफ्तेमें एक दिन या पखवारेमें एक दिन या सुविधासे उपवास करें, तो शरीरका सन्तुलन कायम रख सकते हैं। जो पूरे दिनका उपवास न कर सकें, वे एक या एकसे अधिक जूनका खाना छोड़नेसे भी लाभ उठायेंगे। २५

तेज

जैसे हम पानीका स्नान करके साफ-स्वच्छ होते हैं, वैसे ही सूर्य स्नान करके भी साफ और तन्दुरुस्त हो सकते हैं। दुर्बल मनुष्य या जिसका खून सूख गया हो वह यदि प्रातःकालकी सूर्यकी किरणें नंगे शरीर पर ले, तो उसके चेहरेका फीकापन और दुर्बलता दूर हो जायगी और अगर पाचन-क्रिया मंद हो तो वह जाग्रत हो जायगी। सबेरे जब धूप ज्यादा न चढ़ी हो, यह स्नान करना चाहिये। जिसे नंगे शरीर लेटने या बैठनेमें सर्दी लगे, वह आवश्यक कपड़े ओढ़कर लेटे या बैठे और जैसे जैसे शरीर सहन करता जाय वैसे वैसे कपड़े हटाता जाय। नंगे बदन हम धूपमें टहल भी सकते हैं। कोई न देख सके ऐसी जगह ढूंढ़कर यह क्रिया की जा सकती है। अगर ऐसी सहूलियत पैदा करनेके लिए दूर जाना पड़े और इतना समय न हो, तो बारीक लंगोटीसे गुह्य भागोंको ढंककर सूर्य-स्नान लिया जा सकता है। २६

ऐसे सूर्य-स्नानसे बहुत लोगोंको लाभ हुआ है। क्षयरोगमें इसका खूब उपयोग किया जाता है। २७

कई बार फोड़ेका घाव भरता ही नहीं है। उसे सूर्य-स्नान दिया जाय तो वह भर जाता है। २८

वायु

जैसे पहले चार तत्त्व उपयोगी हैं वैसे ही यह पांचवां तत्त्व भी अत्यंत उपयोगी है। जिन पांच तत्त्वोंका यह मनुष्य-शरीर बना है, उनके बिना मनुष्य टिक ही नहीं सकता। इसलिए वायुसे किसीको डरना नहीं चाहिये। आम तौर पर हम जहां कहीं जाते हैं वहां घरमें वायु और प्रकाशका प्रवेश बन्द करके अपने आरोग्यको खतरेमें डालते हैं। सच

तो यह है कि यदि हम बचपनसे ही हवाका डर न रखना सीखे हों, तो शरीरको हवा सहन करनेकी आदत हो जाती है और हम जुकाम, बलगम इत्यादिसे बच जाते हैं। २९

डॉक्टरी मददकी सीमा

अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघकी प्रवृत्तियां शुरू होते ही डॉक्टरी सहायताने कई कार्यकर्ताओंके कार्यक्रममें यदि एकमात्र नहीं तो अत्यंत महत्त्वका स्थान जरूर ले लिया है। इस सहायतामें डॉक्टरी, आयुर्वेदिक, यूनानी या होमियोपैथीकी दवाइयां या सब दवाइयां मिलाकर गांववालोंको मुफ्त बांटनेका काम रहता है। इन दवाइयोंके व्यापारी अपने पास आनेवाले कार्यकर्ताओंको कुछ दवाइयां देकर आभारी बनानेके लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इन दवाइयोंकी कीमत उन्हें बहुत थोड़ी चुकानी होती है और इस तरह दी गई ये दवाइयां, उनकी अपनी रायमें — अगर वे इस दानके प्रति केवल स्वार्थकी दृष्टिसे ही देखें — बदलेमें उन्हें ज्यादा ग्राहक दे सकती हैं। गरीब बीमार नेकनीयत लेकिन अधूरी जानकारी रखनेवाले या जरूरतसे ज्यादा उत्साही कार्यकर्ताओंके शिकार हो जाते हैं। इनमें से तीन-चौथाई दवाइयां न सिर्फ बेकार होती हैं, बल्कि दृश्य नहीं तो अदृश्य रूपमें बीमारोंको नुकसान भी पहुंचाती हैं। जहां वे बीमारोंको थोड़े समयके लिए राहत भी पहुंचाती हैं, वहां गांवके बाजारमें उनकी जगह लेनेवाली दवाइयां आम तौर पर मिलती हैं।

इसलिए जिस डॉक्टरी राहतका मैंने वर्णन किया है, उसे अ० भा० ग्रामोद्योग-संघ बिलकुल छोड़ रहा है। इसलिए उसकी मुख्य चिन्ता स्वास्थ्य-सम्बन्धी और आर्थिक बातोंमें गांववालोंको शिक्षा देनेकी है। लेकिन क्या इन दोनोंका कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं है? क्या लाखों लोगोंके लिए स्वास्थ्य ही धन नहीं है? उनके शरीर, न कि उनकी बुद्धि, धन कमानेके मुख्य साधन हैं। इसलिए ग्रामोद्योग-संघ लोगोंको बीमारीसे बचनेकी शिक्षा देना चाहता है। सब कोई जानते हैं कि देशके लाखों लोगोंको पोषणकी दृष्टिसे बहुत घटिया खुराक मिलती है। और जो कुछ वे खाते हैं उसका दुरुपयोग करते हैं। सफाई और स्वच्छताका उन्हें बिलकुल ज्ञान नहीं है। गांवोंमें सफाईका नाम नहीं है। इसलिए

अगर ये दोष दूर कर दिये जाय और गावके लोग सफाईके सादे नियमो-को समझकर उनका पालन करने लगें, तो उनकी ज्यादातर बीमारिया विना ज्यादा प्रयत्न या खर्चके मिट सकती है। इसलिए संघ दवाखाने खोलनेका विचार नहीं करता। इस बातकी जांच की जा रही है कि गाव दवाइयोंके रूपमें क्या दे सकते हैं। सतीशबाबूके सस्ते 'इलाज' उसी दिशामें किये गये प्रयत्न हैं। यद्यपि ये अत्यन्त सादे हैं, फिर भी सतीश-बाबू इस बातका प्रयोग कर रहे हैं कि गुणकारिताको कम किये बिना इन इलाजोंकी सख्या बहुत कम कैसे की जा सकती है। वे बाजारमें मिलनेवाली जडी-बूटियोंका अध्ययन कर रहे हैं, उनकी परीक्षा कर रहे हैं और उसी तरहकी अग्रेजी दवाओंसे उनकी तुलना कर रहे हैं। हेतु यही है कि भोले-भाले ग्रामवासियोंको रहस्यमयी गोलियों और दवाओंके डरसे दूर रखा जाय। ३०

जहा ज्वर, अजीर्ण या इसी प्रकारके सामान्य रोगोंके रोगी ग्राम-सेवकोंकी मदद लेने आयें, वहा वे उनकी जो मदद कर सकें जरूर करें। रोगका निदान भर अच्छी तरह मालूम हो जाय, फिर गावमें उस रोग-की सस्तीसे सस्ती और अच्छीसे अच्छी दवा तो मिल ही जायगी। दवाइया कोई अपने पास रखना ही चाहे तो अडीका तेल, कुनैन और उबला हुआ गरम पानी — ये सबसे बढिया दवाइया हैं। अडीका तेल सभी जगह मिल सकता है। सनायकी पत्तीसे भी वही काम निकल सकता है। कुनैनका मैं कम ही उपयोग करता हूं। प्रत्येक प्रकारके ज्वरमें कुनैन देनेकी जरूरत नहीं; और न प्रत्येक ज्वर कुनैनसे काबूमें ही आता है। अधिकांश ज्वर तो पूर्ण या अर्ध-उपवाससे ही शांत हो जाते हैं। अन्न और दूधको छोड़ देना और फलोंका रस अथवा मुनक्केका उबला हुआ पानी लेना तथा नीबूके ताजे रस या इमलीके साथ गुड़का उबला हुआ पानी लेना भी अर्ध-उपवास है। उबला हुआ पानी तो रामबाण औषध है। आंतोंको वह खलभला डालता है और पसीना लाता है, जिससे

१. 'घर और गावका डॉक्टर' — लेखक: सतीशचन्द्र दासगुप्त, खादी प्रतिष्ठान, १५ – कॉलेज स्क्वेअर, कलकत्ता; पृष्ठ २४+१२८७; कीमत १०–०–० ।

बुखारका जोर कम हो जाता है। यह एक ऐसी रोगाणुनाशक औषध है, जिसमें किसी भी तरहका खतरा नहीं है और सस्ती इतनी कि एक कौड़ी भी खर्च नहीं होती। हर हालतमें जब भी पानी पीना हो उसे कुछ सिराकर पीना चाहिये; उतना ही गरम पानी पीना चाहिये जितना कि अच्छी तरह सहन हो सके। पानी उबालनेका मतलब महज गरम करना नहीं है। पानीमें जब बुलबुले उठने लगें और उससे भाप निकलने लगे, तभी उसे उबला हुआ समझना चाहिये।

जहां ग्रामसेवक खुद किसी निश्चय पर न पहुंच सकें, वहां उन्हें स्थानीय वैद्योंका अवश्य पूरा-पूरा सहयोग लेना चाहिये। जहां वैद्य न हो अथवा भरोसेका वैद्य न हो और ग्रामसेवक पड़ोसके किसी परमार्थी डॉक्टर-को जानते हों, वहां उन्हें जरूर उसकी मदद लेनी चाहिये।

पर उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि रोगके उपचारमें भी स्वच्छ-ताका स्थान सबसे महत्त्वका है। उन्हें यह याद रखना चाहिये कि सर्व-श्रेष्ठ वैद्य तो प्रकृति ही है। इस बातका वे विश्वास रखें कि मनुष्य जिसे बिगाड़ देता है, प्रकृति उसे सुधारती रहती है। लाचार तो वह उस समय मालूम पड़ती है जब मनुष्य लगातार उसकी अवहेलना किया करता है। तब जो असाध्य हो जाता है उसे नष्ट कर डालनेके लिए वह अपने अंतिम और अटल दूत 'मृत्यु' को भेजती है और उस देहधारी-को नया चोला पहना देती है। इसलिए स्वच्छता और स्वास्थ्यरक्षाका कार्य करनेवाले मनुष्य प्रत्येक व्यक्तिके सर्वश्रेष्ठ सहायक या उत्तम वैद्य हैं, भले उसे इसका पता हो या न हो। ३१

भिन्न-भिन्न संस्थाओंकी ओरसे किये जानेवाले ग्रामकार्य या समाज-सेवाके कामकी जो रिपोर्टें मेरे पास आती हैं, मैं देखता हूं कि उनमें से बहुतोंमें दवा-दारूकी सहायताके कामको बहुत महत्त्व दिया जाता है। यह सहायता बीमारोंको दवा बांटनेके रूपमें की जाती है—और बीमारों-का तो कहना ही क्या? उन्होंने किसीको दवा बांटनेकी बात कहते सुना नहीं कि उसे आकर घेर लिया। इस तरह जो व्यक्ति दवा बांटता है, उसे इसके लिए कोई खास अभ्यास करनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ता। रोग और उसके लक्षणोंका विशेष या किसी तरहका भी ज्ञान रखनेकी उसे

जरूरत नहीं होती। यहां तक कि दवायें भी अकसर दयालु दवाफरोशोंसे मुफ्त ही मिल जाती हैं। ऐसे दानियोंसे इसके लिए चन्दा भी हमेशा मिल ही जाता है, जो चन्दा देते समय ज्यादा सोच-विचार नहीं करते। बस इसी खयालसे उन्हें आत्म-सन्तोष हो जाता है कि हम जो दान दे रहे हैं उससे दीन-दुखियोंको मदद होगी।

सेवाके जितने भी तरीके हैं उनमें यह सामाजिक सेवा मुझे सबसे ज्यादा काहिल और अकसर हानिकारक मालूम होती है। इसकी बुराईका आरम्भ तो तभी हो जाता है जब कि मरीज यह समझने लगता है कि बस दवा गटक जानेके सिवा मुझे और कुछ नहीं करना है। दवा पाकर वह आगेके लिए सावधान बने ऐसा नहीं होता। अलबत्ता, कभी-कभी वह पहलेसे भी गया-बीता बन जाता है — क्योंकि इस खयालसे वह तन्दुरुस्तीके बचाव या संयम रखनेकी चिन्ता नहीं करता कि अनियमितता और लापरवाहीसे कुछ गड़बड़ी भी हुई तो क्या, सेंत-मेंत या बराय-नाम पैसोंकी कुछ दवा लेकर खा लूंगा और सब ठीक-ठाक हो जायगा। फिर इस बातसे कि उसे ऐसी (दवा-दारूकी) मदद बिना कुछ खर्च किये मुफ्त ही मिल जाती है, उसके उस आत्म-सम्मानका भी ह्रास होता है, जो बिना कोई काम किये दानमें कुछ लेना गवारा नहीं कर सकता।

लेकिन दवा-दारूकी सहायताका एक और भी तरीका है, और निस्सन्देह वह हमारे लिए एक बड़ी नियामत है। जो लोग रोग और उसे पैदा करनेवाले कारणोंको जानते हैं, वही ऐसी सहायता कर सकते हैं। वे बीमारोंको खाली दवा ही नहीं देंगे, बल्कि यह भी बतायेंगे कि उन्हें क्या खास बीमारी है और क्या करनेसे आगे वे उससे बचे रह सकते हैं। ऐसे सेवक रात-दिनकी कोई परवाह नहीं करेंगे और हर समय सहायताके लिए तैयार रहेंगे। ऐसी सहायतासे रोग-निवारण ही नहीं होगा, बल्कि स्वास्थ्य-विज्ञानकी शिक्षा भी लोगोंको मिलेगी, जिससे वे यह जान सकेंगे कि स्वास्थ्य और सफाईके नियमोंका पालन करते हुए वे किस प्रकार तन्दुरुस्त रह सकते हैं। लेकिन ऐसी सेवा बहुत कम देखनेमें आती है। अधिकांश रिपोर्टोंमें तो दवा-दारूकी सहायताका उल्लेख

बतौर विज्ञापनके ही होता है, ताकि लोग उसे पढ़कर उनके दूसरे ऐसे कामकाजके लिए चन्दा देनेको प्रेरित हों, जिनमें शायद दवा-दारूकी सहायतासे भी कम ज्ञानकी आवश्यकता होती है। इसलिए समाज-सेवाके कार्यमें लगे हुए सब भाइयोंसे, चाहे वे शहरोंमें काम करते हों या गांवोंमें, मेरी प्रार्थना है कि दवा-दारूकी अपनी इस हलचलको वे अपने सेवाकार्यका सबसे कम महत्त्वपूर्ण अंग मानें। बेहतर तो यह होगा कि वे अपनी रिपोर्टोंमें ऐसे सहायता-कार्यका कोई उल्लेख ही न करें। इसके बजाय यदि वे ऐसे उपायोंका सहारा लें जिनसे उस स्थानमें बीमारीमें रुकावट हो, तो अलबत्ता वे अच्छा काम करेंगे। दवा-दारूका सामान तो जहां तक हो कम करना चाहिये। जो दवायें उनके गांवमें ही मिल सकें उनके उपयोगकी जानकारी उन्हें हासिल करनी चाहिये और जहां तक हो उन्हींका उपयोग करना चाहिये। ऐसा करने पर उन्हें पता लगेगा, जैसा कि सिन्दी गांवमें हमें मालूम होता जा रहा है, कि बहुतसे रोगोंमें तो गरम पानी, धूप, साफ नमक और सोडाके साथ कभी-कभी अण्डीके तेल व कुनैनका प्रयोग करनेसे ही काम चल जाता है। जो भी ज्यादा बीमार हों उन सबको शहरके बड़े अस्पतालमें भेज देनेका हमने नियम बना लिया है। नतीजा यह हुआ है कि मरीज लोग मीराबहनके पास दौड़े चले आते हैं और उनसे स्वास्थ्य, सफाई व रोग-निवारणके उपाय मालूम करते हैं। दवाके बजाय रोग-निवारणका उपाय ग्रहण करनेमें उन्हें कोई आपत्ति हो, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। ३२

२५
आहार

यह बात सच है कि हवा और पानीके बिना आदमी जीवित ही नहीं रह सकता। परन्तु जीवनको टिकानेवाली चीज तो भोजन ही है। अन्न मनुष्यका प्राण है।

आहार तीन प्रकारका होता है — मांसाहार, शाकाहार और मिश्राहार। असंख्य लोग मिश्राहारी हैं। मांसमें मछली और पक्षी भी आ जाते हैं। दूधको हम किसी भी तरह शाकाहार नहीं मान सकते। सच पूछा जाय तो वह मांसका ही एक रूप है। परन्तु लौकिक भाषामें वह मांसाहारमें नहीं गिना जाता। जो गुण मांसमें हैं वे अधिकतर दूधमें भी हैं। डॉक्टरी भाषामें वह प्राणिज आहार — एनिमल फूड — माना जाता है। अंडे सामान्यतः मांसाहारमें गिने जाते हैं, लेकिन दरअसल वे मांस नहीं हैं। आजकल तो अंडे ऐसे तरीकेसे पैदा किये जाते हैं कि मुर्गी मुर्गेको देखे बिना भी अंडे देती है। इन अंडोंमें चूजा कभी बनता ही नहीं। इसलिए जिन्हें दूध पीनेमें कोई संकोच नहीं, उन्हें इस प्रकारके अंडे खानेमें भी कोई संकोच नहीं होना चाहिये।

डॉक्टरी मतका झुकाव मुख्यतः मिश्राहारकी ओर है। परन्तु पश्चिममें डॉक्टरोंका एक बड़ा समुदाय ऐसा है, जिसका यह दृढ़ मत है कि मनुष्यके शरीरकी रचनाको देखनेसे वह शाकाहारी ही लगता है। उसके दांत, आमाशय इत्यादि उसे शाकाहारी सिद्ध करते हैं। शाकाहारमें फलोंका समावेश होता है। फलोंमें ताजे फल और सूखा मेवा अर्थात् बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा इत्यादि आ जाते हैं।

मैं शाकाहारका पक्षपाती हूं। परन्तु अनुभवसे मुझे यह स्वीकार करना पड़ा है कि दूध और दूधसे बननेवाले पदार्थ जैसे मक्खन, दही वगैराके बिना मनुष्य-शरीर पूरी तरह टिक नहीं सकता। मेरे विचारोंमें यह महत्त्वका परिवर्तन हुआ है। मैंने दूध-घीके बगैर छह वर्ष निकाले हैं। उस समय मेरी शक्तिमें किसी तरहकी कमी नहीं आयी थी। पर

सेवाग्राम-आश्रम आसपासके किसानोंसे भी दूध लेता है। उनके पशुओंकी परीक्षा कौन करता है ? दूध निर्दोष है या नहीं, इसकी परीक्षा करना कठिन है। इसलिए दूध उबालनेसे जितना निर्दोष बन सके उससे ही काम चलाना होगा। दूसरी सब जगहों पर आश्रमसे तो पशुओंकी परीक्षा कम ही हो सकती है। जो बात दूध देनेवाले पशुओंके लिए सच है, वह मांसके लिए कत्ल होनेवाले पशुओंके लिए तो है ही। पर अधिकतर तो हमारा काम भगवानके भरोसे ही चलता है। मनुष्य अपने आरोग्य-की बहुत चिन्ता नहीं रखता। उसने अपने लिए वैद्यों, डॉक्टरों और नीम-हकीमोंकी एक सरक्षक फौज खडी कर रखी है और उसके बल पर वह अपने-आपको सुरक्षित मानता है। उसे सबसे अधिक चिन्ता रहती है धन और प्रतिष्ठा वगैरा प्राप्त करनेकी। यह चिन्ता दूसरी सब चिंता-ओंको हजम कर जाती है। इसलिए जब तक कोई पारमार्थिक डॉक्टर, वैद्य या हकीम लगनसे परिश्रम करके संपूर्ण गुणोंवाली कोई वनस्पति नहीं ढूंढ निकालता, तब तक मनुष्य दुग्धाहार या मांसाहार करता ही रहेगा।

अब जरा युक्ताहारके बारेमें विचार करें। मनुष्य-शरीरको स्नायु बनानेवाले, गर्मी देनेवाले, चर्बी बढ़ानेवाले, क्षार देनेवाले और मल निका-लनेवाले द्रव्योंकी आवश्यकता रहती है। स्नायु बनानेवाले द्रव्य दूध, मांस, दालों और सूखे मेवोंमें मिलते हैं। दूध और मांससे मिलनेवाले द्रव्य दालों वगैराकी अपेक्षा अधिक आसानीसे पच जाते हैं और सर्वांशमें अधिक लाभदायक हैं। दूध और मांसमें दूधका स्थान अधिक ऊंचा है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि जब मांस नहीं पचता तब भी दूध पच जाता है। जो लोग मांस नहीं खाते उन्हें तो दूधसे बहुत बड़ी मदद मिलती है। पाचनकी दृष्टिसे कच्चे अंडे सबसे अच्छे माने जाते हैं।

परन्तु दूध या अंडे सब लोग कहांसे पायें ? सब जगह ये मिलते भी नहीं। दूधके बारेमें एक बहुत जरूरी बात मैं यहीं कह दूं। मक्खन निकाला हुआ दूध निकम्मा नहीं होता। वह अत्यंत कीमती पदार्थ है। कभी-कभी तो वह मक्खनवाले दूधसे भी अधिक उपयोगी होता है। दूधका मुख्य गुण स्नायु बनानेवाले प्राणिज पदार्थकी आवश्यकता पूरी करना

अपनी मूर्खताके कारण मुझे १९१७ में सख्त पेचिश हो गई। मेरा शरीर हाड़-पिंजर बन गया। मैंने हठपूर्वक दवा न ली और उतने ही हठसे दूध या छाछ भी लेनेसे इनकार किया। शरीर किसी तरह बनता ही नहीं था। मैंने दूध न लेनेका व्रत लिया था। लेकिन डॉक्टर कहने लगा — "यह व्रत तो आपने गाय-भैंसके दूधको नजरमें रखकर लिया था।" "बकरीका दूध लेनेमें आपको कोई हर्ज नहीं होना चाहिये" — मेरी धर्मपत्नीने डॉक्टरका समर्थन किया और मैं पिघला। सच कहा जाय तो जिसने गाय-भैंसके दूधका त्याग किया है, उसे बकरी वगैराका दूध लेनेकी छूट नहीं होनी चाहिये। क्योंकि उस दूधमें भी पदार्थ तो वही होते हैं, सिर्फ मात्राका ही फरक होता है। इसलिए मेरे व्रतके अक्षरोंका ही पालन हुआ है, उसकी आत्माका नहीं।

जो भी हो, बकरीका दूध तुरन्त आया और मैंने उसे लिया। लेते ही मुझमें नया चेतन आया, शरीरमें शक्ति आयी और मैं खाटसे उठा। इस परसे और ऐसे अनेक दूसरे अनुभवों परसे मैं लाचार होकर दूधका पक्षपाती बना हूं। लेकिन मेरा यह दृढ़ मत है कि असंख्य वनस्पतियोंमें से कोई न कोई ऐसी जरूर होगी, जो दूध और मांसकी आवश्यकता अच्छी तरह पूरी कर सके और उनके दोषोंसे मुक्त हो।

मेरी दृष्टिसे दूध और मांस लेनेमें दोष तो हैं ही। मांसके लिए हम पशु-पक्षियोंका नाश करते हैं। और मांके दूधके सिवा दूसरा दूध पीनेका हमें अधिकार नहीं है। नैतिक दोषके सिवा केवल आरोग्यकी दृष्टिसे भी इनमें दोष हैं। दोनोंमें पशुके दोष आ ही जाते हैं। पालतू पशु सामान्यतः पूरे तन्दुरुस्त नहीं होते। मनुष्यकी तरह पशुओंमें भी अनेक रोग होते हैं। अनेक परीक्षायें करनेके बाद भी कई रोग परीक्षककी नजरसे छूट जाते हैं। सब पशुओंकी अच्छी तरह परीक्षा करवाना असंभव लगता है। मेरे पास गोशाला है। मित्रोंकी मदद आसानीसे मिल जाती है। परन्तु मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मेरी गोशालामें सब पशु निरोगी ही हैं। इससे उलटे यह देखनेमें आया है कि जो गाय निरोगी मानी जाती थी वह अन्तमें रोगी सिद्ध हुई। इसका पता चलनेसे पहले तो उस रोगी गायके दूधका उपयोग होता ही रहता था।

सेवाग्राम-आश्रम आसपासके किसानोंसे भी दूध लेता है। उनके पशुओंकी परीक्षा कौन करता है? दूध निर्दोष है या नहीं, इसकी परीक्षा करना कठिन है। इसलिए दूध उबालनेसे जितना निर्दोष बन सके उससे ही काम चलाना होगा। दूसरी सब जगहों पर आश्रमसे तो पशुओंकी परीक्षा कम ही हो सकती है। जो बात दूध देनेवाले पशुओंके लिए सच है, वह मासके लिए कत्ल होनेवाले पशुओंके लिए तो है ही। पर अधिकतर तो हमारा काम भगवानके भरोसे ही चलता है। मनुष्य अपने आरोग्य-की बहुत चिन्ता नहीं रखता। उसने अपने लिए वैद्य, डॉक्टर और नीम-हकीमोंकी एक संरक्षक फौज खड़ी कर रखी है और उसके बल पर वह अपने-आपको सुरक्षित मानता है। उसे सबसे अधिक चिन्ता रहती है धन और प्रतिष्ठा वगैरा प्राप्त करनेकी। यह चिन्ता दूसरी सब चिंताओंको हजम कर जाती है। इसलिए जब तक कोई पारमार्थिक डॉक्टर, वैद्य या हकीम लगनसे परिश्रम करके संपूर्ण गुणोंवाली कोई वनस्पति नहीं ढूढ निकालता, तब तक मनुष्य दुग्धाहार या मांसाहार करता ही रहेगा।

अब जरा मुक्ताहारके बारेमें विचार करें। मनुष्य-शरीरको स्नायु बनानेवाले, गर्मी देनेवाले, चर्बी बढ़ानेवाले, क्षार देनेवाले और मल निकालनेवाले द्रव्योंकी आवश्यकता रहती है। स्नायु बनानेवाले द्रव्य दूध, मास, दालों और सूखे मेवोंसे मिलते हैं। दूध और माससे मिलनेवाले द्रव्य दालों वगैराकी अपेक्षा अधिक आसानीसे पच जाते हैं और सर्वांशमें अधिक लाभदायक हैं। दूध और मासमें दूधका स्थान अधिक ऊंचा है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि जब मास नहीं पचता तब भी दूध पच जाता है। जो लोग मास नहीं खाते उन्हें तो दूधसे बहुत बड़ी मदद मिलती है। पाचनकी दृष्टिसे कच्चे अडे सबसे अच्छे माने जाते हैं।

परन्तु दूध या अडे सब लोग कहासे पायें? सब जगह ये मिलते भी नहीं। दूधके बारेमें एक बहुत जरूरी बात मैं यहीं कह दूं। मक्खन निकाला हुआ दूध निकम्मा नहीं होता। वह अत्यंत कीमती पदार्थ है। कभी-कभी तो वह मक्खनवाले दूधसे भी अधिक उपयोगी होता है। दूधका मुख्य गुण स्नायु बनानेवाले प्राणिज पदार्थकी आवश्यकता पूरी करना

है। मक्खन निकाल लेने पर भी उसका यह गुण कायम रहता है। इसके अलावा, सबका सब मक्खन दूधमें से निकाल सके, ऐसा यंत्र तो अभी तक बना ही नहीं है; और बननेकी संभावना भी कम ही है।

पूर्ण या अपूर्ण दूधके सिवा दूसरे पदार्थोंकी शरीरको आवश्यकता रहती है। दूधसे दूसरे दर्जे पर गेहूं, बाजरा, जुआर, चावल वगैरा अनाज रखे जा सकते हैं। हिन्दुस्तानके अलग अलग प्रान्तोंमें अलग अलग किस्मके अनाज पाये जाते हैं। कई जगहों पर केवल स्वादके लिए एक ही गुण-वाले एकसे अधिक अनाज खाये जाते हैं। जैसे कि गेहूं, बाजरा और चावल तीनों चीजें थोड़ी-थोड़ी मात्रामें एकसाथ खाई जाती हैं। शरीरके पोषणके लिए इस मिश्रणकी आवश्यकता नहीं है। इससे आहारकी मात्रा पर अंकुश नहीं रहता और आमाशयका काम अधिक बढ़ जाता है। एक समयमें एक ही तरहका अनाज खाना ठीक माना जायगा। इन अनाजोंमें से मुख्यतः स्टार्च (निशास्ता) मिलता है। गेहूं सब अनाजोंका राजा है। दुनिया पर नजर डालें तो गेहूं सबसे ज्यादा खाया जाता है। आरोग्यकी दृष्टिसे गेहूं मिले तो चावल अनावश्यक है। जहां गेहूं न मिले और बाजरा, जुआर इत्यादि अच्छे न लगें या अनुकूल न आयें वहां चावल लेना चाहिये।

अनाज मात्रको अच्छी तरह साफ करके हाथ-चक्कीमें पीसकर आटे-का बिना छाने इस्तेमाल करना चाहिये। अनाजकी भूसीमें सत्व और क्षार भी रहते हैं। दोनों बड़े उपयोगी पदार्थ हैं। इसके उपरांत भूसीमें एक ऐसा पदार्थ होता है, जो बगैर पचे बाहर निकल जाता है और अपने साथ मलको भी निकालता है। चावलका दाना नाजुक होनेके कारण ईश्वरने उसके ऊपर छिलका बनाया है, जो खानेके काममें नहीं आता। इसलिए चावलको कूटना पड़ता है। कुटाई उतनी ही करनी चाहिये जिससे ऊपरका छिल्का निकल जाय। मशीनमें चावलके छिलकेके अलावा उसकी भूसी भी बिलकुल निकाल डाली जाती है। इसका कारण यह है कि चावलकी भूसीमें बहुत मिठास रहती है, इसलिए अगर भूसी रखी जाय तो उसमें घुसरी या कीड़ा पड़ जाता है। गेहूं और चावलकी भूसी निकाल दें तो बाकी केवल स्टार्च ही रह जाता है; और भूसीमें

अनाजका बहुत कीमती हिस्सा चला जाता है। गेहूं और चावलकी भूसीको अकेली पकाकर भी खाया जा सकता है। उसकी रोटी भी बन सकती है। कोकणी चावलोंका तो आटा पीसकर उसकी ही रोटी गरीब लोग खाते हैं। पूरे चावल पकाकर खानेकी अपेक्षा चावलके आटेकी रोटी शायद अधिक आसानीसे पचती हो और थोड़ी खानेसे पूरा सन्तोष भी दे।

हम लोगोंको दाल या शाकके साथ रोटी खानेकी आदत है। इससे रोटी पूरी तरह चबायी नहीं जाती। स्टार्चवाले पदार्थोंको जितना चबायें और वे लारके साथ जितने मिलें उतना ही अच्छा है। यह लार स्टार्चके पचनेमें मदद करती है। अगर भोजनको बिना चबाये निगल जायें, तो उसके पचनेमें लारकी मदद नहीं मिल सकती। इसलिए खुराकको ऐसी स्थितिमें खाना अधिक लाभदायक है जिसमें उसे चबाना पड़े।

स्टार्च-प्रधान अनाजोंके बाद स्नायु बांधनेवाली (प्रोटीड-प्रधान) दालों इत्यादिको दूसरा स्थान दिया जाता है। दालके बिना भोजनको सब लोग अपूर्ण मानते हैं। मांसाहारीको भी दाल तो चाहिये ही। जिसको मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है और जिसे पूरी मात्रामें या बिलकुल दूध नहीं मिलता, उसका गुजारा दालके बिना नहीं हो सकता। इसे मैं समझ सकता हूं। पर मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता कि जिन्हें शारीरिक काम कम करना पड़ता है — जैसे कि व्यापारी, वकील, डॉक्टर या शिक्षक — और जिन्हें दूध पूरी मात्रामें मिल जाता है, उन्हें दालकी आवश्यकता नहीं है। सामान्यतः दाल भारी आहार मानी जाती है और स्टार्च-प्रधान अनाजकी अपेक्षा बहुत कम मात्रामें खाई जाती है। दालोंमें मटर और लोबिया बहुत भारी हैं। मूंग और मसूर हलके माने जाते हैं।

तीसरा दर्जा शाकभाजी और फलोंको देना चाहिये। शाक और फल हिन्दुस्तानमें सस्ते होने चाहियें, लेकिन ऐसा नहीं है। वे केवल शहरियोंका भोजन माने जाते हैं। गांवोंमें हरी तरकारी भाग्यसे ही मिलती है और बहुत जगह फल भी नहीं मिलते। शाकभाजी और फलोंकी कमी हिन्दुस्तानके लिए बड़ी शरमकी बात है। ग्रामवासी चाहें तो काफी

शाकभाजी पैदा कर सकते हैं। फलोंके पेड़ोंके वारेमें कठिनाई जरूर है, क्योंकि जमीनकी खेतीके कानून सख्त और गरीवोंको दवानेवाले हैं। लेकिन यह तो हमारे विषयके वाहरकी वात हुई।

ताजी शाकभाजीमें पत्तोंवाली जो भी भाजी मिले वह काफी मात्रामें हर रोज लेनी चाहिये। जो शाक स्टार्च-प्रधान हैं उनकी गिनती यहां मैंने शाकभाजीमें नहीं की है। आलू, शकरकंद, रतालू और जमींकंद स्टार्च-प्रधान शाक हैं। इन्हें अनाजकी श्रेणीमें रखना चाहिये। दूसरे कम स्टार्चवाले शाक काफी मात्रामें लेने चाहिये। ककड़ी, लूनीकी भाजी, सरसोंका साग, सोएकी भाजी, टमाटर इत्यादिको पकानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें साफ करके और अच्छी तरह धोकर थोड़ी मात्रामें कच्चा खाना चाहिये।

फलोंमें मौसमके जो फल मिल सकें उन्हें लेना चाहिये। आमके मौसममें आम, जामुनके मौसममें जामुन, इसी तरह अमरूद, पपीता, संतरा, अंगूर, मीठे नीबू (शरबती या स्वीट लाइम), मोसम्वी वगैरा फलोंका ठीक ठीक उपयोग होना चाहिये। फल खानेका सबसे अच्छा समय सुबहका है। सवेरे दूध और फलका नाश्ता करनेसे पूरा सन्तोष मिल जाता है। जो लोग खाना जल्दी खाते हैं उनके लिए सवेरे केवल फल ही खाना अच्छा है।

केला एक अच्छा फल है। परन्तु उसमें स्टार्च वहुत रहता है। इसलिए वह रोटीकी जगह लेता है। केला, दूध और भाजी संपूर्ण आहार है।

मनुष्यके आहारमें थोड़ी-वहुत चिकनाईकी आवश्यकता रहती है। वह घी और तेलसे मिल जाती है। घी मिल सके तो तेलकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। तेल पचनेमें भारी होते हैं और शुद्ध घीके वरावर गुणकारी नहीं होते। सामान्य मनुष्यके लिए तीन तोला घी काफी समझना चाहिये। दूधमें घी आ ही जाता है। इसलिए जिसे घी न मिल सके वह तेल खाकर चर्वीकी मात्रा पूरी कर सकता है। तेलोंमें तिलका, नारियलका और मूंगफलीका तेल अच्छा माना जाता है। तेल ताजा होना चाहिये। इसलिए देशी घानीका तेल मिल सके तो अच्छा है। जो घी

और तेल बाजारमें मिलता है, वह लगभग निकम्मा होता है। यह दु:खकी और शरमकी बात है। परन्तु जब तक व्यापारमें कानून या लोकशिक्षणके द्वारा ईमानदारी दाखिल नहीं होती, तब तक लोगोंको सावधानी रखकर और मेहनत करके अच्छी और शुद्ध चीजें प्राप्त करनी होंगी। अच्छी और शुद्ध चीजके बदले जैसी वैसी चीजसे कभी सन्तोष नहीं मानना चाहिये। बनावटी घी या खराब तेल खानेके बदले घी-तेलके बिना रहनेका निश्चय ज्यादा पसन्द करने योग्य है।

जैसे आहारमें चिकनाईकी आवश्यकता रहती है, वैसे ही गुड़ और खांड़की भी। मीठे फलोंसे काफी मिठास मिल जाती है, तो भी तीन तोला गुड़ या खांड लेनेमें कोई हानि नहीं है। मीठे फल न मिलें तो गुड़ और खांड लेनेकी आवश्यकता रहती है। पर आजकल मिठाई पर जोर दिया जाता है वह ठीक नहीं है। शहरोंमें रहनेवाले बहुत ज्यादा मिठाई खाते हैं — जैसे कि खीर, रबड़ी, श्रीखण्ड, पेड़ा, बर्फी, जलेबी वगैरा। ये सब अनावश्यक हैं और अधिक खानेसे नुकसान ही करती हैं। जिस देशमें करोड़ों लोगोंको पेटभर अन्न भी नहीं मिलता, वहां जो लोग पकवान खाते हैं वे चोरीका माल खाते हैं, यह कहनेमें मुझे तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं लगती।

जो मिठाईके बारेमें कहा गया है, वह घी-तेलको भी लागू होता है। घी-तेलमें तली हुई चीजें खाना बिलकुल जरूरी नहीं है। पूरी, लड्डू वगैरा बनानेमें घी खर्च करना अविचारीपन है। जिन्हें आदत नहीं होती वे लोग ये चीजें खा ही नहीं सकते। अंग्रेज जब हमारे देशमें आते हैं तब हमारी मिठाइयां और घीमें पकाई हुई चीजें वे खा ही नहीं सकते। जो खाते हैं वे बीमार पड़ते हैं, यह मैंने कई बार देखा है। स्वाद तो सिर्फ आदतकी बात है। भूख जो स्वाद पैदा करती है, वह छप्पन भोगोंमें भी नहीं मिलता। भूखा आदमी सूखी रोटी भी बहुत स्वादसे खायगा। जिसका पेट भरा हुआ है वह अच्छेसे अच्छा माना जानेवाला पकवान भी नहीं खा सकेगा।

अब हम यह विचार करें कि हमें कितना खाना चाहिये और कितनी बार खाना चाहिये। सब प्रकारका आहार औषधिके रूपमें खाना चाहिये,

इसके साधारणतः बुद्धिजीवी मनुष्यके लिए चौबीस घंटेमें आहारका नीचे लिखा प्रमाण योग्य माना जा सकता है:

१. गायका दूध दो पौंड।

२. अनाज छह औंस अर्थात् १५ तोला (चावल, गेहूं, बाजरा इत्यादि मिलाकर)।

३. शाकमें पत्ता-भाजी तीन औंस और दूसरे शाक पांच औंस।

४. कच्चा शाक एक औंस।

५. तीन तोले घी या चार तोले मक्खन।

६. गुड़ या शक्कर तीन तोले।

७. ताजे फल, जो मिल सकें, रुचि और आर्थिक शक्तिके अनुसार।

रोज दो नीबू लिये जायं तो अच्छा है। नीबूका रस निकालकर भाजीके साथ या पानीके साथ लेनेसे खटाईका दांतों पर खराब असर नहीं पड़ेगा।

ये सब वजन कच्चे अर्थात् बिना पकाये हुए पदार्थोंके हैं। नमकका प्रमाण यहां नहीं दिया है। वह रुचिके अनुसार ऊपरसे लिया जा सकता है।

हमें दिनमें कितनी बार खाना चाहिये? बहुत लोग तो दिनमें केवल दो ही बार खाते हैं। सामान्यतः तीन बार खानेकी प्रथा है— सवेरे काम पर बैठनेसे पहले, दोपहरको और शाम या रात्रिको। इससे अधिक बार खानेकी आवश्यकता नहीं होती। शहरोंमें रहनेवाले कुछ लोग समय-समय पर कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं। यह आदत हानिकारक है। आमाशयको भी आखिर आराम चाहिये। १

२६
गांवकी रक्षा

शान्तिसेना

कुछ समय पहले मैंने ऐसे स्वयंसेवकोंकी एक सेना बनानेका प्रस्ताव रखा था, जो दंगों — खासकर साम्प्रदायिक दंगोंको शान्त करनेमें अपने प्राणों तककी बाजी लगा दें। इसके पीछे विचार यह था कि यह सेना पुलिसका ही नहीं, बल्कि फौज तकका स्थान ले ले। यह बात बड़ी महत्त्वाकांक्षाकी मालूम पड़ती है। शायद यह असंभव भी साबित हो। फिर भी अगर कांग्रेसको अपनी अहिंसात्मक लड़ाईमें सफलता प्राप्त करनी हो, तो उसे ऐसी परिस्थितियोंका शांतिपूर्वक मुकाबला करनेकी अपनी शक्ति बढ़ानी ही चाहिये।

इसलिए हम देखें कि जिस शान्तिसेनाकी हमने कल्पना की है, उसके सदस्योंकी योग्यताएं क्या होनी चाहिये:

१. शान्तिसेनाका सदस्य पुरुष हो या स्त्री, अहिंसामें उसका जीवित विश्वास होना चाहिये। यह तभी संभव है जब कि ईश्वरमें उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वरकी कृपा और शक्तिके बिना कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और

बदलेकी भावना रखते हुए मरनेका साहस नहीं आयेगा। ऐसा साहस तो इस श्रद्धासे ही आता है कि सबके हृदयोंमें ईश्वरका निवास है और ईश्वरकी उपस्थितिमें किसी भी भयकी जरूरत नहीं है। ईश्वरकी सर्व-व्यापकताके ज्ञानका यह भी अर्थ है कि जिन्हें विरोधी या गुण्डे कहा जा सकता हो, उनके प्राणोंका भी हम खयाल रखें। यह विचारपूर्वक किया जानेवाला हस्तक्षेप उस समय मनुष्यके क्रोधको शान्त करनेका एक तरीका है, जब कि उसके अन्दरका पशुभाव उस पर हावी हो जाय।

२. शान्तिके इस दूतमें दुनियाके सभी खास-खास धर्मोंके प्रति समान श्रद्धा होना जरूरी है। इस प्रकार अगर वह हिन्दू हो तो हिन्दुस्तानमें प्रचलित अन्य धर्मोंका आदर करेगा। इसलिए देशमें माने जानेवाले विभिन्न धर्मोंके सामान्य सिद्धान्तोंका उसे ज्ञान होना चाहिये।

३. आम तौर पर कहा जाय तो शांतिका यह काम केवल स्थानीय लोगों द्वारा अपने-अपने मुहल्लोंमें ही किया जा सकता है।

४. यह काम अकेले या समूहोंमें हो सकता है। इसलिए किसीको संगी-साथियोंके लिए इन्तजार करनेकी जरूरत नहीं। फिर भी आदमी स्वभावतः अपनी बस्तीमें से कुछ साथियोंको ढूंढ़कर स्थानिक सेनाका निर्माण करेगा।

५. शांतिका यह दूत व्यक्तिगत सेवा द्वारा अपनी बस्ती या किसी चुने हुए क्षेत्रमें लोगोंके साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित करेगा, जिससे उसे भद्दी स्थितियोंमें काम करना पड़े तब उपद्रवियोंके लिए वह बिलकुल ऐसा अजनबी न हो, जिस पर वे शक करें या जो उन्हें नागवार मालूम पड़े।

६. यह कहनेकी तो जरूरत नहीं कि शांतिके लिए काम करने-वाले स्वयंसेवकका चरित्र ऐसा होना चाहिये, जिस पर कोई अंगुली न उठा सके और वह अपनी निष्पक्षताके लिए प्रसिद्ध हो।

७. आम तौर पर दंगोंके आनेसे पहले तूफान आनेकी चेतावनी मिल जाया करती है। अगर ऐसे आसार दिखाई दें तो शांतिसेना आग भड़क उठनेका इन्तजार न करके तभीसे परिस्थितिको संभालनेका काम शुरू कर देगी जबसे उसकी संभावना दिखाई दे।

८. अगर यह आन्दोलन बढ़े तो कुछ पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्ताओंका इसके लिए रहना अच्छा होगा, लेकिन यह बिलकुल जरूरी नहीं कि ऐसा हो ही। कल्पना यह है कि जितने भी अच्छे स्त्री-पुरुष मिल सकें उतने रखे जायं। लेकिन वे तभी मिल सकते हैं जब कि स्वय-सेवक ऐसे लोगोंमें से मिलें, जो जीवनके विविध कार्योंमें लगे हुए हों, पर उनके पास इतना अवकाश हो कि अपने क्षेत्रोंमें रहनेवाले लोगोंके साथ मित्रताके सम्बन्ध पैदा कर सकें तथा वे सब योग्यताएं रखते हों, जो कि शांतिसेनाके सदस्यमें होनी चाहिये।

९. इस सेनाके सदस्योंकी एक खास पोशाक होनी चाहिये, जिससे कालांतरमें उन्हें बिना किसी कठिनाईके पहचाना जा सके।

ये सिर्फ सामान्य सूचनायें हैं। इनके आधार पर हरएक केन्द्र अपना विधान बना सकता है। १

पुलिस-बलकी मेरी कल्पना

अहिंसक शासनमें भी एक मर्यादित हद तक पुलिस-बलके लिए स्थान होगा। यह मान्यता मेरी अपूर्ण अहिंसाका चिह्न है। पुलिसके बिना मैं काम चला सकूंगा, यह कहनेकी मेरी हिम्मत नहीं; जैसे कि यह कहनेकी हिम्मत है कि बिना फौजके मैं काम चला लूंगा। मैं ऐसी स्थितिकी कल्पना जरूर करता हूं, जब पुलिसकी भी जरूरत नहीं होगी। पर इसका सच्चा पता तो अनुभवसे ही लग सकता है।

यह पुलिस आजकी पुलिससे बिलकुल भिन्न ही प्रकारकी होगी। उनमें अहिंसामें विश्वास रखनेवालोंकी भरती होगी। वे लोगोंके सेवक होंगे, सरदार नहीं। लोग उनकी मदद करते होंगे और रोज-ब-रोज कम होते जानेवाले उपद्रवोंका वे आसानीसे मुकाबला कर सकेंगे। पुलिसके पास कुछ शस्त्र तो होंगे, पर उनका उपयोग शायद ही कभी होगा। असलमें देखा जाय तो इस पुलिसको सुधारकके तौर पर समझना चाहिये। ऐसी पुलिसका उपयोग मुख्यतः चोर-डाकुओंको काबूमें रखनेके लिए ही होगा। अहिंसक शासनमें मजदूर-मालिकोंका झगड़ा क्वचित् ही होगा, हड़तालें शायद ही होंगी। क्योंकि अहिंसक बहुमतकी प्रतिष्ठा स्वभावतः इतनी

नहीं हुई होगी कि समाजके मुख्य अंग इस शासनका आदर करनेवाले होंगे। सामन्तवादिक तरीके भी इस शासनमें नहीं होने चाहिये। २

अहिंसक सेनादल

कुछ समय पहले मेरे सुझावसे ही शांतिदल कायम करनेकी कोशिश हुई थी। लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला। उससे इतना सीखनेको मिला कि शांतिदल बड़े पैमाने पर काम नहीं कर सकते। बड़े-बड़े दलोंको चलानेके लिए सजा नहीं तो सजाका डर जरूर होना चाहिये और जरूरत मालूम होने पर सजा भी दी जानी चाहिये। ऐसे हिंसक दलमें आदमीके चाल-चलनको नहीं देखा जाता। उसके कद और डील-डौलको ही देखा जाता है। अहिंसक दलमें इसका ठीक उलटा होता है। उसमें शरीरकी जगह गौण होती है। शरीरी सब कुछ है यानी चरित्र सब कुछ है। ऐसे चरित्रवान आदमीको पहचानना कठिन है। इसलिए बड़े-बड़े शांतिदल कायम नहीं किये जा सकते। वे छोटे ही होंगे। जगह-जगह होंगे, हर गांव या हर मुहल्लेमें होंगे। मतलब यह कि जो जाने-पहचाने लोग हैं उन्हींकी टुकड़ियां बनेंगी। वे मिलकर अपना एक मुखिया चुन लेंगे। सबका दर्जा बराबर होगा। जहां एकसे ज्यादा आदमी एक ही तरहका काम करते हैं वहां उनमें एकाध ऐसा होना चाहिये, जिसके हुक्मके मुताबिक सब कोई चल सकें। ऐसा न हो तो मेलजोलके साथ, सहयोगसे काम न हो सकेगा। दो या दोसे ज्यादा लोग अपनी अपनी मरजीसे काम करें, तो मुमकिन है कि उनके कामकी दिशा एक-दूसरेसे उलटी हो। इसलिए जहां दो या दोसे ज्यादा दल हों वहां वे हिल-मिलकर काम करें तभी काम चल सकता है और उसमें कामयाबी हो सकती है।

इस तरहके शांतिदल जगह-जगह हों, तो वे आरामसे और आसानीसे दंगा-फसादको, रोक सकते हैं। ऐसे दलोंको अखाड़ोंमें दी जानेवाली सभी तरहकी तालीम देना जरूरी नहीं। उसमें से कुछ तालीम लेना जरूरी हो सकता है।

सब शांतिदलोंके लिए एक चीज सामान्य होनी चाहिये। शांतिदलके हरएक मेम्बरका ईश्वरमें अटल विश्वास होना चाहिये। उसमें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि ईश्वर ही सच्चा साथी है और वही सबका सरजनहार

है, कर्ता है। इसके बिना जो शांतिसेनाएं बनेंगी, मेरे खयालमें वे बेजान होंगी। ईश्वरको आप अल्लाहके नामसे पहचानें, अहुरमज्द कहें, जेहोवा कहें, जीता-जागता नियम कहें, राम कहे, रहमान कहें, किसी भी नामसे पुकारें, पर उसकी शक्तिका उपयोग तो आपको करना ही है। ऐसा आदमी किसीको मारेगा नहीं, बल्कि खुद मरकर मृत्युको जीतेगा और जी जायगा।

जिस आदमीके लिए यह कानून एक जीती-जागती चीज बन जायगा, उसको समयके अनुसार बुद्धि भी अपने-आप सूझती रहेगी।

फिर भी अपने अनुभवसे यहा मै कुछ नियम देता हू

१. सेवक अपने साथ कोई भी हथियार न रखे।
२. वह अपने बदन पर ऐसी कोई निशानी रखें, जिससे फौरन पता चले कि वह शांतिदलका मेम्बर है।
३. सेवकके पास घायलों वगैराकी सार-सभालके लिए तुरन्त काम देनेवाली चीजें रहनी चाहियें। जैसे, पट्टी, कैंची, छोटा चाकू, सुई वगैरा।
४. सेवकको ऐसी तालीम मिलनी चाहिये, जिससे वह घायलोंको आसानीसे उठाकर ले जा सके।
५. जलती आगको बुझानेकी, बिना जले या झुलसे आगवाली जगहमें जानेकी, ऊपर चढ़ने और उतरनेकी कला सेवकमें होनी चाहिये।
६. अपने मुहल्लेके सब लोगोसे उसकी अच्छी जान-पहचान होनी चाहियें। यह अपने-आपमें एक सेवा है।
७. उसे मन ही मन रामनामका बराबर जप करते रहना चाहिये और इसमें माननेवाले दूसरोको भी ऐसा करनेके लिए समझाना चाहिये।

कुछ लोग आलस्यकी वजहसे या झूठी आदतकी वजहसे यह मान बैठते है कि ईश्वर तो है ही और वह बिना मांगे मदद करता है, फिर उसका नाम रटनेसे क्या फायदा? हम ईश्वरकी हस्तीको स्वीकार करे या न करें, इससे उसकी हस्तीमें कोई कमी-बेशी नहीं होती यह सच है। फिर भी उस हस्तीका उपयोग तो अभ्यासी ही कर पाता

है। यदि हरएक भौतिकशास्त्रके लिए यह वात सौ फीसदी सच है, तो फिर अध्यात्मके लिए तो यह उससे भी ज्यादा सच होनी चाहिये। फिर भी हम देखते हैं कि इस मामलेमें हम तोतेकी तरह रामनाम रटते हैं और फलकी आशा रखते हैं। सेवकमें इस सचाईको अपने जीवनमें सिद्ध करनेकी ताकत होनी चाहिय। ३

२७

ग्रामसेवक

आदर्श ग्रामसेवक

आज मुझे तुम्हारे भावी कार्य और जीवनके आदर्शके विषयमें कहना है। जिस अर्थमें आज अंग्रेजीका 'केरियर' शब्द प्रयुक्त होता है, वैसा 'केरियर' वनानेको तुम यहां नहीं आये हो। आज तो लोग मनुष्यकी कीमत पैसेसे आंकते हैं और उसकी शिक्षा वाजारकी विक्रीकी चीज वन गई है। मनमें यह गज लेकर अगर तुम लोग यहां आये हो, तव तो समझ लो कि तुम्हारे जीवनमें निराशा ही लिखी है। यहांसे शिक्षा प्राप्त करके निकलोगे तो शुरूमें जो १० रुपये माहवार पारिश्रमिक तुम्हें मिलेगा, अंत तक वही मिलता रहेगा। किसी वड़ी कोठीके मैनेजर या वड़े अफसरको जो तनखाह मिलती है, उसके साथ इसकी तुलना न करना।

हमें तो ये चालू पैमाने (स्टैण्डर्ड) ही वदल देने हैं। हम तुम्हें ऐसे किसी 'केरियर' का वचन नहीं देते। सच्ची वात तो वल्कि यह है कि इस तरहकी अगर तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा हो, तो हम उससे तुम्हें वचा लेना चाहते हैं। आशा हम यह रखते हैं कि तुम्हारा भोजन-खर्च ६ रु० मासिकके भीतर हो। एक आई० सी० एस० का भोजन-खर्च शायद ६० रु० मासिक आयेगा। पर इसका यह मतलव नहीं कि वह किसी तरह तुमसे शारीरिक शक्ति, वुद्धि या नैतिकतामें वड़ा होगा। यह राजसी भोग भोगते हुए भी संभव है वह शारीरिक शक्ति, वुद्धि या

नैतिकतामें तुमसे कम हो। मैं मानता हूं कि तुम अपनी शक्तिको कार्य-पैसेके गजसे नापनेके लिए इस शिक्षण-शालामें नहीं आये हो; नगण्य-सा निर्वाह-खर्च लेकर देशको अपनी सेवा देनेमें ही तुम आनन्द अनुभव करते हो। सट्टा-बाजारमें एक मनुष्य भले हजारों रुपये कमाता हो, परन्तु वह हमारे इस कामके लिए बिलकुल निकम्मा साबित हो सकता है। वह मनुष्य हमारे इस सीधे-सादे वातावरणमें आ जाय तो दुःखी ही होगा, जिस तरह हम उसके वातावरणमें पहुंच जाय तो दुःखी होंगे।

देशके लिए हमें आदर्श मजदूरोंकी जरूरत है। वे इस चिन्तामें न पड़ें कि उन्हें खाने-पहननेको क्या मिलेगा या गांवोंके लोग उन्हें क्या-क्या सुख-सुविधायें देंगे। अपनी आवश्यकताओंको वे श्रद्धापूर्वक ईश्वर पर छोड़ दें, और इससे उन्हें जो भी कठिनाइयां या दुःख सहने पड़ें उनमें भी वे सुख मानें। जिस देशमें ७ लाख गांवोंका विचार करना है, वहां यह सब अनिवार्य है। हमें ऐसे वेतनभोगी सेवक नहीं पुसा सकते, जिनकी नजर हमेशा वेतन-वृद्धि, प्रोविडेण्ट फण्ड या पेंशन पर रहती है। हमारे लिए तो ग्रामवासियोंकी निष्ठामय सेवा ही सन्तोष है।

तुममें से कुछ लोगोंके मनमें यह प्रश्न उठ रहा होगा कि गांवोंके लोगोंके लिए भी क्या यही पैमाना है। निश्चय ही नहीं। यह तो हम सेवकोंके लिए है, हमारे स्वामी जो ग्रामवासी हैं उनके लिए नहीं। इतने बरसोंसे हम उनके ऊपर भाररूप बने हुए हैं। अब हम इसलिए अपनी इच्छासे गरीबी स्वीकार करना चाहते हैं कि उनकी स्थिति कुछ सुधरे। हमें करना यह है कि आज वे जो कमाते हैं उसमें वे हमारे प्रयत्नसे कुछ वृद्धि कर सकें। ग्रामोद्योग-संघका यही उद्देश्य है। मैंने जैसे सेवकोंका वर्णन किया है उनकी संख्या संघमें अगर बढती न गई, तो यह उद्देश्य सफल नहीं हो सकेगा। तुम सब इस प्रकारके ग्रामसेवक बनो। १

आवश्यक योग्यतायें

[नीचे दी गई कुछ योग्यतायें गांधीजीने सत्याग्रहियोंके लिए आवश्यक बतलाई थी। लेकिन चूंकि उनके मतानुसार एक ग्रामसेवकको भी

सच्चा सत्याग्रही होना चाहिये, इसलिए ये योग्यतायें ग्रामसेवक पर भी लागू होनेवाली मानी जा सकती हैं।—सं०]

१. ईश्वरमें उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिये, क्योंकि वही उसका आधार है।

२. वह सत्य और अहिंसाको धर्म मानता हो और इसलिए उसे मनुष्य-स्वभावकी सुप्त सात्त्विकतामें विश्वास होना चाहिये। अपनी तपश्चर्याके रूपमें प्रदर्शित सत्य और प्रेमके द्वारा वह उस सात्त्विकताको जाग्रत करना चाहता है।

३. वह चरित्रवान हो और अपने लक्ष्यके लिए जान और मालको कुरबान करनेके लिए तैयार हो।

४. वह आदतन खादीधारी हो और कातता हो। हिन्दुस्तानके लिए यह बहुत आवश्यक है।

५. वह निर्व्यसनी हो, जिससे कि उसकी बुद्धि हमेशा स्वच्छ और स्थिर रहे।

६. अनुशासनके नियमोंका पालन करनेमें हमेशा तत्पर रहता हो।

यह न समझना चाहिये कि इन शर्तोंमें ही सत्याग्रहीकी योग्यताओंकी परिसमाप्ति हो जाती है। ये तो केवल दिशादर्शक हैं। २

ग्रामसेवकके कर्तव्य

१. हरएक सेवक अपने हाथों कते हुए सूतकी खादी या चरखा-संघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहननेवाला और नशीली चीजोंसे दूर रहनेवाला होना चाहिये। अगर वह हिन्दू है तो उसे अपनेमें से और अपने परिवारमें से हर तरहकी छुआछूत दूर करनी चाहिये और जातियोंके बीच एकताके, सब धर्मोंके प्रति समभावके और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुषके किसी भेदभावके विना सबके लिए समान अवसर और समान दरजेके आदर्शमें विश्वास रखनेवाला होना चाहिये।

२. अपने कार्यक्षेत्रमें उसे हरएक गांववालेके व्यक्तिगत संसर्गमें रहना चाहिये।

३. वह गाववालोमें से कार्यकर्ताओको चुनेगा और उन्हे तालीम देगा। इन सबका वह एक रजिस्टर रखेगा।

४. वह अपने प्रतिदिनके कामका लेखा रखेगा।

५. वह गावोको इस तरह सगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगों द्वारा स्वयपूर्ण और स्वावलम्बी बन जायें।

६. गाववालोंको वह सफाई और तन्दुरुस्तीकी तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगोको रोकनेके लिए सारे उपाय काममें लायेगा।

७ हिन्दुस्तानी तालीमी सघकी नीतिके अनुसार नई तालीमके आधार पर वह गाववालोंकी जन्मसे लेकर मृत्यु तककी सारी शिक्षाका प्रबन्ध करेगा।

८. जिनके नाम मतदाताओकी सरकारी यादीमें न आ पाये हो, उनके नाम वह उसमें दर्ज करायेगा।

९. जिन्होंने मतदानके अधिकारके लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त न की हो, उन्हे वह योग्यता प्राप्त करनेके लिए प्रोत्साहन देगा। ३

ग्रामसेवा

ग्रामसेवकके जीवनका मध्यबिन्दु चरखा होगा। यह चिन्तन मैं करता ही रहता हू कि गावोमें व्यापक और सहायक उद्योगके रूपमें तथा दरिद्रता दूर करनेवाले साधनके रूपमें चरखा किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। अभी तो इस तरह चरखेकी हमारे जीवनमें ठीक-ठीक स्थापना हुई ही नही। खादीके मूलमें मेरी जो कल्पना है, वह तो यह है कि खादी हमारे किसानोंके लिए 'अन्नपूर्णा'का काम करेगी। वह उन्हे काम देगी। आज हमारे देशमें न तो उद्योग है, न स्वावलम्बन। यहा तो आलस्यने गहरी जड़ें जमा ली है। उद्योग और स्वावलम्बनको यदि देशमें पुन लौटाना है, तो यह केवल चरखेके द्वारा ही सभव है।

ग्रामसेवक गांवमें जाकर नियमपूर्वक चरखा चलाकर सूत ही नही कातेगा, बल्कि अपनी जीविकाके लिए बसूला या हथौड़ा चलायगा, कुदाली या फावड़ा चलायेगा या हाथ-पैरसे जो भी मजदूरी कर सके करेगा। खाने-पीने और सोनेके लिए आठ घंटे निकालकर बाकीका उसका सारा समय किसी न किसी काममें लगा ही रहेगा। अपना एक मिनट भी वह

बेकार न जाने देगा। काहिलीको न तो वह अपने पास फटकने देगा, न दूसरोंके पास। लोगोंको वह यह बतलाता रहेगा कि मुझे तो यज्ञ करना है, शरीरका पालन-पोषण शारीरिक श्रमसे ही करना है। हमारे देशसे अगर यह आलस्य विदा न हुआ, तो कितनी ही सुविधायें क्यों न मिलें फिर भी लोग भूखों ही मरेंगे। जो अन्नके दो दाने खाता है उसे चार दाने उपजानेका धर्म स्वीकार करना ही चाहिये। ऐसा न हुआ तो जनसंख्या चाहे कितनी ही कम हो जाय, हमारी भुखमरीकी समस्या हल न होगी। और अगर ऐसा हो जाय, इसे धर्म मान लिया जाय, तो दूसरे करोड़ों मनुष्य भी हिन्दुस्तानमें पलने लगें।

इस तरह ग्रामसेवक उद्यमकी जीती-जागती मूर्ति होगा। वह कपास बोनेसे लेकर कपास चुनने और कपड़ा बुनने तककी खादीकी सभी क्रियाओंमें निष्णात बनेगा और हमेशा उन्हें पूर्ण बनानेका ही विचार करता रहेगा। अगर वह इसे शास्त्र मानेगा तो यह उसे अरुचिकर नहीं लगेगा; बल्कि ज्यों ज्यों वह इसकी भारी संभावनाओंको समझेगा, त्यों त्यों रोजाना वह इससे नया आनन्द प्राप्त करेगा। इस प्रकार जिन सेवकोंने ग्रामसेवाके काममें रस लिया होगा वे गांवमें जायंगे तो शिक्षकके रूपमें, परंतु वहां खुद सीखनेवाले बनकर रहेंगे; नित्य-नूतन शोध और साधना करते रहेंगे। मेरी कल्पना यह नहीं है कि वे १६ घंटे खादीके ही काममें लगे रहें, बल्कि खादीके कामके बाद जितना समय उन्हें मिले, उसमें वे गांवके चालू उद्योग-धंधोंकी खोज करें और उनमें दिलचस्पी लें तथा लोगोंके जीवनमें अपनेको ओतप्रोत कर दें। खादी या चरखेमें भले ही लोगोंका विश्वास न हो तो भी इन सेवकोंको वे मनुष्य तो समझेंगे ही और इनके जीवनसे उन्हें जो उपयोगी बातें मिलेंगी वे ग्रहण करेंगे। सेवक किसानोंके कर्जकी समस्या हल करने जैसे अपनी शक्तिसे बाहरके कामोंमें हाथ नहीं डालेंगे।

गांवोंकी सफाई और स्वच्छता ग्रामसेवकका एक दूसरा मुख्य काम होगा। अपने रहनके घर और आसपासकी जगहको वह ऐसी साफ-सुथरी रखेगा कि देखनेवालोंका दिल ही न भरेगा। पर जिस तरह वह अपने घर-आंगनको साफ रखेगा, उसी तरह लोगोंके आंगन और सारे गांवकी सफाई रखेगा।

' ग्रामसेवक गांवोंमें वैद्यराज या डॉक्टर बननेका धंधा नहीं करेंगे। ये ऐसे फन्दे हैं जिनसे बचना चाहिये। हरिजन-प्रवासमें मुझे एक ग्रामाश्रम देखनेका मौका आया। पर वहां मैंने जो देखा उससे बड़ा क्षोभ हुआ। आश्रमके व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओंको मैंने खूब खरी-खोटी सुनाई। मैंने कहा, वाह, आपने यह खूब आश्रम बनाया! यहां तो आप एक आलीशान महल बनाकर बैठे हैं। इसमें दवाखाना भी खोल दिया। पास-पड़ोसके गांवोंमें आपके स्वयंसेवक घर-घर दवायें बांटते फिरते हैं। आप मुझे बड़े गर्वसे कहते हैं कि नित्य दूर-दूरसे लोग दवा लेने हमारे आश्रममें आते हैं और हर माह १२०० मरीजोंकी औसत हाजिरी रहती है। लोगोंको इस तरह दवा-दारू देनेका काम आपका नहीं है। आपका काम तो उन्हें सफाई, स्वच्छता और आरोग्यके नियम सिखानेका है। स्वेच्छाचारी बनकर, गंदे रहकर और *गांवको गंदा रखकर ये लोग बीमार पड़ें और* आपका दवाखाना इन्हें दवाइयां दे, यह तो ग्रामसेवा नहीं है। आपको तो गांववालोंको संयम और स्वच्छता सिखानी चाहिये, जिससे बीमारी उनके पास फटकने ही न पावे। इस आलीशान इमारतको छोड़कर आप सामनेके झोपड़ेमें जा बसो। यह मकान भाड़ेसे लोकल बोर्डको उठा दें। आपको याद होगा कि चंपारनमें हमारे पास कुनैन, अंडीका तेल और आयोडीन —यही दो-तीन दवायें रहती थीं। आरोग्य और सफाईकी बात ही ग्रामसेवकको लोगोंके दिलोंमें बिठानी है।

इसके बाद ग्रामसेवकको गांवके हरिजनोंकी सेवा करनी है। उसका घर हमेशा हरिजनोंके लिए खुला रहेगा। संकट और कठिनाईके समय स्वभावतः वे लोग उसके पास दौड़े आयेंगे। अगर गांववाले उस सेवकके घरमें हरिजनोंका आना-जाना पसन्द न करें और उसे अपनी बस्तीसे निकाल बाहर कर दें, या वह वहां रहकर हरिजन-सेवा न कर सके, तो वह हरिजन-बस्तीमें ही जाकर बस जाय।

अब दो शब्द शिक्षाके बारेमें। बात असलमें यह है कि हाथके पहले बालकोंकी आंख, कान और जीभ काम करेंगी। इसलिए इतिहास, भूगोल आदि जो भी अध्यापक उन्हें पढ़ायेगा वह जबानी ही पढ़ायेगा। इसके बाद बच्चा वर्णमाला और बारहखड़ी पढ़ेगा और फिर अक्षर-चित्र

चनानेका अभ्यास करेगा। इसका पूरा-पूरा प्रयोग आपको करना चाहिये। मुझे लगता है कि लोगोंकी बुद्धि तक पहुंचकर उसे जाग्रत करनेका मेरा यह स्वाभाविक मार्ग सुगमसे सुगम है।

ग्रामसेवकका जीवन गांवके जीवनसे मेल खानेवाला होगा। वह साहित्यिक या ज्ञान-विलासी जीवन बिताकर गांववालोंको सच्ची शिक्षा नहीं दे सकेगा। उसके पास तो चरखा, करघा, बसूला, हथौड़ा, कुदाली, फावड़ा वगैरा औजार होंगे। किताबें पढ़नेमें वह कमसे कम समय देगा। लोग जब उससे मिलने आवें तो वे उसे पड़े-पड़े किताबोंके पन्ने उलटते न देखेंगे। उन्हें वह औजार चलाता हुआ ही मिलेगा। मनुष्य जितना खाता है उससे अधिक पैदा करनेकी शक्ति ईश्वरने उसे दी है। दुर्बलसे दुर्बल मनुष्य भी इतना पैदा कर सकता है। इसके लिए वह अपने बुद्धि-बलका उपयोग करेगा। लोगोंसे वह कहेगा कि मैं आपकी सेवा करनेके लिए आया हूं, पेटके लिए आप मुझे दो रोटियां दे दें। संभव है कि लोग उसका तिरस्कार करें। फिर भी वह अपने गांवमें जमा रहेगा। किसी जगह उसे सनातनी रोटी न दें, तो हरिजन भाई तो देंगे ही। उसने यदि सर्वार्पण कर दिया है, तो हरिजनोंके घरसे रोटी लेनेमें उसे लज्जित न होना चाहिये। पर जहां लोगोंका सहयोग न मिले, वहां वह खुद कोई भी उद्योग करके अपनी जीविका चला सकता है। शुरू-शुरूमें तो जहां संभव हो, किसी सामाजिक संस्थासे थोड़ा-सा पैसा लेकर वह अपना निर्वाह कर सकता है।

याद रखिये कि हमारे सारे अस्त्र-शस्त्र आध्यात्मिक हैं। आध्यात्मिक शक्ति हाथमें आई कि फिर उसे कोई रोक नहीं सकता, यद्यपि आध्यात्मिक शक्ति इन आंखोंसे प्रत्यक्ष दिखाई देनवाली कोई साकार चीज नहीं है। इसलिए आपकी सब प्रवृत्तियोंकी भूमिका आध्यात्मिक ही होनी चाहिये। इसलिए आपका व्यवहार और चरित्र सौ टंच शुद्ध होना चाहिये।

आप यह न कहें कि ग्रामसेवाका यह कार्यक्रम तो हमसे पूरा नहीं होगा, यह चीज असंभव है, हममें इसके लिए जरूरी योग्यता नहीं है। मेरा तो यह कहना है कि यदि यह बात अच्छी तरह आपके दिलमें

बैठ गई हो, तो आप सब लोग यह कार्यक्रम पूरा कर सकते हैं। आप इसके योग्य हैं। प्रयोग करनेमें शरम कैसी ? हमें तो गावोंमें बैठकर इसे अमलमें लाना है। अमल करते-करते ही तो अनुभव प्राप्त होगा। ४

ग्रामसेवाके आवश्यक अंग

एक गांवके कार्यकर्ताको सबसे पहले गावकी सफाई और आरोग्यके सवालको अपने हाथमें लेना चाहिये। यो तो ग्रामसेवकोको किंकर्तव्य-विमूढ बना देनेवाली अनेक समस्यायें है, पर यह समस्या ऐसी है जिसकी सबसे अधिक उपेक्षा की जा रही है। फलत गावकी तन्दुरस्ती बिगडती रहती है और रोग फैलते रहते हैं। अगर ग्रामसेवक स्वेच्छापूर्वक भगी बन जाय, तो वह प्रतिदिन मैला उठाकर उसकी खाद बना सकता है और गावके रास्ते बुहार सकता है। वह लोगोंसे कहे कि उन्हे पाखाना-पेशाब कहा करना चाहिये, किस तरह सफाई रखनी चाहिये, उसके क्या लाभ है और सफाई न रखनेसे क्या क्या नुकसान होते हैं। गावके लोग उसकी बात चाहे सुनें या न सुनें, वह अपना काम बराबर करता रहे। ५

ग्राम-उद्धारमें अगर सफाई न आवे, तो हमारे गाव कचरेके घूरे जैसे ही रहेंगे। ग्राम-सफाईका सवाल प्रजाके जीवनका अविभाज्य अग है। यह प्रश्न जितना आवश्यक है उतना ही कठिन भी है। अनादि कालसे जिस अस्वच्छताकी आदत हमें पड गई है, उसे दूर करनेके लिए महान पराक्रमकी आवश्यकता है। जो सेवक ग्राम-सफाईका शास्त्र नही जानता, खुद भगीका काम नही करता, वह ग्रामसेवाके लायक नही बन सकता।

नई तालीमके बिना हिन्दुस्तानके करोडो बालकोको शिक्षण देना लगभग असभव है, यह चीज आज सर्वमान्य हो गई कही जा सकती है। इसलिए ग्रामसेवकको उसका ज्ञान होना ही चाहिये। उसे नई तालीमका शिक्षक होना चाहिये।

इस तालीमके पीछे प्रौढ़-शिक्षण तो अपने-आप चला आयेगा। जहा नई तालीमने घर कर लिया होगा, वहा बच्चे ही माता-पिताके

शिक्षक वन जानेवाले हैं। कुछ भी हो, ग्रामसेवकके मनमें प्रौढ़-शिक्षण देनेकी लगन होनी चाहिये।

स्त्रीको अर्धांगिनी माना गया है। जव तक कानूनसे स्त्री और पुरुषके हक समान नहीं माने जाते, जव तक लड़कीके जन्मका लड़केके जन्म जितना ही स्वागत नहीं किया जाता, तव तक समझना चाहिये कि हिन्दुस्तान लकवेके रोगसे ग्रस्त है। स्त्रीकी अवगणना अहिंसाकी विरोधी है। इसलिए ग्रामसेवकको चाहिये कि वह हर स्त्रीको उमरके अनुसार अपनी मां, बहन या बेटीके समान समझे और उसके प्रति आदर-भाव रखे। ऐसा ग्रामसेवक ही ग्रामवासियोंका विश्वास प्राप्त कर सकेगा।

रोगी प्रजाके लिए स्वराज्य प्राप्त करना मैं असंभव मानता हूं। इसलिए हम लोग आरोग्य-शास्त्रकी जो अवगणना करते हैं वह दूर होनी चाहिये। अतः ग्रामसेवकको आरोग्य-शास्त्रका सामान्य ज्ञान होना चाहिये।

राष्ट्रभाषाके विना राष्ट्र नहीं वन सकता। ग्रामसेवक अगर राष्ट्र-भाषा नहीं जानता, तो 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू' के झगड़ेमें न पड़कर वह राष्ट्रभाषाका ज्ञान प्राप्त करे। उसकी वोली ऐसी होनी चाहिये, जिसे हिन्दू-मुसलमान सब समझ सकें।

हमने अंग्रेजीके मोहमें फंसकर मातृभाषाका द्रोह किया है। इस द्रोहके प्रायश्चित्तके तौर पर भी राष्ट्रसेवक मातृभाषाके प्रति लोगोंके मनमें प्रेम उत्पन्न करेगा। उसके मनमें हिन्दुस्तानकी सव भाषाओंके लिए आदर होगा। उसकी अपनी मातृभाषा जो भी हो, जिस प्रदेशमें वह वसेगा वहांकी मातृभाषा सीखकर वह स्वयं अपनी मातृभाषाके प्रति वहांके लोगोंकी भावना वढ़ायेगा।

अगर इस सवके साथ-साथ आर्थिक समानताका प्रचार न किया गया, तो यह सव निकम्मा समझना चाहिये। आर्थिक समानताका यह अर्थ हरगिज नहीं कि हरएकके पास धनकी समान राशि होगी। मगर यह अर्थ जरूर है कि हरएकके पास ऐसा घरवार, वस्त्र और खाने-पीनेका सामान होगा कि जिससे वह सुखसे रह सके। और जो घातक असमानता आज मौजूद है वह केवल अहिंसक उपायोंसे ही नष्ट होगी। ६

ग्रामसेवकोंके साथ बातचीत

खादी निश्चय ही हमारे ग्रामोद्योग-रूपी सौर-मडलका केन्द्रीय स्थान लेगी। किन्तु यह याद रखें कि हमें गांवोको वस्त्र-स्वायलम्बी बनानेमें अपना सारा ध्यान एकाग्र करना है। वस्त्र-स्वावलम्बनकी खादीके पीछे पीछे व्यापारकी खादी तो चलेगी ही।

बेशक, गावोंमें दूसरा जो भी उद्योग प्राप्त हो और जिस चीजकी बाजारमें खपत हो सके, उसे आप अवश्य हाथमें ले लें। पर यह ध्यानमें रखना चाहिये कि घाटे पर कोई दुकान न चलायी जाय और न ऐसी चीजें बनायी जायें जिनकी बाजारमें खपत न हो। जो भी देशी हुनर आपको पसन्द हो उसमें नित्य आठ घंटेका समय दीजिये और गाववालोको यह करके बतलाइये कि जिस तरह हम लोग गुजारे भरका पैसा पैदा कर सकते हैं, उसी तरह आप लोग भी आठ घटे काम करके इतना पैसा पैदा कर सकते हैं।

गावमें आप अपने साथ कोई सगी-साथी न ले जाय। हमारी नीति यह है कि एक ग्राममें या ग्राम-समूहमें केवल एक ही सेवक भेजा जाय। जितने भी सगी-साथी वह चाहे उतने अपने गावमें से चुन ले। वे सब उसकी निगरानीमें काम करेंगे, परन्तु उस गावकी खास जिम्मेदारी तो उसी पर रहेगी।

हमें इस यंत्रयुगके लोभपाशमें नहीं फसना चाहिये। हम तो अपने शरीर-यंत्रोंको पूर्ण और काम करने योग्य साधन बनायें और उनका अच्छेसे अच्छा उपयोग करे। यही आपका कर्तव्य है। इसीको लेकर आप हिम्मतके साथ आगे बढ़ें। ७

भयकी भावना

अनेक ग्रामसेवक इस बातसे बड़े भयभीत रहते हैं कि गावोमें अपने गुजर-बसरके लिए वे क्या करेंगे। उन्हें इस बातका बड़ा भय है कि अगर किसी सस्था या व्यक्तिसे उन्हें वेतन न मिला, तो गावोंमें कोई काम करके तो वे अपना गुजारा शायद ही चला सकें। फिर अगर वे कही विवाहित हुए और कुटुम्बका भार भी उन पर हुआ, तब तो उन्हे और

भी ज्यादा चिन्ता होती है। लेकिन मेरी रायमें उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। इसमें शक नहीं कि अगर कोई आदमी शहरी मनोवृत्तिके साथ गांवमें जाय और शहरकी ही तरह वहां भी अपना रहन-सहन रखना चाहे, तब तो उसके लिए वहां अपने निर्वाहके लायक कमाई करना असंभव ही है। उस हालतमें तो वह तभी उतनी कमाई कर सकता है, जब कि शहरवालोंकी तरह वह ग्रामवासियोंका शोषण करे। लेकिन अगर कोई किसी एक गांवमें जा बसे और वहां गांववालोंकी तरह ही रहनेकी कोशिश करे, तो अपने परिश्रम द्वारा अपना निर्वाह करनेमें उसे कोई दिक्कत नहीं होगी। उसे इस बातका विश्वास होना चाहिये कि जब वे ग्रामवासी भी किसी न किसी तरह अपने गुजारेके लायक कमा ही लेते हैं, जो बारहों महीने बाप-दादोंके वक्तसे चले आये ढर्रे पर, अपनी बुद्धिका उपयोग किये बगैर, आंख मूंदकर चले जाते हैं, तो वह भी कमसे कम उतना तो कमा ही लेगा जितना कि औसतन् कोई ग्रामवासी कमा लेता है। और ऐसा करते हुए वह किसी ग्रामवासीकी रोजी भी नहीं मारेगा; क्योंकि गांवमें वह उत्पादक बनकर जायेगा, न कि दूसरोंकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवाला (परोपजीवी) बनकर।

गांवमें जानेवाले ग्रामसेवकके साथ अगर उसका साधारण परिवार भी हो, तो उसकी पत्नी तथा परिवारके अन्य व्यक्तियोंको चाहिये कि वे भी दिनभर पूरी मेहनत करें। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गांवमें जाते ही कोई कार्यकर्ता गांववालोंकी तरह कड़ी मेहनत करने लगेगा। लेकिन अगर वह अपनी हिचक और भयकी भावनाको छोड़ दे, तो यह जरूर है कि अपनी मेहनतकी कमीकी पूर्ति वह बुद्धिका उपयोग करके कर लेगा। जब तक गांववाले उसकी सेवाकी इतनी कद्र न करने लगें कि उसका सारा समय उनकी अधिकसे अधिक सेवामें ही बीतने लगे, तब तक उसे कोई ऐसा उत्पादक कार्य करते रहना चाहिये, जिससे दूसरों पर बोझ पड़े बिना उसका खर्च चलता रहे। हां, जब उसका सारा समय सेवामें ही लगने लगे तब वह उस अतिरिक्त उत्पत्तिमें से कमीशनके रूपमें कुछ पानेका पात्र होगा, जो कि उसके द्वारा प्रेरित उपायोंके फलस्वरूप होने लगेगी। लेकिन ग्रामोद्योग-संघकी देखरेखमें जो

ग्रामकार्य शुरू हुआ है, उसका कुछ महीनोंका अनुभव तो यह प्रकट करता है कि गाँववालोंमें हमारी पैठ बहुत धीरे-धीरे होगी और बड़ी कठिनाईसे। गाँव-वालोंके मनमें अपने आचरणसे यह सिद्ध कर देना पड़ेगा कि श्रम और सदाचरणकी दृष्टिसे वह उनके लिए एक अच्छा उदाहरण है। इससे उन्हें बड़ा सुन्दर पाठ मिलेगा और अगर ग्रामसेवक गाँववालोंका मसीहा बनकर अपनी पूजा करानेके बजाय उन्हींमें से एक बनकर अर्थात् उनके साथ हिल-मिलकर रहेगा, तो देर-सबेर उसका असर पड़े बिना नहीं रहेगा।

अब सवाल यह है कि ग्रामसेवकके लिए गाँवमें कौनसा काम किया जाय? उसे और उसके घरवालोंको अपना कुछ न कुछ समय तो गाँवकी सफाईमें लगाना ही होगा, चाहे गाँववाले इसमें उसकी मदद करें या न करें। और साधारण तौर पर वह दवा-दारूकी जो सीधी-सादी मदद कर सकता है वह भी करेगा ही। इतना तो हर कोई कर ही सकता है कि कुनैन या किसी तरहकी मामूली दवा बता दे, घाव या जखम धोकर साफ कर दे, मैली आँखों व कानोंको धो दे और घाव पर साफ मरहम लगा दे। मैं ऐसी किसी पुस्तककी तलाशमें हूँ, जिसमें गाँवोंमें हमेशा ही होनेवाली मामूली बीमारियोंके लिए सरलसे सरल उपाय और सूचनायें हों। क्योंकि ऐसी भी हो ये दोनों बातें तो ग्रामकार्यका मुख्य अंग होनी हीं। लेकिन इनमें ग्रामसेवकका दो घंटे रोजसे अधिक समय न लगना चाहिये। ग्रामसेवकके लिए आठ घंटेका दिन जैसी कोई बात नहीं है। ग्रामवासियोंके लिए वह जो श्रम करता है वह तो प्रेमका श्रम है। अतः अपने निर्वाहके लिए, इन दो घंटोंके अलावा, उसे कमसे कम आठ घंटे तो लगाने ही होंगे। यह ध्यान रखनेकी बात है कि चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघने जो नई योजना बनाई है, उसके अनुसार तो सब तरहके श्रमका कमसे कम मूल्य या महत्त्व एकसा ही है। इस प्रकार जो पिंजारा अपनी पींजन पर एक घंटा काम करके औसत परिमाणमें रुई धुनकता है, वह ठीक उतनी ही मजदूरी पायेगा जितनी कि उतने समयके अर्थात् एक घंटे तक निश्चित परिमाणमें किये हुए कामके लिए किसी बुनकर, कतैये या कागज बनानेवालेको मिलेगी। इसलिए ग्रामसेवक अपनी इच्छाके अनुसार कोई भी ऐसा काम कर सकता है, जिसे वह आसानीसे कर

सके; अलबत्ता, यह सावधानी उसे हमेशा रखनी चाहिये कि काम ऐसा ही चुना जाय, जिसके फलस्वरूप तैयार होनेवाला माल उसी गांवमें या उसके आसपासके प्रदेशमें खप सके अथवा जिस मालकी इन संघोंको जरूरत हो।

इस बातकी बड़ी जरूरत तो हरएक गांवमें है ही कि वहां ऐसी कोई दुकान हो, जहांसे खाने-पीनेकी चीजें शुद्ध और वाजिब दामों पर मिल सकें। यह ठीक है कि दुकान चाहे कितनी ही छोटी हो, फिर भी उसके लिए थोड़ी-बहुत पूंजी तो चाहिये ही। लेकिन जो कार्यकर्ता अपने कार्यक्षेत्रमें थोड़ा भी परिचित होगा, उसकी ईमानदारी पर लोगोंका इतना विश्वास तो होगा ही कि दुकानके लिए थोड़ा थोक माल उसे उधार मिल जाय।

इस तरहके और उदाहरण देनेकी अब जरूरत नहीं। जो सेवक सतत निरीक्षणकी बुद्धिसे काम करेगा, उसे नित-नई बातोंका पता लगता ही रहेगा और वह जल्दी ही यह जान लेगा कि उसे कौनसा ऐसा काम करना चाहिये, जिससे उसका निर्वाह भी हो और जिन ग्रामवासियोंकी उसे सेवा करनी है उनके लिए वह आदर्श भी उपस्थित कर सके। अतएव उसे ऐसा कोई काम चुनना पड़ेगा, जिससे ग्रामवासियोंका शोषण न हो और न उनके आरोग्य या नैतिकताको ही धक्का लगे, बल्कि उन्हें अपने फुरसतके समयमें हुनर-उद्योगका कोई काम करके अपनी बरायनाम आमदनीमें कुछ वृद्धि करनेकी शिक्षा मिले। सतत निरीक्षणसे उसका ध्यान उन चीजोंकी ओर जायगा, जो गांवोंमें अकारण ही बरबाद होती हैं — जैसे खेतोंमें फसलके साथ उग आनेवाला घासपात और दूसरी अपने-आप पैदा होनेवाली चीजें। बहुत जल्द उसे पता लग जायगा कि उनमें से बहुतसी चीजें तो बड़ी उपयोगी हैं। उनमें से वह खाने योग्य या अन्य उपयोगकी वनस्पतियोंका चुनाव कर ले, तो गोया वह अपनी रोजी कमानेके बराबर ही होगा। मीराबहनने तरह-तरहके पत्थर गांवोंसे लाकर मुझे दिये हैं, जो देखनेमें संगमरमरके जैसे सुन्दर लगते हैं और बड़े उपयोगी हैं। मुझे फुरसत मिली तो शीघ्र ही मैं मामूली औजारोंसे उन्हें तरह-तरहकी शकलोंमें बदलकर बाजारमें बेचने लायक बना दूंगा। काकासाहबने बांसकी सड़ी-गली खपचियोंको, जो निकम्मी समझकर जलाई जानेवाली थीं, एक मामूली चाकूके सहारे कागज काटनेके चाकुओं और लकड़ीके चम्मचोंमें परिणत

कर दिया, जिन्हें एक हद तक बाजारमें बेचा भी जा सकता है। मगन-वाड़ीमें कुछ लोग फुरसतके समयका उपयोग रद्दी कागजोंके, जो एक तरफ कोरे होते हैं, लिफाफे बनानेमें करते हैं।

दरअसल बात यह है कि गांववाले अब बिलकुल निराश हो चुके हैं। किसी भी अजनबीको देखकर उन्हें यही खयाल होता है कि वह उनका गला दबाने और उनका शोषण करनेके लिए ही आया है। बुद्धि और श्रमका संबंध-विच्छेद हो जानेसे अर्थात् उनमें बुद्धिशक्ति न होनेसे उनकी विचारशक्ति कुंठित हो गई है। कामके समयका भी वे सर्वोत्तम उपयोग नहीं करते। ग्रामसेवकको चाहिये कि ऐसे गांवोंमें वह अपने हृदयमें प्रेम और आशा भरकर जाय। उसे इस बातका आत्म-विश्वास होना चाहिये कि जहां विवेकहीनतासे काम करके स्त्री-पुरुष सालमें छह महीने बेकार बैठे रहते हैं वहां वह पूरे साल विवेकपूर्वक काम करेगा, तो निश्चय ही ग्रामवासियोंका विश्वासपात्र बन जायगा और उनके बीच परिश्रम करते हुए ईमानदारीके साथ अपने निर्वाहके लायक कमाई कर सकेगा।

'लेकिन मेरे बालबच्चों और उनकी पढ़ाईका क्या होगा?' यह बात ग्रामसेवाके इच्छुक कार्यकर्ता पूछते हैं। अगर बच्चोंको आधुनिक ढंगकी शिक्षा देनी हो, तब तो मैं कोई ऐसी बात नहीं बता सकता जो कारगर हो। हां, अगर उन्हें स्वस्थ, मजबूत, ईमानदार और समझदार ग्रामवासी बनाना काफी समझा जाय, जिससे कि वे जब चाहें तब गांवमें अपनी रोजी कमा सकें, तो उन्हें सारी शिक्षा अपने मा-बापकी छत्रछायामें ही मिल जायगी; और उसके साथ-साथ जैसे ही वे सोचने-समझने लायक उमरको पहुंचेंगे और अपने हाथ-पैरोंका ठीक-ठीक उपयोग करने लग जायेंगे, वैसे ही अपने परिवारके लिए वे थोड़ी-बहुत कमाई भी करने लगेंगे। सुघड़ घरके समान कोई स्कूल नहीं हो सकता, न ईमानदार और सदाचारी माता-पिताके समान कोई अध्यापक हो सकते हैं। आधुनिक माध्यमिक शिक्षा तो गांववालों पर एक बोझ है। उनके बच्चे कभी भी उसे ग्रहण नहीं कर सकेंगे। और ईश्वरकी कृपा है कि सुघड़ घरेलू शिक्षा यदि उन्हें प्राप्त हो, तो वे उससे महरूम भी हरगिज नहीं रहेंगे। ग्रामसेवक, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अगर [illegible]

जाय। [illegible] इसके लिए ग्रामसेवक [illegible] विचार-विकास और सम्मान [illegible] कामोंको [illegible] न [illegible] ही ठीक होगा। ८

ग्रामसेवकोंके प्रश्न

१

[ग्रामसेवकोंकी सभामें गांधीजीसे कुछ प्रश्न पूछे गये थे। ये प्रश्न ग्रामसेवकोंके कर्तव्यों, ग्रामसेवककी आजीविकाके साधनों, शरीर-श्रम, डाक्टरी तथा गुजरातके आदिवासी दुबलोंकी सेवा आदिसे सम्बन्ध रखते थे।]

ग्रामसेवकका प्रधान कर्तव्य यह है कि वह गांववालोंकी सेवा करे। और वह उनकी सर्वांगीण सेवा तभी कर सकता है, जब वह ग्यारह व्रतोंको प्रकाश-स्तम्भकी तरह सदा अपने सामने रखे। ये व्रत विनोबाजीके बनाये हुए दो पदोंमें आ जाते हैं, जिन्हें देशके अधिकांश आश्रमोंमें प्रार्थनाके समय रोज गाया जाता है:

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भय-वर्जन॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्श-भावना।
हीं एकादश सेवावीं नम्रत्वें व्रत-निश्चयें॥

[अर्थात्: अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, असंग्रह (किसी चीज पर अपना अधिकार करके न बैठ जाना), शारीरिक श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सब धर्मोंके प्रति एकसा आदर-भाव, स्वदेशी, छूतछातका भाव न रखते हुए सबके प्रति भ्रातृभाव — इन ग्यारह व्रतोंका विनम्रताके साथ पालन करना चाहिये।]

ग्रामसेवकोंको अपना निर्वाह कैसे करना चाहिये? क्या वे किसी संस्थासे वेतन लें या उसके लिए कोई काम करें अथवा गांववालों पर आश्रित रहें? आदर्श मार्ग तो गांववालों पर आश्रित रहना ही है। इसमें शर्मकी कोई बात नहीं; यह तो विनम्रता है। इसमें कार्यकर्ताके बहुत खर्चीला हो जानेकी भी गुंजाइश नहीं है, क्योंकि गांववाले उसके खर्चीलेपनको न तो प्रोत्साहन देंगे और न बरदाश्त ही करेंगे। इस दशामें कार्यकर्ताका काम इतना ही होगा कि कामके समय वह गांव-

वालोंके लिए ही काम करे और अपने लिए जितने अनाज और साग-सब्जीकी जरूरत हो उसे गाववालोंसे जुटा ले। इसके सिवा अन्य छोटे-मोटे खर्चोंकी अगर उसे जरूरत हो, हालांकि मेरे खयालमें तो ये खर्च ऐसे नहीं हैं कि उनके बिना ग्रामसेवकका काम ही न चल सके, तो उनके लिए भी वह उनसे थोड़ी रकम ले सकता है। अगर गाववालोंके कहने पर ही वह गांवमें गया होगा, तो गाववाले खुशीसे उसका खर्च चलायेंगे। हां, ऐसा भी हो सकता है कि गाववालोंको उसके विचार न पटें और वे उसके साथ सहयोग करना बन्द कर दें, जैसा कि १९१५ में जब मैंने अस्पृश्योंको सत्याग्रह-आश्रममें भरती किया तब मेरे साथ हुआ था। उस समय ग्रामसेवकको अपने निर्वाहके लिए खुद कोई काम करना चाहिये; किसी संस्था पर आश्रित रहना व्यर्थ है।

गांवमें काम करनेवालेको जहां तक हो सके ज्यादासे ज्यादा शारीरिक श्रम करके गांववालोंको अपनी काहिली दूर करनेकी शिक्षा देनी चाहिये। वैसे तो वह हर तरहकी मेहनतके काम कर सकता है, लेकिन मैला उठानेके कामको उसे ज्यादा पसन्द करना चाहिये। यह निश्चय ही उत्पादक श्रम है। कुछ कार्यकर्ताओंने कमसे कम आय पटा पूर्णतः सेवामें और उत्पादक-श्रममें ही लगाने पर जो जोर दिया है वह मुझे पसन्द है। और मैला उठानेका काम निश्चय ही इस तरहका है। यही बात चक्की-पिसाईको लागू होती है, क्योंकि बचत करना भी तो एक तरहसे कमाई ही है।

ग्रामसेवकको अपने समयके एक-एक मिनटका हिसाब देनेके लिए तैयार रहना चाहिये और सब समयके कार्यको स्पष्ट रूपसे अपनी डायरीमें अंकित करना चाहिये। सच्ची डायरी तो डायरी लिखनेवालेके मन और आत्माकी एक झांकी होती है। लेकिन यह जरूर है कि बहुतोंको अपनी मानसिक हलचलोंका सच्चा विवरण अंकित करना बहुत मुश्किल मालूम पड़ेगा। उस हालतमें वे अपनी शारीरिक हलचलोंको ही उसमें अंकित करें। लेकिन यह लापरवाहीके साथ नहीं होना चाहिये। खाली इस तरह लिख देनेसे काम नहीं चलेगा कि 'रसोईमें काम किया।' इसके साथ निश्चित रूपसे यह भी लिखना होगा कि कबसे कब तक क्या क्या और किस तरह काम किया।

दूबलोंकी सेवाका अर्थ यह है कि हम उनके दुःख-दर्दमें भागीदार बनें और उनके मालिकोंसे मिल-जुलकर इस बातका प्रयत्न करें कि वे उनके साथ न्याय और दयालुताका व्यवहार करें।

ग्रामसेवकको राजनीतिसे अलग रहना चाहिये। वह कांग्रेसका सदस्य तो बन सकता है, लेकिन चुनावकी हलचलमें उसे भाग नहीं लेना चाहिये। क्योंकि वह तो अपने कामकी दिशा निश्चित कर चुका है। ग्रामोद्योग-संघ और चरखा-संघ दोनों कांग्रेसके बनाये हुए हैं, पर अपना काम वे स्वतंत्र रूपसे करते हैं। यही कारण है कि वे और उनके सदस्य कांग्रेसकी राजनीतिक हलचलोंसे अलग रहते हैं। यही अहिंसक मार्ग है।

गांवकी दलबन्दियों, वहांके झगड़ों-टंटोंमें भी उसे (ग्रामसेवकको) नहीं पड़ना चाहिये। उसे तो वहां इस निश्चयके साथ जाकर जमना चाहिये कि जिन बहुतसी बातोंके बिना शहरमें उसका काम नहीं चलता था उनके बिना उसे वहां रहना होगा। अगर मैं किसी गांवमें बैठ जाऊं तो मुझे इस बातका निश्चय करना पड़ेगा कि कौन-कौनसी चीजें ऐसी हैं, जो चाहे जितनी निर्दोष हों फिर भी मुझे गांवमें नहीं ले जानी चाहिये। देखना यह होगा कि वे चीजें साधारण ग्रामवासियोंके जीवनसे मेल खाती हैं या नहीं और उनसे वहां बजाय भलाईके कोई बुराई तो नहीं फैलेगी? ग्रामसेवक बहुत शुद्ध और ऊंचे दर्जेका होना चाहिये, जो खुद तो किसी प्रलोभनमें फंसे ही नहीं, साथमें गांववालोंको भी प्रलोभनोंका शिकार न होने दे। यह तो निश्चय है कि एक शुद्धात्मा भी सारे गांवको बचा सकता है, जैसे कि एक विभीषणने लंकाको बचाया था। इसलिए बहुत पहले ही मैं यह कह चुका हूं कि अपनी रक्षाके लिए हिन्दुस्तान सत्यको छोड़े, इसके बजाय खुद वही मिट जाय तो कोई बुराई न होगी। १

२

[इस प्रश्नके उत्तरमें कि क्या ग्रामसेवक दूध, फल और साग-भाजी ले सकता है, जिन्हें गांववाले नहीं खा सकते, गांधीजीने लिखा:]

ग्रामसेवकको खास बात यह ध्यानमें रखनी चाहिये कि वह ग्रामवासियोंकी सेवा करनेके लिए ही गांवमें गया है और वहां आहारमें तथा दूसरी ऐसी जरूरतकी चीजें लेनेका उसे अधिकार है, उसका धर्म

है, जिनसे वह अपने शरीरमें इतना स्वास्थ्य और शक्ति बनाये रखे कि गांवकी सेवा अच्छी तरह कर सके। यह सही है कि ऐसा करते हुए ग्रामसेवकको अपने रहन-सहनके ढंग पर ग्रामवासियोकी अपेक्षा कुछ अधिक खर्च करना पड़ेगा। पर मेरा ऐसा खयाल है कि ग्रामवासी ग्रामसेवककी जरूरी चीजोको ईर्ष्याकी दृष्टिसे नही देखते। ग्रामसेवकका अन्तःकरण ही उसके आचरणकी कसौटी है। वह संयमसे रहे, स्वादके लिए कोई चीज न खाये, विलासितामें न पडे और जब तक जागता रहे तब तक सेवाकार्यमें ही लगा रहे। फिर भी यह संभव है कि उसके रहन-सहन पर कोई टीका-टिप्पणी करे। पर उस आलोचना या निन्दाकी उसे कोई परवाह नही करनी चाहिये। मैंने जिस आहारकी सलाह दी है, वह सब गांवोंमें मिल सकता है। दूध आम तौरसे गावोमें मिल जाता है और बेर, करौंदा, अमरूद वगैरा अनेक प्रकारके फल भी गावोंमें आसानीसे मिल जाते हैं। इन फलोको इसीलिए हम कोई महत्त्व नहीं देते कि वे आसानीसे मिल जाते है। गांवोंमें अनेक तरहकी पत्तिया या वनस्पतिया काफी प्रचुरतासे मिलती हैं। पर हम केवल अपने अज्ञान या आलस्यके कारण उन्हें उपयोगमें नही लाते। मै खुद आजकल ऐसी अनेक प्रकारकी हरी पत्तिया खा रहा हू, जिन्हे पहले मैंने कभी जीभ पर नही रखा था। और अब मुझे ऐसा मालूम होता है कि ये सब पत्तिया मुझे पहलेसे ही खानी चाहिये थी। गावमें गाय रखना पुसा सकता है और अपना खर्च तो वह खुद निकाल सकती है। मैंने यह प्रयोग किया नही है। किन्तु मुझे लगता है कि यह चीज संभव होनी चाहिये। मेरा यह भी खयाल है कि ग्रामसेवकके जैसा ही आहार ग्रामवासियोको भी मिल सकता है और उसे वे ले सकते हैं। और इस तरह ग्रामसेवकके जैसा रहन-सहन रखना ग्रामवासियोके लिए भी कोई असंभव बात नही है। १०

३

प्र० — करीब करीब हर गावमें पार्टियां और उनके आपसी मतभेद रहते हैं। इसलिए जब ग्रामसेवाके लिए हम स्थानीय या उसी गावकी मदद लेने जाते हैं तो हमारी इच्छा हो या न हो, हम सत्ताके लिए होनेवाले वहाके राजनीतिक झगड़ोंमें फंस जाते हैं। इस मुश्किलको किस तरह

टाला जा सकता है? क्या हमें स्थानीय पार्टियोंसे अलग रहनेकी कोशिश करके बाहरी कार्यकर्ताओंकी मददसे काम चालू रखना चाहिये? हमारा अनुभव है कि इस तरीकेसे किया जानेवाला काम तभी तक चलता है जब तक बाहरकी मदद मिलती रहती है। और जहां वह मदद बन्द हुई कि काम भी बन्द हो जाता है। इसलिए स्थानीय जनताका सहयोग प्राप्त करने और उसमें आगे बढ़कर काम करनेकी सूझ पैदा करनेके लिए हमें क्या करना चाहिये?

उ० — यह हिन्दुस्तानका दुर्भाग्य है कि जैसी दलबन्दी और मतभेद उसके शहरोंमें हैं वैसे ही गांवोंमें भी देखे जाते हैं। और जब गांवोंकी भलाईका खयाल न रखते हुए अपनी पार्टीकी ताकत बढ़ानेके लिए गांवोंका उपयोग करनेके खयालसे राजनीतिक सत्ताकी बू हमारे गांवोंमें पहुंचती है, तो उससे ग्रामवासियोंको मदद मिलनेके बजाय उनकी तरक्कीमें रुकावट होती है। मैं तो कहूंगा कि चाहे जो नतीजा हो, हमें ज्यादासे ज्यादा मात्रामें स्थानीय मदद लेनी चाहिये; और अगर हम राजनीतिक सत्ता हड़पनेकी बुराईसे दूर रहे, तो हमारे हाथों कोई गलती होनेकी संभावना नहीं रहती। हमें याद रखना चाहिये कि शहरोंके अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए स्त्री-पुरुषोंने हिन्दुस्तानके आधारभूत गांवोंको भुला देनेका अपराध किया है। इसलिए आज तककी हमारी इस लापरवाहीको याद करनेसे हममें धीरज पैदा होगा। अभी तक मैं जिस जिस गांवमें गया हूं वहां मुझे एक न एक सच्चा कार्यकर्ता मिला ही है। लेकिन गांवोंमें भी लेने लायक कोई अच्छी चीज होती है, ऐसा माननेकी नम्रता जब हममें नहीं होती तब वहां हमें कोई नहीं मिलता। बेशक, हमें स्थानीय राजनीतिक मामलोंसे दूर रहना चाहिये। लेकिन यह हम तभी कर सकते हैं जब सारी पार्टियोंकी और किसी भी पार्टीमें शामिल न होनेवाले लोगोंकी सच्ची मदद लेना हम सीख जायंगे। अगर हम गांववालोंसे अलग रहेंगे, या उन्हें अपने कामोंसे अलग रखेंगे, तो हमारा किया-कराया सब व्यर्थ जायगा। इस मुश्किलका मुझे खयाल था। इसलिए एक गांवमें एक कार्यकर्ता रखनेके नियमको सख्तीसे पालनकी मैंने कोशिश की है। जहां काम करनेवाले भाई या बहनको बंगला नहीं आती, वहां मैंने बंगला जाननेवाला एक दुभाषिया

रखा है। अभी तो मैं यही कह सकता हूं कि इस तरीकेसे मेरा काम अच्छा चल रहा है। यहां मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि किसी नतीजे पर जल्दीसे पहुंच जानेकी हमें बुरी आदत पड़ गई है। प्रश्न करनेवाले भाई कहते हैं कि 'इस तरह जारी रखा जानेवाला काम बाहरकी मददसे ही चलता है, और इस तरहकी मददके बन्द होते ही यह काम भी बन्द हो जाता है।' किसी कामर्मे झटसे ऐसा दोष निकालनेके पहले मैं तो यह कहूंगा कि किसी एक गांवमें कुछ साल रहकर वहांके कार्यकर्ताओंके द्वारा काम करनेका अनुभव भी इस बातका पूरा प्रमाण नहीं माना जा सकता कि स्थानीय कार्यकर्ता खुद कोई काम नहीं कर सकते या उनके द्वारा कोई काम नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि इससे उलटी बात ही सच है। इसलिए प्रश्नके अंतिम भागकी विस्तृत जांच करना जरूरी है। मैं प्रमुख कार्यकर्तासे साफ शब्दोंमें यह कहूंगा — "अभी बाहरकी जो मदद मिल रही है उसे लेना बन्द कर दीजिये। सिर्फ स्थानीय मददसे ही अकेले हिम्मत और समझसे अपना काम चलाइये। अगर आपका काम सफल न हो तो दूसरे लोगों या परिस्थितियोंको दोष देनेके बजाय खुदको ही दोष देना सीखिये।" ११

ग्रामसेवक-विद्यालयके विद्यार्थियोंसे बातचीत

प्र० — इस गांवके लोग आपसे कभी मिलने आते हैं?

उ० — आते हैं, पर कुछ डरते डरते और शायद थोड़ी शंका भी उनके मनमें रहती है। ग्रामवासियोंकी ये भी कमजोरियां हैं। उनकी ये कमजोरियां भी हमें दूर करनी होंगी।

प्र० — यह आप कैसे करेंगे?

उ० — धीरे-धीरे उनके दिलमें जगह करके हमें उनका यह भय और सन्देह दूर करना होगा कि हम उनसे जबरन् कोई काम कराने आये हैं। हम अपने रोजके प्रेमपूर्ण व्यवहारसे ही यह दिखा सकेंगे कि हमारा जबरदस्ती करने या स्वार्थ साधनेका कोई इरादा नहीं है। पर यह सब धीरजका काम है। आप अपनी सचाई और ईमानदारीका एकाएक तो उन पर विश्वास नहीं जमा सकते।

प्र० — क्या यह ठीक है कि जो लोग किसी संस्था या किसी गांवसे कोई पारिश्रमिक या वेतन लिये विना काम करते हैं, वे ही जनताके विश्वासपात्र वन सकते हैं?

उ० — नहीं, मेरा ऐसा खयाल नहीं है। वेचारे गांववालोंको तो यह भी पता नहीं होता कि कौन वेतन लेकर काम कर रहा है और कौन नहीं। उनके ऊपर तो असलमें हमारी इन वातोंका असर पड़ता है कि हम किस ढंगसे रहते हैं, हमारी आदतें कैसी हैं, हम कैसी वात-चीत करते हैं। यही नहीं, हमारे हरएक भाव या चेष्टा तकका उनके ऊपर असर पड़ता है। शायद उनमें से कुछ लोग हम पर यह सन्देह करें कि हम यहां रुपया-पैसा कमानेकी गरजसे काम कर रहे हैं। तो हमें उनका यह संदेह भी दूर करना होगा। पर तुम यह वात दिलमें न जमा लेना कि जो ग्रामसेवक किसी संस्था या गांवसे कुछ भी नहीं लेता वही आदर्श ग्रामसेवक है। ऐसा मनुष्य अकसर घमंडमें आकर अपनेको औरोंसे ऊंचा समझने लगता है, जिससे उसका पतन हो जाता है।

प्र० — आप हमें गांवके उद्योग-धंधे सिखा रहे हैं। इसका उद्देश्य क्या है? क्या ये धंधे हमारे जीविका कमानेके साधन होंगे या इन्हें हम गांवके लोगोंको सिखा सकेंगे? अगर गांवके लोगोंको सिखानेके लिए ही हमें ये विषय पढ़ाये जा रहे हैं, तो एक वर्षमें हम इन उद्योग-धन्धोंमें निपुण कैसे हो सकते हैं?

उ० — तुम्हें तो मामूली धन्धोंका ही ज्ञान कराया जा रहा है। क्योंकि जब तक तुम्हें इनकी जानकारी न होगी तव तक तुम अपनी सलाहसे लोगोंको मदद नहीं पहुंचा सकोगे। तुममें जो सवसे अधिक उत्साही और कर्मशील होंगे, वे वेशक किसी एक धन्धेके जरिये अपनी रोजी कमा सकते हैं। जो विषय यहां सिखाये जाते हैं वे ऐसे हैं कि उनसे तुम ग्रामवासियोंको कई वातोंका अच्छा ज्ञान करा सकते हो। आटा पीसनेकी चक्की, धान कूटनेकी ओखली और तेलघानीमें हमने सुधार किये हैं। हम अपने औजारोंमें सुधार करनेके प्रयोग कर रहे हैं। तुम सुधरे हुए औजारोंको गांवोंमें ले जा सकते हो। पर सवसे वड़ी वात जो हमें उन्हें सिखानी है वह है आचरणकी सचाई और ईमानदारी। जरासे फायदेके

लिए वे दूधमें, घीमें, तेलमें और अपनी सचाई तकमें मिलावट कर देते हैं। पर यह उनका नहीं, हमारा दोष है। हम इतने दिनों तक उनकी उपेक्षा और शोषण ही करते रहे। उन्हें कभी कोई अच्छी बातें हमने नहीं सिखाईं। अब उनके निकट सम्पर्कमें रहनेसे हम उनकी बुरी आदतोंको आसानीसे सुधार सकेंगे। हमारी इतनी लम्बी लापरवाही और अलगावसे उनकी बुद्धि और अंतरात्मा तक जड़ हो गई है। हमें उनकी इन जड़ शक्तियोंको फिरसे जाग्रत और अनुप्राणित करना है। १२

आन्तरिक भय

कोई भी शक्तिशाली आन्दोलन या संस्था बाह्य आक्रमणोंसे नहीं मर सकती। आन्तरिक विनाश ही उसकी मृत्युका कारण हो सकता है। इसलिए जिन चीजोंकी सबसे ज्यादा जरूरत है वे ये हैं — असंदिग्ध और निष्कलंक चरित्र, कार्य-कुशलताकी वृद्धि, अनवरत प्रयत्न और अत्यन्त सादा जीवन। कार्यके ज्ञानसे शून्य और ग्रामीणोंके सादे जीवनकी अपेक्षा कहीं ऊंचा जीवन बितानेवाले चरित्रहीन कार्यकर्ता ग्रामीणों पर किसी प्रकारका भी अच्छा असर नहीं डाल सकते।

इन पंक्तियोंको लिखते हुए मुझे उन कार्यकर्ताओंका स्मरण आ रहा है, जिन्होंने सच्चरित्र और सादगीके अभावमें ग्रामीणोंके हितको तथा सुदको भी नुकसान पहुंचाया है। सौभाग्यसे दुश्चरित्रताके स्पष्ट उदाहरण बहुत कम हैं। किन्तु इस कार्यमें सबसे बड़ी रुकावट कार्यकर्ताओंकी ग्रामीण जीवनके स्तर पर अपने जीवनको चला सकनेकी अयोग्यता है। अगर प्रत्येक कार्यकर्ता अपने कामकी इतनी कीमत लगाने लगे जिसका बोझ ग्रामसेवा उठा न सके तो नतीजा यह होगा कि इन संस्थाओंको अपना कारोबार समेटना पड़ेगा।

कुछ विरले और अपवादरूप अस्थायी उदाहरणोंको छोड़कर शहरोंके पैमाने पर तनखाहें देनेका अर्थ यह हुआ कि गावों और शहरोंके बीचकी खाईको पाटा नहीं जा सकता। हमें इस तथ्यको अपनी आंखोंसे ओझल न कर देना चाहिये कि ग्राम-सुधारका आन्दोलन शहरियोंके लिए भी उतना ही शिक्षाकी वस्तु है जितना कि स्वयं ग्रामीणोंके लिए है। शहरसे आये हुए कार्यकर्ताओंको ग्रामीण मनोवृत्ति अपनाकर उसके अनुसार ग्राम्य-जीवन

"यह स्थान दूरके एक कोनेमें है, जहां आम तौर पर कोई आता-जाता नहीं। कोई बड़ा आदमी तो ऐसे दूरके गांवोंमें कभी नहीं गया। लेकिन उन्नतिके लिए बड़े आदमियोंकी संगति आवश्यक है। इसलिए गांवमें रहते हुए मैं डरता हूं। आप मुझे क्या सलाह और आदेश देते हैं?"

इसमें शक नहीं कि इस नवयुवकने ग्राम-जीवनकी जो तसवीर खींची है वह अतिशयोक्तिपूर्ण है। पर उसने जो कुछ कहा है उसे आम तौर पर सच माना जा सकता है। गांवोंकी यह बुरी हालत क्यों है, इसकी वजह मालूम करनेके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं। क्योंकि जिन्हें शिक्षाका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने गांवोंकी बहुत उपेक्षा की है। उन्होंने अपने लिए शहरी जीवन चुना है। ग्राम-आन्दोलन तो इसी बातका एक प्रयत्न है कि जो लोग सेवाकी भावना रखते हैं, उन्हें गांवोंमें बसनेकी तथा ग्रामवासियोंकी सेवामें लग जानेकी प्रेरणा देकर गांवोंके साथ स्वास्थ्यप्रद संपर्क स्थापित किया जाय। पत्रप्रेषक युवकने जो बुराइयां देखी, वे ग्राम-जीवनमें बद्धमूल ही हैं। फिर, जो लोग सेवाभावसे ग्रामोंमें बसे हैं, वे अपने सामने कठिनाइयां देखकर हतोत्साह नहीं होते। वे तो इस बातको जानकर ही वहां जाते हैं कि अनेक कठिनाइयोंमें, यहां तक कि गांववालोंकी उदासीनताके होते हुए भी, उन्हें वहां काम करना है। जिन्हें अपने मिशनमें और खुद अपने-आपमें विश्वास है, वे ही गांववालोंकी सेवा करके उनके जीवन पर कुछ असर डाल सकेंगे। सच्चा जीवन बिताना अपने-आपमें एक ऐसा सबक है, जिसका आसपासके लोगों पर जरूर असर पड़ता है। लेकिन इस नवयुवकके साथ शायद कठिनाई यह है कि वह किसी सेवाभावसे नहीं, बल्कि सिर्फ अपने जीवन-निर्वाहके लिए रोजी कमानेको गांवमें गया है। और जो सिर्फ कमाईके लिए ही गांवमें जाते हैं, उनके लिए ग्राम-जीवनमें कोई आकर्षण नहीं है, यह मैं स्वीकार करता हूं। सेवाभावके बगैर जो लोग गांवोंमें जाते हैं, उनके लिए तो उसकी नवीनता नष्ट होते ही ग्राम-जीवन नीरस हो जायगा।

अतः गांवोंमें जानेवाले किसी नवयुवकको कठिनाइयोंसे घबराकर अपना रास्ता नहीं छोड़ना चाहिये। धैर्यके साथ प्रयत्न जारी रखा

बितानेकी कला सीखनी चाहिये। इसका यह मतलब कभी नहीं कि वे भी ग्रामीणोंकी तरह आधे भूखे रहने लगें। इसका सिर्फ इतना ही मतलब है कि उनके पुराने जीवनके ढंगमें मौलिक परिवर्तन होना चाहिये। जहां एक तरफ गांवोंके जीवन-मानको ऊंचा उठानेकी जरूरत है, वहां दूसरी तरफ शहरोंके जीवन-मानको इस तरह नीचा करनेकी जरूरत है कि जिससे उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर न पड़े। १३

हमारे गांव

एक युवकने, जो एक गांवमें रहकर अपना निर्वाह करनेकी कोशिश कर रहा है, मुझे एक दुःखजनक पत्र भेजा है। वह अंग्रेजी ज्यादा नहीं जानता। इसलिए उसने जो पत्र भेजा है उसे मैं यहां संक्षिप्त रूपमें ही देता हूं:

"१५ साल एक कस्बेमें बिताकर, तीन साल पहले जब कि मैं २० बरसका था, मैंने इस ग्राम-जीवनमें प्रवेश किया। अपनी घरेलू परिस्थितियोंके कारण मैं कॉलेजकी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। अतः आपने ग्राम-पुनर्रचनाका जो काम शुरू किया, उसने मुझे ग्राम-जीवन ग्रहण करनेका प्रोत्साहन दिया। मेरे पास कुछ जमीन है। मेरे गांवकी बस्ती कोई २५०० की है। लेकिन इस गांवके निकट संपर्कमें आनेके बाद करीब तीन-चौथाईसे भी ज्यादा लोगोंमें मुझे नीचे लिखी बातें मिलती हैं:

१. दलबन्दी और लड़ाई-झगड़े,
२. ईर्ष्या-द्वेष,
३. निरक्षरता,
४. दुष्टता,
५. फूट,
६. लापरवाही,
७. सभ्यताका अभाव,
८. पुरानी निरर्थक रूढ़ियोंका आग्रह, और
९. निर्दयता।

"यह स्थान दूरके एक कोनेमें है, जहा आम तौर पर कोई आता-जाता नहीं। कोई बड़ा आदमी तो ऐसे दूरके गांवोंमें कभी नहीं गया। लेकिन उन्नतिके लिए बड़े आदमियोंकी संगति आवश्यक है। इसलिए गांवमें रहते हुए मैं डरता हू। आप मुझे क्या सलाह और आदेश देते हैं?"

इसमें शक नही कि इस नवयुवकने ग्राम-जीवनकी जो तसवीर खींची वह अतिशयोक्तिपूर्ण है। पर उसने जो कुछ कहा है उसे आम तौर पर व माना जा सकता है। गांवोंकी यह बुरी हालत क्यों है, इसकी वजह लूम करनेके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं। क्योंकि जिन्हें शिक्षाका ाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने गांवोंकी बहुत उपेक्षा की है। उन्होंने अपने ए शहरी जीवन चुना है। ग्राम-आन्दोलन तो इसी बातका एक प्रयत्न है कि ो लोग सेवाकी भावना रखते हैं, उन्हें गांवोंमें बसनेकी तथा ग्रामवासियोंकी ामें लग जानेकी प्रेरणा देकर गांवोंके साथ स्वास्थ्यप्रद संपर्क स्थापित ्या जाय। पत्रप्रेषक युवकने जो बुराइयां देखी, वे ग्राम-जीवनमें बद्धमूल हीं हैं। फिर, जो लोग सेवाभावसे ग्रामोंमें बसे हैं, वे अपने सामने कठि-ाइयां देखकर हतोत्साह नहीं होते। वे तो इस बातको जानकर ही वहां ाते हैं कि अनेक कठिनाइयोंमें, यहां तक कि गांववालोंकी उदासीनताके ोते हुए भी, उन्हें वहां काम करना है। जिन्हें अपने मिशनमें और खुद ापने-आपमें विश्वास है, वे ही गांववालोंकी सेवा करके उनके जीवन पर ुछ असर डाल सकेंगे। सच्चा जीवन बिताना अपने-आपमें एक ऐसा सबक है, ्सका आसपासके लोगों पर जरूर असर पड़ता है। लेकिन इस नव-ुवकके साथ शायद कठिनाई यह है कि वह किसी सेवाभावसे नहीं, बल्कि ि्र्फ अपने जीवन-निर्वाहके लिए रोजी कमानेको गांवमें गया है। और जो िर्फ कमाईके लिए ही गांवमें जाते हैं, उनके लिए ग्राम-जीवनमें कोई आक-्ण नहीं है, यह मैं स्वीकार करता हू। सेवाभावके बगैर जो लोग गांवोंमें ाते हैं, उनके लिए तो उसकी नवीनता नष्ट होते ही ग्राम-जीवन नीरस ो जायगा।

अतः गांवोंमें जानेवाले किसी नवयुवकको कठिनाइयोंसे घबराकर भी अपना रास्ता नहीं छोड़ना चाहिये। धैर्यके साथ प्रयत्न जारी रखा

ग्रामयात्रियोंको रेल, मोटर और गांवकी बैलगाड़ियों तककी सवारीसे दूर रहना चाहिये। अगर वे मेरी सलाह मानेंगे तो देखेंगे कि उनके कामका और भी अधिक असर पड़ेगा और असलमें एक पाई भी उनकी खर्च न होगी। दो-तीन आदमियोंसे अधिकका यात्रीदल नहीं होना चाहिये। मुझे आशा है कि ग्रामवासी ऐसे छोटे-छोटे यात्रीदलोंको अपने घरोंमें टिका भी लेंगे और उन्हें प्रेमसे रोटी-भाजी भी खिला देंगे। भार तो बेचारे गांववालों पर बड़े-बड़े यात्रीदलोंकी मेहमानीका पड़ता है, दो-दो, तीन-तीन सेवकोंकी छोटी टोलियोंका नहीं।

इन दलोंको अधिक ध्यान ग्रामोंके स्वास्थ्य और स्वच्छता पर देना चाहिये। उन्हें गावोंकी स्थितिके तथ्य और आकड़े इकट्ठे करने चाहिये। गांववालोंको ऐसी सलाह देनी चाहिये कि बिना अधिक पूंजी लगाये वे कौनसा उद्योग कर सकते हैं और किस तरह अपने स्वास्थ्य और आर्थिक स्थितिको सुधार सकते हैं। १५

पुरानोंकी जगह नये तरीके ?

काफी अनुभवके बिना ग्रामसेवकोंको पुराने औजारों, पुराने तरीकों और पुराने नमूनोंमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। पुरानी वर्तमान भूमिकाको कायम रखकर अगर वे सुधारकी बात सोचेंगे तो सुरक्षित रहेंगे। और वे देखेंगे कि यही सच्चा अर्थशास्त्र है। १६

समग्र ग्रामसेवा

अठारह-विध कार्यक्रममें समग्र ग्रामसेवा आ जाती है; जैसे, गांवमें जितने लोग रहते हैं उन्हें पहचानना, उन्हें जो सेवा चाहिये वह देना, अर्थात् उसके लिए साधन जुटा देना और उनको वह काम करना सिखा देना, दूसरे कार्यकर्ता पैदा करना आदि। ग्रामसेवक ग्रामवासियों पर इतना प्रभाव डाला कि वे खुद आकर उससे सेवा मांगेंगे और उसके लिए जो साधन या दूसरे कार्यकर्ता चाहियें उन्हें जुटानेमें उसकी पूरी मदद करेंगे। मान लो कि मैं एक देहातमें तेलधानी लगाकर बैठा हूं। तो मैं घानीसे सम्बन्ध रखनेवाले सब काम तो करूंगा ही, परन्तु मैं १५ से २० रुपये कमानेवाला सामान्य घाची (तेली) नहीं बनूंगा। मैं महात्मा घाची बनूंगा। 'महात्मा'

जाय, तो मालूम पड़ेगा कि गांववाले शहरवालोंसे बहुत भिन्न नहीं हैं और उन पर दया करने और ध्यान देनेसे वे भी साथ देते हैं। यह निस्सन्देह सच है कि गांवोंमें देशके बड़े आदमियोंके सम्पर्कका अवसर नहीं मिलता। हां, ग्राम-मनोवृत्तिकी वृद्धि होने पर नेताओंके लिए यह जरूरी हो जायगा कि वे गांवोंमें दौरा करके उनके साथ जीवित सम्पर्क स्थापित करें। परन्तु चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लुवर जैसे सन्तोंके ग्रन्थोंके रूपमें महान और श्रेष्ठ जनोंका सत्संग तो सबको आज भी प्राप्त है। कठिनाई यही है कि मनको ये स्थायी महत्त्वकी बातें ग्रहण करने लायक कैसे बनाया जाय। अगर आधुनिक विचारोंका राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक साहित्य प्राप्त करनेसे पत्रलेखकका मतलब हो, तो कुतूहल शांत करनेके लिए ऐसा साहित्य मिल सकता है। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूं कि जितनी आसानीसे धार्मिक साहित्य मिल जाता है, उतनी आसानीसे यह साहित्य नहीं मिलता। सन्तोंने तो सर्व-साधारणके ही लिए लिखा और कहा है। पर आधुनिक विचारोंको सर्व-साधारणके ग्रहण करने योग्य रूपमें अनूदित करनेकी प्रथा अभी पूरी तरह आरंभ नहीं हुई है। यह जरूर है कि समय रहते ऐसा होना चाहिये। अतएव इस पत्रप्रेषक जैसे नवयुवकोंको मेरी सलाह है कि वे अपना प्रयत्न छोड़ न दें बल्कि उसमें लगे रहें और अपनी उपस्थितिसे गांवोंको अधिक प्रिय और रहने योग्य बना दें। लेकिन यह वे करेंगे ऐसी सेवाके ही द्वारा, जो गांववालोंके अनुकूल हो। अपने ही परिश्रमसे गांवोंको अधिक साफ-सुथरा बनाकर और अपनी योग्यतानुसार गांवोंकी निरक्षरता दूर करके हरएक व्यक्ति इसका प्रारंभ कर सकता है। और अगर उनके जीवन शुद्ध, सुघड़ और परिश्रमी हों, तो इसमें कोई शक नहीं कि जिन गांवोंमें वे काम कर रहे होंगे, उनमें भी इसकी छूत फैलेगी और गांववाले भी शुद्ध, सुघड़ और परिश्रमी बनेंगे। १४

ग्रामसेवकोंकी तीर्थयात्रा

श्री सीताराम शास्त्री ग्रामसेवकोंकी ऐसी यात्राओंका आयोजन कर रहे हैं, जिन्हें हम तीर्थयात्रा कह सकते हैं। ये ग्रामसेवक अपने इर्दगिर्द-के गांवोंमें ग्रामसेवाका सन्देश लेकर जाते हैं। मैं यह सलाह दूंगा कि

ग्रामवासियोंको रेल, मोटर और तांगे बैलगाड़ियों सबकी सवारीसे दूर रहना चाहिये। अगर वे मेरी सलाह मानेंगे तो देखेंगे कि उनके कामका और भी अधिक असर पड़ेगा और असलमें एक पाई भी उनकी गर्च न होगी। दो-तीन आदमियोंसे अधिकका यात्रीदल नहीं होना चाहिये। मुझे आशा है कि ग्रामवासी ऐसे छोटे-छोटे यात्रीदलोंको अपने घरोंमें टिका भी लेंगे और उन्हें प्रेमसे रोटी-भाजी भी खिला देंगे। भार तो बेचारे गाववालों पर बड़े-बड़े यात्रीदलोंकी मेहमानीका पड़ता है, दो-दो, तीन-तीन सेवकोंकी छोटी टोलियोंका नहीं।

इन दलोंको अधिक ध्यान ग्रामोंके स्वास्थ्य और स्वच्छता पर देना चाहिये। उन्हें गावोंकी स्थितिके तथ्य और आंकड़े इकट्ठे करने चाहिये। गाववालोंको ऐसी सलाह देनी चाहिये कि बिना अधिक पूंजी लगाये वे कौनसा उद्योग कर सकते हैं और किस तरह अपने स्वास्थ्य और आर्थिक स्थितिको सुधार सकते हैं। १५

पुरानोंकी जगह नये तरीके ?

काफी अनुभवके बिना ग्रामसेवकोंको पुराने औजारों, पुराने तरीकों और पुराने नमूनोंमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। पुरानी वर्तमान भूमिकाको कायम रखकर अगर वे सुधारकी बात सोचेंगे तो सुरक्षित रहेंगे। और वे देखेंगे कि यही सच्चा अर्थशास्त्र है। १६

समग्र ग्रामसेवा

अठारह-विध कार्यक्रममें समग्र ग्रामसेवा आ जाती है; जैसे, गावमें जितने लोग रहते हैं उन्हें पहचानना, उन्हें जो सेवा चाहिये वह देना, अर्थात् उसके लिए साधन जुटा देना और उनको वह काम करना सिखा देना, दूसरे कार्यकर्ता पैदा करना आदि। ग्रामसेवक ग्रामवासियों पर इतना प्रभाव डालेगा कि वे खुद आकर उससे सेवा मागेंगे और उसके लिए जो साधन या दूसरे कार्यकर्ता चाहियें उन्हें जुटानेमें उसकी पूरी मदद करेंगे। मान लो कि मैं एक देहातमें तेलघानी लगाकर बैठा हूं। तो मैं घानीसे सम्बन्ध रखनेवाले सब काम तो करूंगा ही, परन्तु मैं १५ से २० रुपये कमानेवाला सामान्य घांची (तेली) नहीं बनूंगा। मैं महात्मा घांची बनूंगा। 'महात्मा'

शब्दका मैंने विनोदमें उपयोग किया है। इसका अर्थ केवल यह है कि अपने घांचीपनमें मैं इतनी सिद्धि डाल दूंगा कि गांववाले आश्चर्यचकित हो जायंगे। मैं गीता पढ़नेवाला, कुरानशरीफ पढ़नेवाला, उनके बच्चोंको शिक्षा देनेकी शक्ति रखनेवाला घांची बनूंगा। समयके अभावमें मैं लड़कोंको पढ़ा न सकूं, वह दूसरी बात है। लोग आकर कहेंगे कि "तेली महाराज, हमारे लड़कोंके लिए एक शिक्षक तो ला दीजिये।" मैं कहूंगा: "शिक्षक मैं ला दूंगा, पर उसका खर्चा आपको बरदाश्त करना होगा।" वे खुशीसे मेरी बात स्वीकार करेंगे। मैं उन्हें कातना सिखा दूंगा। जब वे बुनकरकी मददकी मांग करेंगे, तो शिक्षककी तरह मैं उन्हें बुनकर ला दूंगा, ताकि जो चाहे सो बुनना भी सीख ले। मैं उन्हें ग्राम-सफाईका महत्त्व बताऊंगा। जब वे सफाईके लिए भंगी मांगेंगे तो मैं कहूंगा, "मैं खुद भंगी हूं। आइये, आपको यह काम भी सिखा दूं।" यह है मेरी समग्र ग्राम-सेवाकी कल्पना। १७

२८

सरकार और गांव

सरकार क्या कर सकती है?

कामके लिए एक विभाग तो बेशक जरूरी है। आजकल खाने और पहननके सकटके जमानेमें यह विभाग बडी मदद कर सकता है। अखिल भारत चरखा-संघ और अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघके निष्णात व्यक्ति मंत्रियोंको मिल सकते हैं। आज यह संभव है कि थोड़े समयमें थोडीसे थोडी रकम लगाकर तमाम हिन्दुस्तानको खादी पहना दी जाय। हर प्रान्तकी सरकारको गांववालोंसे कहना होगा कि उन्हें अपने उपयोगके लिए खद्दर स्वयं तैयार कर लेना चाहिये। इस तरह स्थानीय उत्पादन और बटवारेका प्रश्न अपने-आप हल हो जायगा। और शहरोंके लिए कमसे कम थोडी खादी जरूर बच रहेगी, जिससे स्थानीय मिलों पर पड़नेवाला दबाव कम हो जायगा। तब ये मिलें दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें कपड़ेकी जरूरत पूरी करनेमें हाथ बंटा सकेंगी।

यह नतीजा कैसे पैदा किया जा सकता है?

सरकारें गांववालोंको यह सूचना कर दे कि उनसे यह आशा रखी जायगी कि वे अपनी गांवकी जरूरतके लिए एक निश्चित तारीखके अन्दर खद्दर तैयार करें। इसके बाद उनको कोई कपडा न दिया जायगा। सरकार अपनी तरफसे गांववालोंको बिनौले या रुई (जिसकी भी उन्हें जरूरत हो) लागत भावसे देगी और उत्पादनके औजार भी ऐसे दामों पर देगी, जो आसानीसे वसूल होनेवाली किस्तोंमें लगभग पांच साल या इससे ज्यादा समयमें अदा हो सकें। सरकार जहां कहीं जरूरी हो उन्हें सिखानेवाले भी दे और यह जिम्मा ले कि अगर गांववालोंके तैयार किये हुए खद्दरसे उनकी जरूरतें पूरी हो जाय, तो बाकीका खद्दर सरकार खरीद लेगी। इस तरह बिना किसी शोरगुलके और बहुत थोड़े व्यवस्था-खर्चसे कपड़ेकी कमी दूर हो जायगी।

गांवोंकी जांच-पड़ताल की जायगी और ऐसी चीजोंकी एक सूची तैयार की जायगी, जो किसी मददके बिना या बहुत थोड़ी मददसे गांवोंमें ही तैयार हो सकती हैं और जिनकी जरूरत गांवमें बरतनेके लिए या बाहर बेचनेके लिए हो। जैसे, घानीका तेल, घानीकी खली, घानीसे निकला हुआ जलानेका तेल, हाथका कुटा हुआ चावल, ताड़का गुड़, शहद, खिलौने, मिठाइयां, चटाइयां, हाथसे बना हुआ कागज, गांवका साबुन

सकेंगा थोड़े। अगर इस तरह कामको ध्यान दिया जाय, तो उन गांवोंमें जिनमें से ज्यादातर उजड़ चुके हैं या उजड़ रहे हैं, जीवनकी चहल-पहल पैदा हो जाय और उनमें आजके और हिन्दुस्तानके शहरों तथा कस्बोंकी अधिकतर आबादीको पूरी करनेकी जो ताकत छिपी है वह दिखाई पड़ने लगे।

फिर हिन्दुस्तानमें अपार जनबल है, जो हमारी भयंकर उदासीके कारण व्यर्थ जा रहा है। गांधीवादी-संस्थाको अभी ठीक अनुभव नहीं है, फिर भी वह काफी मदद दे सकता है।

बुनियादी तालीमके बिना ग्रामवासी शिक्षासे वंचित रहते हैं। यह अकेली बात हिन्दुस्तानकी तालीमकी मांग पूरी कर सकता है। १

यदि मैं मंत्री होता

ऊपर मैंने जो विचार प्रगट किये थे, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। एक बातमें कुछ गलतफहमी पैदा हुई है। कुछ भाइयोंको उसमें जबरदस्ती दिखाई दी है। मुझे इस अस्पष्टताके लिए खेद है। उसमें मैंने इस प्रश्नका उत्तर दिया था कि आम लोगोंकी प्रतिनिधि-सरकार चाहें तो क्या क्या कर सकती है। मैंने मान लिया था — आशा है वह मान्यता क्षम्य थी — कि इन सरकारोंके नोटिसोंको भी कोई जोर जबरदस्ती नहीं मानेगा। कारण, किसी सच्ची प्रतिनिधि-सरकारके प्रत्येक कार्यमें जिन निर्वाचकोंकी वह प्रतिनिधि है उनकी अनुमति मान ली जायगी। निर्वाचकोंका अर्थ होगा सारी जनता, चाहे उनका नाम निर्वाचक सूचीमें हो या न हो। इस पृष्ठभूमिको खयालमें रखकर मैंने लिखा था कि सरकार ग्रामवासियोंको सूचना दे दे कि एक निश्चित तारीखके बाद ग्रामवासियोंको मिलका कपड़ा नहीं दिया जायगा, ताकि वे अपनी ही तैयार की हुई खादी पहन सकें।

मेरे पिछले लेखका कुछ भी अर्थ हो; मैं कह देना चाहता हूं कि संबंधित लोगोंके स्वेच्छापूर्ण सहयोगके बिना अपनाई हुई खादी-संबंधी कोई भी योजना व्यर्थ सिद्ध होगी और वह उस खादीको मार डालेगी जिसे हम स्वराज्य प्राप्त करनेका साधन बनाना चाहते हैं। फिर तो खादीके बारेमें लोगोंका यह ताना सही होगा कि खादी हमें मध्यकालीन गुलामी

और अज्ञानकी ओर ले जाती है। परन्तु मेरा विचार इसके विपरीत रहा है। जहां जबरन् अपनाई गई खादी गुलामीकी निशानी है, वहां बुद्धिपूर्वक और स्वेच्छासे तैयार की हुई खादी, जो मुख्यतः अपने ही उपयोगके लिए हो, हमारी आजादीकी निशानी है। स्वतंत्रता अगर सर्वांगीण स्वावलम्बनका विकास न करे, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर खादी स्वतंत्र मनुष्यके अपने अधिकार और कर्तव्यकी निशानी न हो, तो कमसे कम मुझे उसमें कोई दिलचस्पी न रहेगी।

मित्रभावसे टीका करनेवाले एक भाई पूछते हैं कि इस योजनाके अनुसार तैयार की गयी खादी क्या बेची भी जा सकती है? मेरा उत्तर यह है कि यदि बिक्री उसका गौण उद्देश्य हो तो ऐसा किया जा सकता है; लेकिन अगर बिक्री ही उसका एकमात्र या मुख्य लक्ष्य हो तो हरगिज नहीं बेची जा सकती। हमने बिक्रीके लिए खादी पैदा करके अपना काम शुरू किया, उसका कारण यह था कि उसके आरंभमें तब हम दूर तक सोच नहीं पाये थे और यह भी कि उस समय हमें उसकी जरूरत थी। अनुभव एक महान शिक्षक है। उसने हमें अनेक बातें सिखायी हैं। उनमें एक बड़ी बात यह है कि खादीका मुख्य उपयोग अपने लिए उसका [illegible] करना है। परन्तु यह भी अंतिम उपयोग नहीं है। खैर, मुझे [illegible] मनोहर क्षेत्रको छोड़कर शीर्षकमें पूछे गये प्रश्नका निश्चित [illegible]ना चाहिये।

[illegible] शासन-कार्यके केन्द्रके रूपमें गांवोंके पुनरुद्धारकी जिम्मेदारी [illegible] मन्त्रीकी हैसियतसे मेरा पहला काम यह होगा कि स्थायी [illegible] से इस कामके लिए मैं ईमानदार और निष्ठावान आदमी [illegible]। मैं उनमें से उत्तम लोगोंका चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघने, [illegible] बनाये हुए हैं, संपर्क कराकर गांवोंके हाथ-उद्योगोंको अधिकसे [illegible] देनेके लिए एक योजना पेश करूंगा। मैं यह शर्त [illegible] ग्रामवासियों पर कोई जबरदस्ती नहीं की जायगी। उन्हें बेगार करनेके लिए मजबूर नहीं किया जायगा। और उन्हें [illegible] आप करना तथा भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओंके लिए अपनी ही मेहनत और कुशलता पर भरोसा करना सिखाया

जायगा। इस प्रकार मानवताको व्यापक बनाना होगा। इसलिए मैं अपने महकमेके अफसरोंको यह आदेश दूंगा कि वह हिन्दुस्तानी तालीमी संघका काम देखें, उसके अधिकारियोंसे मिलें और समझें कि इस दिशामें उनका क्या कहना है।

मैं मान लेता हूं कि इस प्रकार तैयार की हुई योजनामें एक भाग यह होगी: ग्रामवासी स्वयं घोषणा करते हैं कि उन्हें एक निश्चित तारीखसे एक मर्यादित बाद मिलके कपड़ेकी जरूरत नहीं होगी, और यह कि अपना कपड़ा तैयार करनेके लिए उन्हें रुई, ऊन और आवश्यक औजार तथा शिक्षा चाहिये। ये चीजें वे दानके रूपमें नहीं लेंगे, बल्कि आसान किस्तोंमें उनकी कीमत चुकानेकी शर्त पर लेंगे। इस योजनामें यह बात भी होगी कि वह किसी सारे प्रान्त पर एकदम लागू नहीं होगी, परन्तु शुरूमें उसके एक हिस्से पर ही लागू होगी। योजनामें हमें यह भी कहा जायगा कि चरखा-संघ इस योजनाको अमलमें लानेके लिए पथ-प्रदर्शन और सहायता देगा।

उसके लाभप्रद होनेका विश्वास हो जाने पर मैं कानून-विभागकी सलाहसे उसे कानूनी रूप दूंगा और एक सूचना निकालूंगा, जिसमें योजनाकी उत्पत्तिका पूरा वर्णन होगा। ग्रामवासी, मिल-मालिक और अन्य लोग इसमें शरीक रहेंगे। सूचनामें साफ बताया जायगा कि यह जनताका काम है, भले ही उस पर सरकारकी मुहर लगी हो। सरकारी रुपया गरीबसे गरीब ग्रामवासियोंके लाभके लिए खर्च किया जायगा, ताकि संबंधित लोगोंको उसका अधिकसे अधिक लाभ पहुंचे। इसलिए वह शायद पूंजीका सबसे लाभप्रद नियोजन होगा, जिसमें विशेषज्ञोंकी सहायता स्वेच्छापूर्ण होगी और व्यवस्था-खर्च कमसे कम होगा। सूचनामें देश पर पड़नेवाले सारे खर्च और लोगोंको मिलनेवाले लाभका पूरा ब्योरा दिया जायगा।

मंत्रीके नाते मेरे लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि चरखा-संघमें वह दृढ़ विश्वास और क्षमता है या नहीं, जिससे वह खादीकी एक योजना तैयार करके उसे सफलता तक पहुंचा देनेका भार उठा सके। अगर उसमें यह दृढ़ विश्वास और क्षमता है, तो मैं पूरे विश्वासके साथ अपनी छोटी नैयाको समुद्रमें उतार दूंगा। २

२९

भारत और विश्व

जब भारत स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन जायगा और इस तरह न तो खुद किसीकी सम्पत्तिका लोभ करेगा और न अपनी सम्पत्तिका शोषण होने देगा, तब वह पश्चिम या पूर्वके किसी भी देशके लिए — फिर उसकी शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो — लोभमय आकर्षणका विषय नहीं रह जायेगा और तब वह खर्चीले शस्त्रास्त्रोंका बोझ उठाये बिना ही अपनेको सुरक्षित अनुभव करेगा। उसकी यह भीतरी स्वाश्रयी अर्थ-व्यवस्था बाहरी आक्रमणके खिलाफ सुदृढ़तम सुरक्षा सिद्ध होगी। १

पूर्ण स्वराज्यकी मेरी कल्पना दूसरे देशोंसे कोई नाता न रखने-वाली स्वतन्त्रताकी नहीं, बल्कि स्वस्थ और प्रतिष्ठित स्वतन्त्रताकी है। मेरा राष्ट्रप्रेम उग्र तो है, पर वह वर्जनशील नहीं है; उसमें किसी दूसरे राष्ट्र या व्यक्तिको हानि पहुचानेकी भावना नहीं है। कानूनी सिद्धान्त उतने कानूनी नहीं हैं जितने कि वे नैतिक हैं। 'अपनी सम्पत्तिका उपयोग इस तरह करो कि पड़ोसीकी सम्पत्तिको कोई हानि न पहुचे।' — यह कानूनी सिद्धान्त एक सनातन सत्यको प्रकट करता है और उसमें मेरा पूरा विश्वास है। २

स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक भारत आक्रमणके खिलाफ पारस्परिक रक्षण और आर्थिक सहकारके लिए दूसरे स्वतन्त्र देशोके साथ खुशीसे सहयोग करेगा। वह आजादी और जनतंत्र पर आधारित ऐसी विश्व-व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए काम करेगा, जो मानव-जातिकी प्रगति और विकासके लिए दुनियाके समूचे ज्ञान और उसकी समूची साधन-सम्पत्तिका उपयोग करेगी। ३

पश्चिमी राष्ट्रोंको अपनी कुशलताका लाभ दूसरोंको देना चाहिये। यदि वे अपनी कुशलताका उपयोग विदेशोंमें परमार्थ-बुद्धिसे करना चाहते हों, तो अमेरिका कहेगा: 'अच्छा देखिये, हम पुल बनाना जानते हैं। इस कलाको हम गुप्त नहीं रखना चाहते। हम तो समूची दुनियासे कहेंगे

कि हम आपको पुल बनाना सिखायेंगे और उसके लिए आपसे कुछ भी कीमत नहीं लेंगे।' अमेरिका आगे कहेगा: 'जब अन्य राष्ट्र गेहूंका एक ही दाना पैदा कर पाते हैं, तब हम दो हजार दाने पैदा कर सकते हैं।' पर अमेरिका सीखनेवालोंको यह कला मुफ्त सिखायेगा और समूची दुनियाके लिए गेहूं पैदा करनेकी महत्त्वाकांक्षा न रखेगा; नहीं तो सचमुच दुनियाके लिए वह एक दुःखद दिन होगा। ४

[अफ्रीकावासी यह जानना चाहते थे कि हिन्दुस्तान उन्हें क्या दे सकता है और उनका जो भयंकर शोषण आज हो रहा है उससे बचनेके लिए वे अपने देशमें सहयोगके आधार पर चलनेवाले उद्योग-धन्धे कैसे स्थापित कर सकते हैं।]

पश्चिमी शोषक आपसे कच्चा माल लेकर तैयार माल आपको देते हैं; हिन्दुस्तान ऐसा धंधा नहीं करेगा। हिन्दुस्तान और अफ्रीकाके बीच विचारों और सेवाकी अदला-बदली होगी। हिन्दुस्तान आपको चरखा दे सकता है। जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था तब मुझे चरखेका ज्ञान हो गया होता, तो उन अफ्रीकावासियोंमें, जो फिनिक्समें मेरे पड़ोसी थे, मैंने उसका प्रचार जरूर किया होता। आप लोग कपास पैदा कर सकते हैं, आपके पास काफी समय है और आप लोग हाथसे काम करनेकी कला भी जानते हैं। गांवके उद्योग-धंधोंको फिरसे जिलानेकी हम जो कोशिश कर रहे हैं, उसका आपको अध्ययन करना चाहिये और उससे सबक सीखना चाहिये। आपकी मुक्तिकी कुंजी इसीमें छिपी है। ५

'क्या अमेरिकावालोंके लिए चरखेका कोई सन्देश है? क्या अणु-बमके खिलाफ, उसके इलाजके रूपमें, चरखेका हथियार काम दे सकता है?'

चरखेका संदेश अकेले अमेरिकाके लिए ही नहीं, बल्कि सारी दुनियाके लिए है।... मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं कि चरखेमें हिन्दुस्तानका ही नहीं, बल्कि सारी दुनियाका उद्धार और उसकी सुरक्षितता समाई हुई है। अगर हिन्दुस्तान यंत्रों या कल-कारखानोंका गुलाम बन गया, तो फिर दुनियाके लिए रक्षाका कोई मार्ग न रह जायगा। उस स्थितिमें भगवान ही उसकी रक्षा कर सकेगा। ६

मैं अपने हृदयकी गहराईमें . . . यह अनुभव करता हूं कि दुनिया युद्धके सहारेसे बहुत ज्यादा ऊब गई है। इससे बाहर निकलनेका मार्ग दुनिया खोज रही है। मुझे यह विश्वास करनेका लोभ होता है कि शायद भारतकी प्राचीन भूमिको ही शान्तिकी भूखी दुनियाको वह मार्ग दिखानेका सौभाग्य प्राप्त होगा। ७

अगर हिन्दुस्तान अपने कर्तव्यको भूलता है, तो एशिया मर जायगा। यह ठीक ही कहा गया है कि हिन्दुस्तान कई मिली-जुली सभ्यताओं और संस्कृतियोंका घर है, जहां वे सब साथ साथ पनपी हैं। हम सब ऐसे काम करें जिससे हिन्दुस्तान एशिया, अफ्रीका या दुनियाके किसी भी हिस्सेकी कुचली और चूसी हुई जातियोंके लिए आशाका प्रतीक बन जाय और सदा वैसा ही बना रहे। ८

हम सारी दुनियासे नाता नहीं तोड़ना चाहते। हम तो सभी राष्ट्रोंके साथ खुला आदान-प्रदान रखेंगे, लेकिन जबरदस्तीसे लादा हुआ आदान-प्रदान तो बन्द करना ही पड़ेगा। हम यह नहीं चाहते कि कोई हमारा शोषण करे। न हम खुद ही किसी दूसरे राष्ट्रका शोषण करना चाहते हैं। बुनियादी तालीमकी योजनाके द्वारा हम सब बालकोंको उत्पादक बनाकर सारे राष्ट्रकी शकल बदल देना चाहते हैं, क्योंकि इससे हमारा सारा सामाजिक ढांचा ही बदल जायगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम सारी दुनियासे नाता तोड़कर सबसे अलग हो जाना चाहते हैं। ऐसे राष्ट्र तो रहेंगे ही जो कुछ चीजें अपने यहां पैदा न कर सकनेके कारण दूसरे राष्ट्रोंके साथ आदान-प्रदान करना चाहेंगे। इसमें कोई शक नहीं कि उन्हें ऐसी चीजोंके लिए दूसरे राष्ट्रों पर अवलम्बित रहना पड़ेगा; लेकिन जो राष्ट्र उनकी आवश्यकताएं पूरी करे, उन्हें उनका शोषण नहीं करना चाहिये।

'लेकिन अगर आप अपने जीवनको इस हद तक सादा बना लें कि दूसरे देशोंकी बनी किसी चीजकी आपको जरूरत ही न रहे, तो आप अपनेको उनसे अलग कर लेंगे; जब कि मैं चाहता हूं कि आप अमेरिकाके लिए भी जिम्मेदार बनें।'

'स्वतंत्र भारतमें किसानका हित सबसे बढ़कर होगा? अगर पड़ोसी राष्ट्रको किसी चीजकी जरूरत हो, तो स्वतंत्र भारत क्या यह कहकर असमर्थता जता देगा कि पहले उसकी जरूरतें पूरी होनी चाहिये?'

अगर भारत सच्चे अर्थमें स्वतंत्र होगा, तो वह अपने मुसीबतके मारे पड़ोसी देशोंको जरूर मदद देगा। जिस मनुष्यकी बलिदानकी भावना अपने समाजसे आगे नहीं बढ़ती, वह खुद स्वार्थी है और अपने समाजको भी स्वार्थी बनाता है। मेरी रायमें स्वार्थके बलिदानका अनिवार्य परिणाम यह है कि मनुष्य समाजके लिए अपना बलिदान दे, समाज जिलेके लिए अपना बलिदान दे, जिला प्रान्तके लिए अपना बलिदान दे, प्रान्त देशके लिए अपना बलिदान दे और देश सारी दुनियाके लिए अपना बलिदान दे। समुद्रसे अलग की गई पानीकी बूंद बिना किसीको लाभ पहुंचाये सूख जाती है। किन्तु यदि वह समुद्रका अंग बनकर रहती है, तो अपनी छाती पर विशाल जहाजी बेड़ेको ले जानेका यश कमाती है। ११

कोई यह सोचनेकी गलती न करे कि रामराज्यका अर्थ हिन्दुओंका राज्य है। मेरा राम खुदा या गॉडका दूसरा नाम है। मैं तो खुदाई राज चाहता हूं, जो पृथ्वी पर 'ईश्वरीय राज्य' जैसा ही है। ऐसे राज्यकी स्थापनाका अर्थ केवल सारे भारतीय जन-समुदायका कल्याण ही नहीं, बल्कि समूचे विश्वका कल्याण है। १२

मैं भारतको स्वतंत्र और बलवान बना देखना चाहता हूं, ताकि वह दुनियाके भलेके लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके। शुद्ध

व्यक्ति कुटुम्बके लिए, कुटुम्ब गांवके लिए, गांव जिलेके लिए, जिला प्रान्तके लिए, प्रान्त राष्ट्रके लिए और राष्ट्र सारे मानव-समाजके लिए अपना बलिदान करता है। १३

स्वराज्यके द्वारा हम सारे विश्वकी सेवा करेंगे। १४

राज्य द्वारा खड़ी की गई सीमाओंके उस पार बसे हुए अपने पड़ोसियों तक अपनी सेवाओंको फैलानेकी कोई सीमा नहीं है। ईश्वरने ऐसी सीमायें कभी नहीं बनाई हैं। १५

साधन-सूत्र

[यं. इं. – यंग इंडिया; हि. न. – हिन्दी नवजीवन; ह. – हरिजन; ह. से. – हरिजनसेवक; नटेसन – स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी।]

प्रकरण – १

१. यं. इं., १९-३-'३१, पृ. ३८
२. यं. इं., १५-१०-'३१, पृ. ३०५
३. हि. न., २९-१-'२५, पृ. १९८
४. ह., २-१-'३७, पृ. ३७४
५. हि. न., ८-१२-'२७, पृ. १२६
६. यं. इं., ६-८-'२५, पृ. २७६
७. यं. इं., २६-६-'२४, पृ. २१०
८. यं. इं., २८-७-'२१, पृ. २३८
९. यं. इं., १-५-'३०, पृ. १४९
१०. यं. इं., १६-४-'३१, पृ. ७८
११. यं. इं., २३-१-'३०, पृ. २६
१२. यं. इं., ५-३-'३१, पृ. १
१३. यं. इं., ५-३-'३१, पृ. १
१४. यं. इं., २६-३-'३१, पृ. ४६-४७
१५. यं. इं., २६-३-'३१, पृ. ५१
१६. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५९, पृ. ९-१०
१७. यं. इं., १८-६-'३१, पृ. १४७
१८. ह., २-१-'३७, पृ. ३७४
१९. ह., २७-५-'३९, पृ. १४३
२०. ह., २५-३-'३९, पृ. ६४
२१. ह., २५-३-'३९, पृ. ६५

प्रकरण – २

१. महात्मा गांधी — दि लास्ट फेज़, १९५६, खंड १, पृ. १९०-९१
२. महात्मा गांधी — दि लास्ट फेज़, १९५६, खंड १, पृ. ५३९-४०
३. ह. से., १८-१-'४८, पृ. ४६६

प्रकरण – ३

१. यं. इं., १२-११-'३१, पृ. ३५५
२. यं. इं., २२-१०-'३१, पृ. ३१८
३. हि. न., ७-१०-'२६, पृ. ६०
४. यं. इं., २५-७-'२९, पृ. २४४
५. हि. न., ७-१०-'२६, पृ. ६०
६. हि. न., १७-३-'२७, पृ. २४५
७. ह., २९-८-'३६, पृ. २२६
८. ह., १-९-'४६, पृ. २८५
९. यं. इं., ३०-४-'३१, पृ. ८८
१०. नटेसन, पृ. ३५३-५४
११. ह., २९-९-'४०, पृ. २९९
१२. ह. से., ४-३-'३९, पृ. १८
१३. हि. न., २०-१२-'२८, पृ. १४३

१४. हि. न., ७-१०-'२६, पृ. ६१
१५. हि. न, २-११-'२४, पृ. ९४
१६. य इं, ५-११-'२५, पृ ३७७
१७. य. इं, १५-४-'२६, पृ १४२
१८. य. इं., ३-११-'२१, पृ ३५०
१९. यं. इं, १७-६-'२६, पृ २१८
२०. य. इं, १३-११-'२४, पृ. ३७८
२१. ह, २७-२-'३७, पृ. १८
२२. ह, २-११-'३४, पृ ३०१-०२
२३. टुवर्ड्स न्यू होराइजन्स, १९५९, पृ. ४५-४६

प्रकरण – ४

१. हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड, ६-१२-'४४
२. अमृत बाजार पत्रिका, ३०-६-'४४
३. हिन्द स्वराज्य, १९५९, पृ. ७८-७९
४. ह. से., ३१-३-'४६, पृ ६३
५. हि. न., १७-३-'२७, पृ २४६
६. रस्किन, पृ १७
७. ह. से., २३-६-'४६, पृ १९८
८. ह. से, २५-८-'४६, पृ २८२
९. ह., ४-४-'३६, पृ. ६३
१०. ह., ४-४ '३६, पृ. ६३-६४
११. नटेसन, पृ. ३२३
१२. य. इं., ३०-४-'३१, पृ. ९४
१३. ह, १-३-'३५, पृ. २१
१४. यं. इ., ११-९-'२४, पृ. ३००
१५. ह, १-३-'३५. पृ. २१
१६ ह, १-३-'३५. पृ २१
१७ ह, ७-३-३६ पृ. ३०
१८. ह. ११-४-'३६, पृ ६८
१९. ह., १६-५-'३६, पृ ११२
२०. ह, ९-१०-३७, पृ २९३
२१. यं इ, ७-११-'२९, पृ ३६४

प्रकरण – ५

१. य इ, २६-१२-'२९, पृ ४२०
२. ह, २९-८-३६, पृ २२६
३. ह से, २०-१-'४०, पृ ३९२
४. मच ऑफ ओल्ड लेटर्स, १९५८, पृ ५०६-०७ (५-१०-'४५)
५. ह. से, २-८-'४२, पृ २४३-४४
६. ह., ९-१-'३७ पृ ३८३
७. बच ऑफ ओल्ड लेटर्स, १९५८ पृ ५०६-०७ (५-१०-'४५)

प्रकरण – ६

१. य. इ., १३ ११-'२४, पृ. ३७८
२. ह से, १८-१-'४२, पृ. ६
३. य इ, १५-११-'२८, पृ. ३८१
४. हि. न, २६-१२ '२४, पृ. १५५
५. नटेसन, पृ. ३५०
६. नटेसन, पृ ३५०
७. ह. से., २३-३-'४७, पृ. ७०
८. यं. इं., ६-१०-'२१, पृ. ३१४
९. य इ., २६-३-'३१, पृ ४९
१०. मगल-प्रभात, १९५८, पृ. ३५
११. सत्याग्रह आश्रमका इतिहास १९५९, पृ ४०-४४

१२. यं. इं., १३-१०-'२१, पृ. ३२६
१३. ह., २३-२-'४७, पृ. ३६
१४. यं. इं., १३-१०-'२१, पृ. ३२५
१५. ह. से., १०-११-'४६, पृ. ३८७
१६. ह., ९-१०-'३७, पृ. २९२
१७. ह., १५-१-'३८, पृ. ४१६
१८. यं. इं., १७-३-'२७, पृ. ८६
१९. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५९, पृ. ४०-४१
२०. ह., २५-८-'४०, पृ. २६०
२१. ह., ३०-१२-'३९, पृ. ३९१
२२. ह., ४-११-'३९, पृ. ३३१
२३. सत्याग्रह आश्रमका इतिहास, १९५९, पृ. ४४-४६
२४. टुवर्ड्स न्यू होराइजन्स, १९५९, पृ. ८
२५. ह. से., २-८-'४२, पृ. २४३
२६. ह., १७-७-'२४, पृ. २३४
२७. ह., २७-७-'३५, पृ. १८८
२८. ह. से., २८-७-'४६, पृ. २३६
२९. ह., २-२-'४७, पृ. ३
३०. ह. से., २-८-'४२, पृ. २४३
३१. ह. से., ९-३-'४७, पृ. ४६
३२. ह. से., २-८-'४२, पृ. २४३
३३. ह. से., २२-२-'४८, पृ. ४३
३४. सत्याग्रह आश्रमका इतिहास, १९५९, पृ. ७७
३५. ह. से., २८-७-'४६, पृ. २३६
३६. ह. से., २-८-'४२, पृ. २४४
[illegible] से., २-८-'४२, पृ. २४४
३८. टुवर्ड्स न्यू होराइजन्स, १९५९, पृ. १९४
३९. ह. से., ३१-७-'३७, पृ. १११

प्रकरण – ७

१. मंगल-प्रभात, १९५८, पृ. ४१-४४
२. ह. से., ५-७-'३५, पृ. १६०
३. ह., २९-६-'३५, पृ. १५६
४. हि. न., ५-११-'२५, पृ. ९५
५. ह., १-६-'३५, पृ. १२५
६. ह., २९-६-'३५, पृ. १५६
७. यं. इं., १३-८-'३५, पृ. २८२
८. ह., ११-५-'३५, पृ. ९९
९. ह. से., ९-६-'४६, पृ. १६९

प्रकरण – ८

१. यं. इं., २६-११-'३१, पृ. ३६८
२. ह., २५-८-'४०, पृ. २६०
३. यं. इं., ५-११-'३१, पृ. ३८४
४. ह., १३-७-'४०, पृ. २०५
५. ह., १६-३-'४७, पृ. ६७

प्रकरण – ९

१. ह. से., ३-६-'३९, पृ. १२३
२. दि माडर्न रिव्यु, १९३५, पृ. ४१२

प्रकरण – १०

१. नटेसन, पृ. ३३६-४४
२. फ्रॉम यरवडा मंदिर, १९५९, अ. १६, पृ. ६६

प्रकरण – ११

१. दि आइडियालॉजी ऑफ दि चरखा, १९५१, पृ. ८६-८८
२. खादी, १९५९, पृ. २२२
३. खादी, १९५९, पृ. १८५
४. ह. से., १९-१०-'४७, पृ. ३१९
५. ह. से., ५-४-'४२, पृ. ९८
६. ह., २७-७-'३५, पृ. १८८
७. ह., २२-८-'३६, पृ. २१७
८. खादी, १९५९, पृ. २१६
९. ह. से, २६-४-'३५, पृ. ८०
१०. यं. इं., २५-४-'२९, पृ १३५
११. हि. न., १०-६-'२६, पृ. ३४०
१२. ह. से., ६-१०-'४६, पृ. ३३५

प्रकरण – १२

१. यं. इं, २८-५-'३१, पृ. १२३
२. ह. से, २८-७-'४६, पृ २३६
३. ह. से., १८-१-'४८, पृ ४५७
४. ह. से., ४-१-'४८, पृ. ४३५-३६

प्रकरण – १३

१. ह. से., २१-१२-'४७, पृ ४१२
२. ह. से., १७-४-'३७, पृ. ७०-७१
३. ह. से, ५-६-'३७, पृ १२८-२९
४. ह. से., ५-६-'३७, पृ १२९
५. ह. से., ४-९-'३७, पृ. २२७
६. ह. से, २-१०-'३७, पृ. २५९-६०
७. ह. से, ३१ ७-'३७, पृ. १९१-९२
८. ह. से., ११-९ '३७, पृ २३८
९. ह. से., १८-९-'३७, पृ. २४८
१०. ह, १८-९-'३७, पृ. २६५
११. ह, ९-१०-'३७, पृ. २९२
१२. ह, ९-१०-'३७, पृ. २९३
१३. ह से, ११-६-'३८, पृ. १३१, १३५
१४. ह से., २-११-'४७, पृ. ३३२ ३३
१५. ह., १८-२-'३९, पृ. १४-१५
१६. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५९, पृ. २८-२९

प्रकरण – १४

१. खादी, १९५९, पृ. २१६-१७
२. खादी, १९५९, पृ. २३१
३. खादी, १९५९, पृ. २४०
४. मंगल-प्रभात, १९५८, पृ. ४३
५. ह. से, २५-८-'४६, पृ. २८१-८२
६. ह., २८-१-'३९, पृ. ४३९
७. ह., २८-१-'३९, पृ. ४३९
८. ह., १-३-'३५, पृ. २१
९. ह., १६-५-'३६, पृ. १११
१०. ह. से., ६-३-'३७, पृ.

११. ह. से., ९-३-'४७, पृ. ५२
१२. दि बांबे क्रॉनिकल, २८-१०-'४४
१३. ह. से., ८-२-'४८, पृ. २३

प्रकरण – १५

१. दि बांबे क्रॉनिकल, २८-१०-'४४
२. ह., २-१-'३७, पृ. ३७५
३. ह., २०-५-'३९, पृ. १३३
४. ह. से., २०-४-'४०, पृ. ८१
५. अमृत बाजार पत्रिका, २-८-'३४
६. अमृत बाजार पत्रिका, २-८-'३४
७. अमृत बाजार पत्रिका, २-८-'३४
८. अमृत बाजार पत्रिका, २-८-'३४
९. ह. ५-१२-'३५, पृ. ३३८
१०. यं. इं., ५-१२-'२९, पृ. ३९६
११. यं. इं., २८-५-'३१, पृ. १२०
१२. ह., ४-५-'४७, पृ. १३४
१३. ह., १-६-'४७, पृ. १७२
१४. ह., २-१-'३७, पृ. ३७५
१५. ह. से., ९-३-'४७, पृ. ४६

प्रकरण – १६

१. ह. से., १५-२-'४२, पृ. ४१
२. ह. से., ९-३-'४७, पृ. ४७
३. ह. से., ९-३-'४७, पृ. ४६

प्रकरण – १७

१. ह. से., २८-१२-'४०, पृ. ४१३
२. ह. से., २८-१२-'४०, पृ. ४१९
३. ह. से., ८-३-'३५, पृ. २१
४. ह. से., २२-३-'३५, पृ. ३६
५. ह., १७-८-'३५, पृ. २१३-१५
६. ह., २४-८-'३५, पृ. २१८-१९, २२४
७. ह. से., २-८-'४२, पृ. २४३

प्रकरण – १८

१. ह. से., १९-१०-'४७, पृ. ३१६-१७
२. ह. से., २५-१-'४२, पृ. ९
३. ह. से., २४-२-'४६, पृ. २२-२३
४. यं. इं., २-४-'२५, पृ. ११८
५. ह. से., २०-९-'३५, पृ. २४९

प्रकरण – १९

१. कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम, १९६१, पृ. १२-१४
२. यं. इं., १७-९-'२५, पृ. ३२१
३. ह., १७-११-'४६, पृ. ४०४
४. यं. इं., २०-१०-'२१, पृ. ३२९
५. यं. इं., २१-७-'२०, पृ. ४
६. यं. इं., ३-११-'२१, पृ. ३५०
७. यं. इं., ८-१२-'२१, पृ. ४०५
८. यं. इं., २१-८-'२४, पृ. २७७
९. यं. इं., १८-६-'२५, पृ. २११
१०. यं. इं., २७-८-'२५, पृ. २९९
११. यं. इं., १७-२-'२७, पृ. ५२

[illegible]
१८. [illegible]
१९. [illegible]
२०. [illegible] पृ. ४०
२१. [illegible]
२२. [illegible]
२३. आरोग्यकी कुंजी, १९५९, पृ. २३-२४
२४. ह. से., ८-२-'३५, पृ. ४३३
२५. ह. से., १४-२-'३४, पृ. ३०१
२६. खादी, १९५९, पृ. २४६
२७. ह. से., ३१-८-'३४, पृ. २८४
२८. ह. से., ३१-८-'३४, पृ. २८४
२९. ग्रामोद्योग पत्रिका, जुलाई, १९४६

प्रकरण – २१

१. ह. से., ३-७-'३७, पृ. १५६
२. ह. से., २-९-'३९, पृ. २२७-२८
३. ह., १५-९-'४०, पृ. २८२

प्रकरण – २२

१. ह., २-११-'३४, पृ. ३०२
२. नटेसन, पृ. ३४२
३. स्वराज थ्रू चरखा, १९४५, पृ. ५
४. ह., २-२-'३४, पृ. २, ६
५. खादी, १९५९, पृ. २२२
६. ह. से., ७-७-'४६, पृ. [illegible]
७. ह. से., १८-१-'४६, पृ. [illegible]
८. ह. से., १८-३-'३३, पृ. [illegible]

प्रकरण – २३

१. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५[illegible] पृ. २७-२८
२. ह. से., १५-२-'३५, पृ. ४८४-८५

प्रकरण – २४

१. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५[illegible] पृ. ३५
२. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. [illegible]
३. रचनात्मक कार्यक्रम, १९५[illegible] पृ. ३६
४. ह. से., ७-४-'४६, पृ. ६[illegible]
५. ह. से., २६-५-'४६, पृ. १५[illegible]
६. ह. से., २-६-'४६, पृ. १६[illegible]
७. ह. से., ११-८-'४६, पृ. २५[illegible]
८. ह. से., १८-८-'४६, पृ. २७०
९. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ३९
१०. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४०
११. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४०
१२. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४१
१३. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४१

१४. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४२
१५. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४२
१६. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४३
१७. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४४
१८. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४६-४७
१९. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ४९-५०
२०. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५०-५२
२१. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ ५२
२२. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५२-५३
२३. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५३-५४
२४. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ ५४-५५
२५. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५५-५६
२६. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५७
२७. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५७
२८. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५८
२९. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ५८
३०. ह, ५-४-'३५, पृ. ५९
३१. ह. से., १७-५-'३५, पृ. १०४
३२. ह से, १६-११-'३५, पृ ३१८

प्रकरण – २५

१. आरोग्यकी कुंजी, १९५८, पृ. ८-१८

प्रकरण – २६

१ ह से., १८-६-'३८, पृ १४०
२. ह. से, २४-८-'४०, पृ २३४
३. ह. से, ५-५-'४६, पृ ११२

प्रकरण – २७

१ ह., २३-५-'३६, पृ ११९
२. ह. से, २५-३-'३९, पृ ४४
३. ह से., २२-२-'४८, पृ. ४९-५०
४. ह. से, ७-९-'३४, पृ. २९३-९५
५. ह, ९-१-'३७, पृ ३८३
६. ह. से, १७-८-'४०, पृ. २२४-२५
७. ह. से., २-११-'३५, पृ. ३०४
८. ह. से, २३-११-'३५, पृ० ३२४-२५
९. ह, २९-२-'३६, पृ. १८-१९
१०. ह. से., ३०-८-'३५, पृ. २२५
११. ह. से., २-३-'४७, पृ. ३६

१३. ह., ११-८-'३६, पृ. ६८
१४. ह. से., २०-२-'३७, पृ. ५-६
१५. ह. से., २९-३-'३५, पृ. ४६-४७
१६. ह., २९-३-'३५, पृ. ४९
१७. ह. से., १७-३-'४६, पृ. ४३

प्रकरण – २८

१. ह. से., २८-४-'४६, पृ. १०४
२. ह., १-९-'४६, पृ. २८८

प्रकरण – २९

१. यं. इं., २-७-'३१, पृ. १६१
२. यं. इं., २६-३-'३१, पृ. ५१
३. ह., २३-९-'३९, पृ. २७८
४. ह., २-११-'३४, पृ. ३०२
५. ह. से., २४-२-'४६, पृ. १९
६. ह. से., १०-११-'४६, पृ. ३८७
७. इंडियाज़ केस फॉर स्वराज, १९३२, पृ. २०९
८. दिल्ली-डायरी, १९६०, पृ. ३१
९. ह. से., १२-२-'३८, पृ. ४२४
१०. टुवर्ड्स न्यू होराइज़न्स, १९५९, पृ. ९९
११. टुवर्ड्स न्यू होराइज़न्स, १९५९, पृ. २००
१२. टुवर्ड्स न्यू होराइज़न्स, १९५९, पृ. २००
१३. हि. न., १७-९-'२५, पृ. ३७-३८
१४. यं. इं., १६-४-'३१, पृ. ७९
१५. यं. इं., ३१-१२-'३१, पृ. ४२७

अन्य लेखकोंकी पुस्तकें

आत्मरचना अथवा आश्रमी शिक्षा भाग १, २, ३	४५०
आशाका एकमात्र मार्ग	२ ००
एकला चलो रे	२ ००
ऐसे थे बापू	१ ७५
गांधी और साम्यवाद	१.२५
गांधीजी और गुरुदेव	० ८०
गांधीजी : एक झलक	१.२५
गाधीजीकी साधना	३ ००
ग्राम-सस्कृतिका अगला चरण	१.८०
जड़मूलसे क्रांति	१.५०
तालीमकी बुनियादें	२.००
नमकके प्रभावसे	१.५०
नेहरूजी — अपनी ही भाषामें	३.५०
बापूकी छायामें	४ ००
बापूकी झांकियां	१ ००
बापू और बाकी अंतिम झांकी	०.८०
बिहारकी कौमी आगमें	३ ००
बुनियादी शिक्षामें अनुबंधकी कला	२.५०
ससार और धर्म	२.५०
हमारी बा	२.००

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद–१४

ग्राम और विश्व

मनुष्यकी भावी व्यवस्थामें दो ही चीजें हमारे सामने रहेंगी — ग्राम और विश्व। सुविधाके लिए दुनियाके नक्शे पर विभिन्न देशोंके नाम भले रहेंगे, परन्तु विश्व और ग्रामके बीच अन्य किसी सत्ताका अस्तित्व नहीं रहेगा। जीवनके भौतिक पक्षसे सम्बन्ध रखनेवाली संपूर्ण सत्ता ग्रामके हाथमें रहेगी। ग्राममें अपने जीवनकी व्यवस्था स्वयं करनेकी शक्ति होगी। संपूर्ण जगतके नैतिक विकास और प्रगतिकी सत्ता विश्व-केन्द्रके हाथोंमें होगी। राज्य अथवा जिले केवल ग्राम-समाजके प्रतिनिधि रहेंगे। इस प्रकार संपूर्ण व्यवस्थाका आधार ग्राम होगा और उसके केन्द्रमें विश्व-सत्ता होगी। मानव-समाजका संगठन छोटे छोटे ग्राम-समाजोंके आधार पर होगा। ऐसे प्रत्येक ग्राम-समाजमें दो से तीन हजार तक सदस्य रहेंगे। इस ग्राम-समाजमें हमें सच्चे भ्रातृभावके और सच्चे सहयोगके दर्शन होंगे। निजी स्वामित्वके लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। प्रत्येक गांव आदर्श सामुदायिक जीवनका सुन्दर उदाहरण होगा। विश्व-केन्द्र इन प्राथमिक ग्राम-समाजोंको जोड़नेवाली अंतिम कड़ीका काम करेगा।

भूदान, ८–९–'६२ विनोबा